शिक्षा में मानवीय मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकता

सम्पादक:
डॉ० पी०के० वार्ष्णेय
दीपक कुमार शर्मा
सैयद अब्दुल वाहिद शाह

उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रामपुर (उ०प्र०)–244901
(स्थापित 1949, NAAC तृतीय चक्र पूर्ण)

शिक्षा में मानवीय मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकता
डॉ० पी०के० वार्ष्णेय
दीपक कुमार शर्मा
सैयद अब्दुल वाहिद शाह

शिक्षा में मानवीय मूल्य
एवं
व्यावसायिक नैतिकता

सम्पादकः

डॉ० पी०के० वार्ष्णेय

दीपक कुमार शर्मा

सैयद अब्दुल वाहिद शाह

उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रामपुर (उ०प्र०)-244901
(स्थापित 1949, NAAC तृतीय चक्र पूर्ण)

शिक्षा में मानवीय मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकता

सम्पादकः

डॉ० पी०के० वार्ष्णेय

दीपक कुमार शर्मा

सैयद अब्दुल वाहिद शाह

ISBN : 978-81-943559-9-1

en.k % Qjojh 2020

मुद्रकः

ओशन पब्लिकेशन

निकट हनुमान मन्दिर, चाह सोतियान

मिस्टन गंज, रामपुर (उ०प्र०)–244901

फोन : 9045440373

प्रकाशकः

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय

रामपुर (उ०प्र०)–244901

म०ज्यो०फु० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध

(स्थापित 1949, NAAC तृतीय चक्र पूर्ण)

Website : www.grpgcrampur.com

प्राक्कथन

शिक्षा मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं में सर्वमहत्वपूर्ण स्थान रखती है। जीवन–पर्यंत निर्बाध गति से शिक्षा मनुष्य जीवन को सरल, सुगम एवं अर्थपूर्ण बनाने एवं समाज के विकास को समुचित गति देने तथा लक्ष्य तक ले जाने में सक्षम एवं समर्थ है। हम आज के तकनीकी एवं भौतिकवादी युग में अपने मूल्य एवं नैतिकता जैसी अमूल्य निधि को खोते जा रहे हैं और केवल भौतिक सुख समृद्धि की अंधी दौड़ का हिस्सा बनकर रह गए हैं। जिससे हम भौतिक रूप से तो संपन्न हो सकते हैं, लेकिन आध्यात्मिक एवं मानसिक रूप से कमजोर हो रहे हैं। अतः आवश्यकता है इन मानवीय मूल्यों को जानने, समझने एवं अंगीकार करने की जिससे हम प्रगति के साथ–साथ मानव सभ्यता एवं संस्कृति को पुष्पित एवं पल्लवित कर संपूर्ण विश्व को नई दिशा, दशा, चिंतन एवं मनन करने हेतु प्रेरित कर सकें। इसी प्रयास स्वरूप इस पुस्तक को 17 उपविषयों एवं संबंधित मुद्दों सहित सुधी पाठकों, शिक्षाविदों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं एवं छात्र–छात्राओं के हाथों में इस उद्देश्य से प्रस्तुत कर रहे हैं कि वह इस महत्वपूर्ण विषय को जनमानस तक पहुंचाएं तथा जीवन में मानवीय मूल्यों और नैतिकता को अंगीकार करें।

डॉ० पी०के० वार्ष्णेय
दीपक कुमार शर्मा
सैयद अब्दुल वाहिद शाह

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक/लेखक	पृष्ठ सं०
1.	भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास डॉ0 भूपेन्द्र कौर एवं अभिषेक यादव	1
2.	मूल्य शिक्षा एवं परिवार रजनी यादव एवं नवनीत कुमार मौर्या	6
3.	गुरूकुल शिक्षा पद्वति एंव मानव मूल्य : एक दार्शनिक अध्ययन राजीव कुमार	13
4.	शिक्षा तथा मानवीय मूल्य हबीब इकराम	25
5.	शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन डॉ0 राजेश बाबू	31
6.	भारतीय उच्च शैक्षणिक संस्थानों में वाणिज्य शिक्षा और शिक्षण में आचार विचार, मूल्यों, चरित्र और नैतिकता पर बल डॉ. अमित अग्रवाल	44
7.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य डॉ० अनीता	54
8.	मूल्याधारित शिक्षा में सतत् परिवर्तन : एक विमर्ष डॉ0 सुनीता जायसवाल	61
9.	विद्यालीय शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य-शिक्षा की उपादेयता डॉ0 शुभ्रा चतुर्वेदी एवं अंशुल	68
10.	माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में मूल्यों की पहचान एवं संवर्द्धन की आवश्यकता प्रमोद कुमार वर्मा एवं मुकेश कुमार	78
11.	भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य दीपक कुमार शर्मा एवं डॉ0 आशुतोष कुमार शुक्ल	84
12.	मूल्य शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका डॉ0 विष्णुदत्त त्यागी	87

क्र.सं.	शीर्षक/लेखक	पृष्ठ सं०
13.	जीवन में मूल्य आधारित शिक्षा का महत्व मनु सिंह एवं डॉ० अंकुर त्यागी	94
14.	मूल्याश्रित शिक्षण में प्रभावी पाठ्यक्रम की उपयोगिता डॉ0 विक्रान्त उपाध्याय	102
15.	अशोक के धम्म के नैतिक मूल्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता डॉ० विजय कुमार राय	109
16.	शिक्षा का विकास एवं भारतीय संविधान डॉ० संजीव कुमार एवं शिल्की सिंह	114
17.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य डॉ0 राजीव पाल	123
18.	शिक्षक एवं व्यावसायिक नैतिकता बृजनिवास एवं डॉ0 के0 के0 चौधरी	131
19.	भारतीय संविधान एवं मानव मूल्य मोहम्मद नासिर	137
20.	मूल्य-शिक्षा और राजनीति ड़ा0 सुनीता गुप्ता एवं संदीप कुमार	143
21.	मानवीय मूल्यों पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव - एक भौगोलिक सामाजिक विश्लेषण डॉ0 अजय विक्रम सिंह	148
22.	व्यक्तित्व एवं पारिवारिक वातावरण के सम्बन्ध में विद्यालयों के छात्रों की नैतिक ताक्रिकता का अध्ययन रीता कश्यप एवं शिखा देवी	153
23.	मूल्यों का विकास एवं परिवार डॉ0 सुरेन्द्र सिंह एवं नरेश कुमार राठोर	160
24.	योग, शारीरिक शिक्षा एवं मानवीय मूल्य कमल कान्त	164
25.	नैतिक मूल्यों के सुधार के सन्दर्भ में योग की अनिवार्य, आवश्यक तथा महती भूमिका डॉ. विनीता एम चौधरी	173
26.	भारतीय दर्शन और समाज-व्यवस्था डॉ. मनुप्रताप	183

क्र.सं.	शीर्षक/लेखक	पृष्ठ सं०
27.	जे. कृष्णमूर्ति जी के विचारों में वर्णित मानवीय मूल्यों की वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सार्थकता मन्जू बघेल और प्रीती	188
28.	धर्म, दर्शन एवं मानवीय मूल्य डॉ० अर्चना गिरि	199
29.	धर्म, दर्शन में वर्णित मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता 'वेदान्त दर्शन के परिप्रेक्ष्य में' संगीता राठौर	206
30.	भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य डॉ० अश्विनी कुमार	215
31.	भारतीय संस्कृति का आधार रामायण में प्राप्त मानवीय मूल्य अजय कुमार	219
32.	भारतीय संस्कृति का प्रतीक संगीत एवं मानवीय मूल्य डॉ0 मोनिका दीक्षित	226
33.	महर्षि वात्स्यायन का दर्शन और शिक्षा डॉ० प्रदीप कुमार एवं नितिन कुमार त्यागी	231
34.	जल-प्रकृति की प्रेरक शक्ति डॉ0 विजय कुमार, डॉ0 मुजाहिद अली एवं डॉ0 जगजीवन राम	238
35.	भारतीय संस्कृत साहित्य एवं मानवीय मूल्य पुराणों के सन्दर्भ में आंचल सक्सेना	242
36.	मधुकर अष्ठाना के गीतों में मूल्यचेतना (कुछ तो कीजिए, नवगीत संग्रह के विशेष परिप्रेक्ष्य में) डॉ0 मो0 असलम खॉ एवं डॉ0 महाराणा प्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही'	248
37.	हिन्दी साहित्य की सन्त काव्यधारा में अभिव्यक्त मानवीय मूल्यों का तात्त्विक विश्लेषण डॉ० ज़ेबी नाज़	253
38.	साहित्य एवं मानवीय मूल्य मधु रानी	262

क्र.सं.	शीर्षक/लेखक	पृष्ठ सं०
39.	**हिन्दी साहित्य में मानवीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति** डॉ0 निधि शर्मा	267
40.	**महाकवि भास के नाटकों में निहित मानव-मूल्य** सर्वेश कुमार	278
41.	**भक्तिकालीन साहित्य में मानवीय मूल्य** डॉ0 अरुण कुमार एवं डॉ० निशात बानो	285
42.	**पर्यावरण संरक्षण एवं मानवीय मूल्य** डॉ० बृजबाला शर्मा	297
43.	**शोध एवं मानवीय मूल्य** डॉ0 सुधांशु शेखर	305
44.	**शोध एवं मानवीय मूल्य** रोहित राठौर	315
45.	**शोध और साहित्यक चोरी(प्लेजरिज़्म)** डॉ० अरविन्द कुमार	318
46.	**डिजिटल शिक्षा एवं विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास** डॉ० धर्मेन्द्र कुमार एवं डॉ० शशि सिंह	332
47.	**युवा असंतोष के कारण व निवारण** डॉ० अनीता चौहान	342
48.	**धर्म, दर्शन एवं मानवीय मूल्यों का शिक्षा में प्रासगिकता** दीपक कुमार शर्मा एवं गिरीश कुमार वत्स	344
49.	**पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता एवं मानवीय मूल्यों की दृष्टि से उपाय** सैय्यद अब्दुल वाहिद शाह एवं सुशील सहगल	349
50.	**समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास से मानवता का अंत : एक नजर** लेफ्टि० (डॉ०) प्रवेश कुमार	353
51.	**शिक्षक की कृत्य-संलग्नता एवं मानवीय मूल्य** डॉ० ओमकार चौरसिया एवं आरती साहू	358

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास

डॉ0 भूपेन्द्र कौर[1] एवं अभिषेक यादव[2]

[1]सहायक प्राध्यापिका, [2]शोध छात्र

शिक्षा विभाग, आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ०प्र०)

प्रस्तावना

आज समाज मे नैतिक मूल्यों का प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है आज के समाज मे नैतिकता नाम की चीज का कही कोई निशान नहीं नजर आता है। आज के वृद्ध यह कहते नहीं थकते कि आज का नौजवान नैतिकता से कोसो दूर है। समाज मे प्रेम, त्याग, सदभावना तथा परोपकार की की भावना का लोप होता जा रहा है। स्वार्थ भावना, अत्याचार अन्याय तथा द्वेष का बोलबाला है। आज नैतिकता का हास भारतीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे अवलोकनीय है। आज समाज नैतिकता की भावना से विमुख होकर निरन्तर पतन की खाई मे गिरता चला जा रहा है। चारो ओर अन्धकार छाया हुआ है। कही भी प्रकाश की किरण दिखाई नहीं देती।

राजनैतिक क्षेत्र में नैतिक भावना का अवमूल्यन –आज का राजनैतिक क्षेत्र भी नैतिकता की क्रिया कर रहा है। महात्मा गॉधी धर्म राजनीति को अलग करके नहीं देखते थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि धर्म के अभाव मे राजनीति ढकोसला मात्र बन कर रह जाती है। राज्य का संचार भी किन्हीं नीतियो की धुरी पर ही होता है। यदि इन्हें नीतियों से अलग हटा दिया जाये तो राज्य का संचालन भली प्रकार असम्भव है। यहॉ धोखा, स्वार्थ–साधन तथा छल को सदेव है। की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि देवताओं के साथ राक्षसों का भी बाहुल्य रहा है। चाहे देवताओं को राक्षसों ने अगाध पीड़ा दी है। लेकिन अन्त मे देवताओं ने राक्षसों पर विजय प्राप्त की है तभी तो भारत की धरती पर ''सत्यमेव जयते'' के स्वर ध्वनित होते रहे हैं। यहा अन्याय, अत्याचार तथा हिंसा पर सदैव सत्य तथा अहिंसा की विजय रही है।

विभिन्न राजनैतिक दल चुनाव के समय तमाम सिद्धान्तों का राग अलापते है। लेकिन चुनाव मे विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे समस्त वे सिद्धान्त खोखले सिद्ध होते है। जब विरोधी राजनैतिक दल किन्हीं सिद्धान्तों का विरोध करते हैं तो वे एक स्वर मे उसके विरूद्ध खडे हो जाते है। इसके अतिरिक्त जब उनके दल के लोग सिद्धातों की बखिया उखेडते हैं तो वे

इसको उचित ठहराते हैं। आज भारत का राजनैतिक जीवन नैतिकता का परित्याग करता हुआ चला जा रहा है। आज का भारतीय नागरिक वोट धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय के नाम पर मॉगता है। चुनाव मे प्रत्याशी भी किसी जाति विशेष के खड़े किए जाते है ताकि जाति के आधार पर मत प्राप्त करके जाति विशेष का प्रत्याशी विजय प्राप्त कर सके। आज हमारे राष्ट्र के कर्णधार आदर्शों की तो दुहाई देते है। लेकिन उनके व्यक्तिगत जीवन मे आदर्शो का नामोनिशान तक देखा नहीं जाता। आज भारत के नेता साम, दाम, दण्ड तथा भेद से सत्ता प्राप्त करने मे तल्लीन है। सत्ता प्राप्त करने के समक्ष सब सिद्धान्त तथा आदर्श ताक पर रख दिये जाते है। जब समाज के कर्णधार की ही यह दशा है तो अन्य लोगो के विषय में क्या कहा जा सकता है। बन्धुत्व, सेवा, बलिदान तथा परोपकार की भावना जो आजादी से पूर्व दिखाई देती थी आज उसका लोप होता जा रहा है। नैतिकता की भावना प्रजातन्त्र पुष्ट तथा गतिमान बनती है। नैतिकता के अभाव मे हमारा प्रजातन्त्र अजायबघर की वस्तु मात्र बन कर रह जायेगा। नैतिकता को त्याग कर प्रगति के सपने सजोना दिवास्वप्न मात्र बनकर रह जायेगा। आज धर्म प्रधान भारत को न जाने कौन सा धुन लग गया है जिसके कारण नैतिकता की बात करना भी आज बुरा माना जा रहा है। नैतिकता तथा धर्म मे धारण करने की क्षमता होती है, उसके बिना हमारा जीवन दर्शन ही अधूरा है।

राजनैतिक क्षेत्र मे नैतिक भावना का अवमूल्यन

आज का राजनैतिक क्षेत्र भी नैतिकता की क्रिया कर रहा है। महात्मा गॉधी धर्म राजनीति को अलग करके नहीं देखते थे। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि धर्म के अभाव मे राजनीति ढकोसला मात्र बन कर रह जाती है। राज्य का संचार भी किन्हीं नीतियों की धुरी पर ही होता है। यदि इन्हें नीतियों से अलग हटा दिया जाये तो राज्य का संचालन भली प्रकार असम्भव है। यहॉ धोखा, स्वार्थ–साधन तथा छल को सदैव है। की दृष्टि से देखा जाता है। यद्यपि देवताओं के साथ राक्षसों का भी बाहुल्य रहा है। चाहे देवताओं को राक्षसों ने अगाध पीड़ा दी है। लेकिन अन्त मे देवताओं ने राक्षसों पर विजय प्राप्त की है तभी तो भारत की धरती पर ''सत्यमेव जयते'' के स्वर ध्वनित होते रहे हैं। यहा अन्याय, अत्याचार तथा हिंसा पर सदैव सत्य तथा अहिंसा की विजय रही है।

विभिन्न राजनैतिक दल चुनाव के समय तमाम सिद्धान्तों का राग अलापते है। लेकिन चुनाव मे विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे समस्त वे सिद्धान्त खोखले सिद्ध होते है। जब विरोधी राजनैतिक दल किन्हीं सिद्धान्तों

का विरोध करते हैं तो वे एक स्वर मे उसके विरूद्ध खडे हो जाते है। इसके अतिरिक्त जब उनके दल के लोग सिद्धातों की बखिया उखेडते है तो वे इसको उचित ठहराते हैं। आज भारत का राजनैतिक जीवन नैतिकता का परित्याग करता हुआ चला जा रहा है। आज का भारतीय नागरिक वोट धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय के नाम पर मॉगता है। चुनाव मे प्रत्याशी भी किसी जाति विशेष के खडे किए जाते है ताकि जाति के आधार पर मत प्राप्त करके जाति विशेष का प्रत्याशी विजय प्राप्त कर सके। आज हमारे राष्ट्र के कर्णधार आदर्शों की तो दुहाई देते है। लेकिन उनके व्यक्तिगत जीवन मे आदर्शों का नामोनिशान तक देखा नहीं जाता। आज भारत के नेता साम, दाम, दण्ड तथा भेद से सत्ता प्राप्त करने मे तल्लीन है। सत्ता प्राप्त करने के समक्ष सब सिद्धान्त तथा आदर्श ताक पर रख दिये जाते है। जब समाज के कर्णधार की ही यह दशा है तो अन्य लोगो के विषय मे क्या कहा जा सकता है। बन्धुत्व, सेवा, बलिदान तथा परोपकार की भावना जो आजादी से पूर्व दिखाई देती थी आज उसका लोप होता जा रहा है। नैतिकता की भावना प्रजातन्त्र पुष्ट तथा गतिमान बनती है। नैतिकता के अभाव मे हमारा प्रजातन्त्र अजायबघर की वस्तु मात्र बन कर रह जायेगा। नैतिकता को त्याग कर प्रगति के सपने सजोना दिवास्वप्न मात्र बनकर रह जायेगा। आज धर्म प्रधान भारत को न जाने कौन सा घुन लग गया है जिसके कारण नैतिकता की बात करना भी आज बुरा माना जा रहा है। नैतिकता तथा धर्म मे धारण करने की क्षमता होती है, उसके बिना हमारा जीवन दर्शन ही अधूरा है।

सामाजिक जीवन मे नैतिकता का ह्रासः

प्राचीन काल मे हमारे देश भारत मे अपने देश के निमित्त ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए विश्व–बन्धुत्व की भावना का पारावार लहरा रहा था। देश के समस्त नागरिक प्रेम के सूत्र मे बॅधकर बडे प्रेम से जीवन यापन करते थे। यहा के प्रेम तथा भाई चारे को समस्त संसार एक आदर्श के रूप मे देखता था। यहा के नैतिक मूल्यों को देख कर विदेशी दॉतो तले उगली दबाते थे। भारत के लोग अपनी बात के धनी होते थे। सभी सम्प्रदाय, जाति तथा धर्म के लोग परस्पर मिलकर रहते थे। आजादी से पूर्व सभी धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय के लोगो ने भेदभाव से परे हटकर अग्रेजो से संघर्ष किया था। आज बन्धुत्व, प्रेम तथा सदभावना का स्थान घृणा ने ले लिया है। पहले हमारे देश के जन–मानस मे यह भाव विद्यमान था कि दान तथा त्याग का प्रभु उत्तम फल देता है तथा भविष्य भी उज्जवल बनता है। रावण, कंस, हिटलर तथा मुसोलियन अत्याचार के बल पर कितना

सफल हो सके ये बात सबके समक्ष प्रत्यक्ष है। थोड़े समय के लिए इन्होंने अत्याचार करके भले ही सन्तोष कर लिया हो लेकिन अन्त मे उनका जीवन नरकीय बना।

धार्मिक क्षेत्र मे नैतिकता की कमी–धर्म तथा नैतिकता एक सिक्के के दो पहलू है। यदि धर्म नैतिकता का आश्रय ग्रहण नहीं करता है तो उसे हम यथार्थ धर्म की संज्ञा से विभूषित नहीं कर सकते हैं। सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए हमारे देश मे सदैव से धर्म का आश्रय ग्रहण किया जा रहा है। भारत वर्ष ने धर्म को सदा से अपने जीवन मे प्रमुख स्थान दिया है। हमारे देश का हिन्दू धर्म सर्वजन हिताय की भावना से ओतप्रोत रहा है। यहॉ सबके सुखी जीवन तथा कल्याण भावना का नारा बुलन्द रहा है। आज धर्म के नाम पर जो संघर्ष, कलह तथा मन मुटाव के बीजारोपन किए जा रहे हैं वह बहुत ही निन्दनीय तथा अशोभनीय है। आज हिन्दू, मुसलमान, सिख तथा ईसाई धर्म के लोग धर्म के नाम पर संघर्ष कर रहे हैं। विगत सालो मे पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा देश के अन्य भागों मे एक धर्म तथा सम्प्रदाय के लोगों पे जो अत्याचार किए उनके घाव आज भी हरे हैं।

सामाजिक जीवन मे नैतिकता के ह्रास का निराकरण

नैतिकता के पल्लवन के लिए साम्प्रदायिकता तथा धर्म के नाम पर चलने वाली संस्थाओं पर प्रतिबन्ध लगाना होगा। इसके लिए जन चेतना का विकास करना भी परम आवश्यक है। प्रेम, भाईचारा तथा सदभावना को फेलाने के लिए स्वयं सेवी संस्थाओं को निस्वार्थ भाव से काम करना चाहिए। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा कानूनो से नहीं अपितु जनसहमति से ही प्रतिष्ठित की जा सकती है। शिक्षा को भी नैतिक मूल्यों से ओत प्रोत करना होगा ताकि भारतीय नौजवान इस शिक्षा–दीक्षा मे शिक्षा ग्रहण करके आदर्श नागरिक बन सके।

उपसंहार

आज के भारतीय जीवन मे जो नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है वह बहुत ही शोचनीय एवं दुखद धटना है। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के बिना हम कदापि प्रगति की मेंजिल पर अग्रसर नहीं हो सकते। संतोष तथा शांति सबसे बड़ा धन होता है। इनकी प्राप्ति नैतिकता की भावना के बिना असम्भव है। अत; हमे राष्ट्र तथा समाज की उन्नति के लिए नैतिक मूल्यों

को सर्वोपरि स्थान देना होगा। तभी हम प्रगति की मेंजिल पर अबोध गति से बढ सकेंगे। समाज मे ऐसे समाजसेवी संगठनो का निर्माण करना होगा जो निस्वार्थ भाव से लोगो की सेवा करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रस्तोगी एवं अग्रवाल (2001), निबन्ध मेंजूषा।
2. पायल, भोल एवं जैन (2005), मूल्य, पर्यावरण तथा मानवाधिकारों की शिक्षा।
3. पचौरी, गिरीश (2009), शिक्षा के सामाजिक आधार।
4. पाण्डेय रामशकल (2010), मानवाधिकार और शिक्षा
5. आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2014); 'शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
6. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2016); 'शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
7. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2017); 'अधिगम और शिक्षण', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
8. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2017); 'अधिगम के लिए आंकलन', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
9. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2017); 'शिक्षा के ऐतिहासिक एवं राजैतिक परिप्रेक्ष्य', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
10. आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2017); 'सामाजिक विज्ञान का शिक्षणशास्त्र', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
11. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल, 'पाण्डेय', ड़ॉ0 महेन्द्र प्रसाद, कौर, भूपेन्द्र एवंगोला, राजकुमारी (2017); 'सामाजिक विज्ञान का शिक्षणशास्त्र', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
12. 'आर्य' ड़ॉ0 मोहन लाल (2018); 'शिक्षा के ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।

◆◆◆

मूल्य शिक्षा एवं परिवार

रजनी यादव एवं नवनीत कुमार मौर्या
शोधार्थिनी, शिक्षा शास्त्र, हिन्दु महाविद्यालय, मुरादाबाद (उ०प्र०)

वर्तमान समय में सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का खण्डन हो रहा है। धर्म कमजोर हो रहा है। शक्ति एवं ज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। राष्ट्रों का एक दूसरे के प्रति विश्वास नहीं है ऐसी विकट स्थिति में शिक्षा को मूल्य–उन्मुख बनाना अत्यन्त आवश्यक है। केवल मूल्य–उन्मुख शिक्षा ही वैयक्तिक हित, सामाजिक हित, प्रेम, शान्ति सदभावना तथा विवेक को विकसित कर सकती है। वर्तमान युग में व्याप्त राजनीतिक तनाव का मुख्य कारण यही है कि छात्रों में ज्ञान की तो वृद्धि हो रही है परन्तु नैतिकता विलुप्त हो रही है। सत्य, न्याय एवं अहिंसा ही ऐसे नैतिक मूल्य हैं जो मानवता के छात्रों पर मरहम का काम कर सकते हैं। मूल्य–उन्मुख शिक्षा ही मनुष्य को प्रेरित कर सकती है कि वह अणु शक्ति का प्रयोग मानवता के विनाश के लिए नहीं अपितु मानवता के भलाई के लिए करें। सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास एवं प्रचार शिक्षा का ही काम है इन्हीं मूल्यों में जीवन संगठित करने की शक्ति निहित है।

मूल्य शिक्षा छात्रों को गतिशील एवं जागरूक बनाती है। यह उसमें जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण विकसित करती है। इसी के कारण वह स्वार्थ त्याग कर समाज सेवा के कार्यों में रूचि लेने लगता है। केवल इतना ही नहीं बल्कि उस में जीवन की समस्याओं का सामना करने का साहस पनपने लगता है। मूल्य–उन्मुख शिक्षा उसे जीवन की समस्याओं को विवेकपूर्ण प्रयत्नों से हल करने के योग्य बनाती है। इसके साथ ही यह शिक्षा छात्रों के मूल–प्रवृत्तियों तथा संवेगों के परिष्कार में सहयोग प्रदान करती है। यह काम–भावनाओं को स्वस्थ दिशा की ओर अग्रसर करती है। मनुष्य में काम–भावना इतनी अधिक शक्तिशाली होती है कि मानव जीवन और समाज इसके प्रभाव से बच नहीं सकते। मूल्य–उन्मुख शिक्षा इसके परिष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करती है जो व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है। आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो गया है इसके परिणामस्वरूप अनेक विवाद जन्म लेने लगे हैं इन नैतिक विवादों को शान्त करने के लिए मूल्य–उन्मूख शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

अगर विद्यार्थियों को मूल्य शिक्षा प्रदान की जाये तो वह देश की प्रगति की ओर अग्रसर होंगे, मूल्यों से जहाँ उनका सर्वांगीण विकास होगा, वहीं विद्यार्थी देशहित के लिए मानसिक रूप से तैयार होगा। हमारे समक्ष जो दृष्य जगत है, सांसारिक प्रपंच है, उसमें ज्ञान का वास्तविक स्वरूप क्या है? मानवीय व्यवहार में अच्छा क्या है? बुरा क्या है? क्या स्वीकार्य तथा क्या त्याज्य है? ये प्रश्न मानव की जिज्ञासा तथा अन्वेषण के केन्द्र बिन्दु रहे हैं। इन प्रश्नों के सम्यक एवं सर्वमान्य उत्तर की खोज में मनुष्य कभी–कभी परस्पर विरोधी निष्कर्ष बिन्दुओं पर भी पहुँचा है। क्योंकि ये प्रश्न इतने जटिल एवं दुरूह हैं कि अनन्त समय से मनुष्य इनकी गुत्थी सुलझाने के प्रयासों में अनवरत रूप से संलग्न है। पता नहीं आने वाले और कितने दिनों तक यह रहस्य मनुष्य को जिज्ञासु बनाये रखेंगे तथा उसकी क्षमताओं के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत करते रहेंगे।

मनुष्य का बचपन वह दर्पण है जिसमें उसके भावी व्यक्तित्व की झलक देखने को मिल जाती है। विश्व के महापुरूषों की जीवनी से यह स्पष्ट झलकता है कि उनका बाल्यकाल किस तरह अनुशासित, सुसंस्कृत, आत्म सम्मान पूर्ण था। साहस, आत्म विश्वास, धैर्य, सतनिष्ठा, इमानदारी, मैत्रीभाव, आदर सम्मसान, संवेदना आदि उदात्त मूल्य थे। जिन्होंने उन्हें महापुरूष के स्थान तक पहुँचा दिया। इसके विपरीत अपराधी प्रवृत्ति के मनुष्यों की जीवनी से पता चलता है कि उनका बाल्यकाल किस प्रकार कुंठाओं से ग्रस्त था, अव्यवस्थित एवं मूल्य का अभाव था। बच्चे भावी समाज की नींव होते हैं। जिस प्रकार की नींव होगी, उसी के अनुरूप महल या भवन का निर्माण किया जा सकता है। यदि नींव ही कमजोर होगी तो कैसे उस पर भव्य भवन निर्मित किया जा सकेगा। इस भवन रूपी इमारत पर मूल्य का लेप लगाना अति आवश्यक है वरना इस पर जंग लग जायेगी।

परिवार एक प्रयोगशाला होती है और माता उसकी प्रधान 'वैज्ञानिक'। इस प्रयोगशाला में विभिन्न प्रयोगों से नए–नए अविष्कार किए जा सकते हैं। यदि इस प्रयोगशाला में सुसंस्कृत एवं आत्म–सम्मानी बच्चों का निर्माण करना हो तो उन्हीं के अनुरूप प्रयत्न एवं प्रयोग किए जाने चाहिए। अपने प्रयोगों को उत्कृष्टता की श्रेणी तक पहुँचाने के लिए यथासंभव मूल्य प्रदान करने के लिये प्रयत्न करने पडेंगे, जिससे देश व समाज भी लाभान्वित हो सके। हमारी जीवन यात्रा माता के गर्भाधान के समय से ही प्रारम्भ हो जाती है और इसी समय वंशानुक्रम संबंधी विशेषताऐं भी माँ द्वारा संतानों को

विरासत में प्राप्त होती है। अगर बालक को प्रारम्भ से ही मूल्य शिक्षा प्रदान की जाये तो वह एक आदर्श व्यक्तितव प्राप्त करेगा।

परिवार में माँ ही एक मात्र ऐसी सदस्या होती है, जिसके सम्पक्र में बच्चा सबसे अधिक रहता है। पालने से लेकर ठीक से होश संभालने तक वह माता के ही, पास रहता है। यदि शिशुपन से ही उसको मूल्य शिक्षा प्रदान की जाये तो कोई कारण नहीं कि माँ उसे राम, विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय, विनोवा, भगत सिंह आदि जैसे महामानव की प्रतिमूर्ति न बना सके।

प्रारम्भ में जब बच्चा शिशु होता है, उसी समय से माता को चाहिए कि वह उसमें उचित संस्कार ठीक ढंग से लालन–पालन करके ड़ाले। इस काल में माँ को चाहिए कि वह स्वयं नियंत्रित रहकर शिशु का पालन–पोषण करे। स्वच्छता का ध्यान रखना, एकान्त में शांत भाव से दुग्धपान कराना उनमें प्रमुख हैं। माँ का दुग्ध विभिन्न नाड़ियों से गुजरकर आता है तथा उसमें भावना भी संयुक्त होती है, इसलिए यदि माँ के मन में खिंचाव–तनाव तथा हीन भावनाएँ होंगी तो उन भावनाओं का प्रभाव दुग्ध द्वारा शिशु पर भी पड़ने की पूरी–पूरी संभावना होती है। इसी प्रकार वातावरण में भी इस प्रकार की व्यवस्था हो कि शिशु को हर दशा में आराम का अनुभव होता रहे।

जब शिशु बड़ा होता है और धीरे–धीरे बातों को समझने लायक हो जाता है, यहीं से उसका वास्तविक शिक्षण प्रारम्भ होता है। इस अवस्था में परिवार ही उसकी प्रवेशिका होती है, जिससे वह सब कुछ सीखता है। इसलिए परिवार का वातावरण उचित होना चाहिए। परिवार की व्यवस्था इस प्रकार की हो कि बच्चा हर प्रकार की अच्छी आदतों का अनुकरण कर सके, जो उसके निर्माण में सहायक हो, इस अवस्था में माँ को बहुत बड़ी भूमिका निभानी पड़ती है।

प्रगति का घोंसला छोटी–छोटी आदतों के तिनकों से बुनकर तैयार होता है। देखने में ऐसी आदतें छोटी भले ही हों परन्तु इनका प्रभाव बच्चों के कोमल मन पर बहुत अधिक पड़ता है। इन छोटी–छोटी आदतों में सर्वप्रथम है– निर्यमित दिनचर्या। प्रतिदिन समय पर उठना, शौच, स्नान, मंजन, सफाई आदि को नियमित आदत बच्चों में तथा पूरे परिवार में ड़ालनी चाहिए, इसके साथ ही समय विभाजन से कई तरह के अन्य कार्य करने का यहाँ तक कि मनोरंजन–विश्राम का भी पर्याप्त समय मिल जाता है। बच्चों को समझाया जाए कि नियमित दिनचर्या के क्या लाभ है और अनियमिता

से क्या हानियाँ होती हैं, इन बातों को बच्चों के मन पर अच्छी प्रकार बैठा देना चाहिए कि ये छोटी–छोटी आदतें उनके जीवन की नियमित दिनचर्या बन जाएँ।

बच्चों में ऐसे मूल्यों की भावना भरनी चाहिए कि वह अपने बड़ों का सम्मान करें, उनसे शिष्टाचार के साथ बातें कर सकें। इसके लिए यह नितांत आवश्यक है कि परिवार में भी इसी के अनुकूल वातवारण बनाया जाए, क्योंकि बच्चा बंदर की तरह नकलची होता है, जैसा स्वयं हम व्यवहार करते हैं– उसी का अनुकरण बच्चा भी करता है। इसलिए उसकी भावनाओं को उभारने के लिए उसी प्रकार के वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिसकी हम बच्चे से अपेक्षा करते हैं। हमारी भारतीय परम्परा अपने से बड़ों का चरण स्पर्श द्वारा अभिवादन करने की रही है, यह भावना बच्चों में भी भरनी चाहिए।

इसके लिए यह आवश्यक है कि बड़े लोग भी बच्चों या अपने से छोटे–बड़ों से वैसा ही व्यवहार करें जैसी वे बच्चों से अपेक्षा करते हैं। बड़ों को भी बच्चों के साथ शिष्टाचार के साथ पेश आना चहिए। व्यवहार में नम्रता–शीलता–सज्जनता का गुण रहना आवश्यक है। बच्चों का अपमान न किया जाए, उनके स्वाभिमान को ठेस न पहुँचाई जाए। अबोध बालक से भी आप का संबोधन किया जाए, यदि 'आप' नहीं ंतो कम से कम 'तुम' तो कहा ही जाए। 'तू' के शब्द को असभ्य माना जाए। कन्या या पुत्र में कोई अन्तर न समझा जाए, दोनों के साथ एक–सा व्यवहार किया जाए।

बच्चों में धार्मिक भावनाओं का समावेश किया जाना चाहिए ताकि वे धर्म के मूल्यों को समझ सके, उनमें ईश्वर के प्रति श्रद्धा व विश्वास बढ़ सके, इससे वे बड़े होकर अनीतिगामी न हो सकेंगे। इसके लिए प्रारम्भ से ही उन्हें सामूहिक प्रार्थना का अभ्यास–गायत्री मंत्रोच्चारण या कोई भावनापूर्ण प्रार्थना करने की आदत प्रातः एवं सायं ड़ालनी चाहिए। साथ उन्हें प्रार्थना के तथा गायत्री मंत्र के लाभों के बारे में भी बताया जाए।

बच्चों में मिल–जुलकर खेलने तथा रहने की बच्चों में तीव्र भावना होती है, यह भावना बनी रहे– इसके लिए उचित वातावरण का होना आवश्यक है। मिल–बाँटकर खाने, एक ही खिलौने से मिल–जुलकर खेलने की आदतों को बढ़ावा देना, परस्पर मिलकर काम करने की परम्परा ड़ालने से उनमें विश्व मैत्री की भावना का विकास हो सकता है। कभी–कभी माता–पिता, बच्चों की छोटी–छोटी बातों से तंग आकर अकारण ही उन्हें

झिड़क देते हैं। इससे बच्चों के मन में हीन भावना घर कर जाती है, जो उनके विकास में बड़ी बाधा पहुँचाती है। अतः बच्चे बेकार के कामों में न उलझे रहें, इसके लिए उनमें रचनात्मक कार्यों के प्रति आकर्षण पैदा किया जा सकता है, जिससे वे क्रियाशील रहें। उन्हें ऐसी प्रेरणा दी जाए ताकि वे अपना काम स्वयं कर सकें, समय का उपयोग समझ सकें।

घर में हर किसी को मितव्ययिता तथा सादगी का पाठ पढ़ाया जाए। चटोरापन, फिजूलखर्ची, उद्धत श्रंगार, गाली–गलौज जैसी बुरी आदतें बच्चों में न पनपने पाएँ– इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। लाड़–चाव से किसी में भी फिजूलखर्ची की आदत नहीं ड़ालनी चाहिए।

सादगी अपने आप में बहुत बड़ा गुण है। बच्चों को इसकी शिक्षा दी जानी चाहिए। बच्चों के पहनावे का ध्यान रखना चाहिए बच्चों को स्वच्छ तथा स्वस्थ्य तो रखा ही जाए, उन्हें आकर्षक भी बनाया जाए परन्तु किसी भी दशा में 'फैशनेविल' न बनाया जाए, उन्हें सादगी व सज्जनता का गौरव सीखने दिया जाए, इससे वे सादगी में हीनता का अुनभव न करेंगे, अपनी प्रामणितका पर स्वयं संतुष्ट होंगे तथा दूसरों को दृष्टि में वजनदार सिद्ध होंगे।

सादगी के साथ ही उन्हें अपने स्वास्थ्य के प्रति भी सजग रहने की भी मूल्य शिक्षा दी जाए। छोटे–मोटे खेल व विनोद घर में ही किए जा सकते हैं, जिसमें संगीत का अभ्यास भी सम्मिलत है, इससे पूरे परिवार में सरसता की लहर दौड़ पड़ेगी तथा बच्चे की प्रतिभा का विकास होगा। बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन की भी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे आजकल चल रहे बेढंगे मनोरंजनों के प्रति उनका आकर्षण न हो। बच्चों को साथ लेकर स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों में, पाक्र–दर्शनीय स्थानों में जाना चाहिए तथा कभी अवकाश के दिन या त्यौहार के दिन पिकनिक पर निकल पड़ना चाहिए, इससे बच्चे में प्राकृतिक दृश्यों के प्रति प्रेम भावना का विकास होगा।

प्रायः बच्चों में बड़प्पन की भावना देखने को मिलती है। बड़े बच्चे अपने से छोटों पर अपना बड़प्पन लादना चाहते हैं। समय–समय पर बच्चों के खेलों में यह भावना देखने को मिलती है। कभी–कभी जब खेल–खेल में छोटे बच्चे जीत जाते हैं तो बड़ों के मन में उनके प्रति स्पर्धा जाग जाती है। प्रति स्पर्धा की वह भावना बड़ी खराब है, इसलिए बच्चों को इसके प्रति सजग रहने की शिक्षा दी जानी चाहिए कि खेलों में छोटों को उत्साहित

किया करें, जिससे उनमें हीन भावना उत्पन्न नहीं होने पाए। बच्चों को राम व भरत के उदाहरण के द्वारा समझाया जा सकता है कि बचपन में राम खेल में जीतने पर भी अपने छोटे भाइयों को जिता देते थे और स्वयं हार जाते थे। चित्रकूट में भरत ने स्वयं ही कहा है–

मो पर कृपा सनेहु बिसेथी।
खेलत खुनिस कबहु ना देखी।।
मैं प्रभु कृपा रीति जिम जोही।
हारेहु खेल जितावहु मोही।।

यदि यही भावना बच्चों में जाए तो उनमें बड़प्पन के अहंकार का भूत नहीं बढ़ पाएगा, वे घर में ही नहीं बाहर भी अपने से छोटों के प्रति वही स्नेह रखने में सफल होंगे।

प्रायः बच्चों में संकोचशीलता, मिश्रित भय, झिझक, संकोच आदि की भावना घर कर सकती है। कुछ बच्चे घर में तो बड़े बच्चे मुखर होते हैं, परन्तु बाहर जाने पर कुछ नहीं बोल सकते, शर्म मिश्रित भय से ग्रसित हो जाते हैं। कभी–कभी ऐसे बच्चे इन कुठांओं से ग्रस्त होकर अपने को बड़ा दिखाने के लिए क्रूरता का सहारा भी ले बैठते हैं। अतः माता–पिता तथा परिवार के सदस्य इस पर ध्यान दें, ऐसी स्थिति से उन्हें व्यवहार कुशल तथा मिलनसार बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। इसके लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम, बच्चों की सामूहिक गोष्ठी, छोटे–छोटे नाटक, खेल आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए, इससे बच्चों में धीरे–धीरे आत्म–विश्वास की भावना भरने लगेगी तथा मिलनसारिता आएगी।

माता–पिता को चाहिए कि बच्चों में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करें, इसके लिए माता–पिता को भी किसी समस्या के प्रति ठोस निर्णय लेने चाहिए। प्रायः माता–पिता, बच्चे के गलत निर्णय लेने पर उन्हें ड़ाँट–फटकार लगाते हैं या प्रताड़ित करते हैं– यह गलत है। गलत निर्णय लेने पर भी बच्चों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए तथा उनको प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास करें, इससे बच्चे का आत्म विश्वास जागेगा एवं उसे सही निर्णय लेने में सहायता मिलेगी।

अतः यदि परिवार तथा माता–पिता प्रारम्भ से ही बच्चे के क्रियाकलापों की ओर ध्यान दें, बच्चों की चहुँमुखी प्रतिभा को विकसित करने में अपना पूरा योगदान दे ंतो कोई कारण नहीं कि बच्चे सुसंस्कृत,

सभ्य, आत्मस्वाभिमानी, निडर, आत्म–निर्भर न बनें और नए समाज के आधार स्तम्भ न सिद्ध हों– भावी समाज का महल इन्हीं बच्चों द्वारा बनना है। ये बच्चे ही कल के राष्ट्र की तकदीर होंगे या यों कहा जाए कि सुसंस्कृत सभ्य तथा स्वाभिमानी बच्चे ही सभ्य तथा उन्नत समाज की नींव हैं।

◆◆◆

गुरूकुल शिक्षा पद्धति एंव मानव मूल्य : एक दार्शनिक अध्ययन

राजीव कुमार

शोधार्थी, डी०ए०वी० कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था के लिए गुरूकुल प्रणाली का विकास किया गया था। जहा एक–एक ऋषि, महर्षि सैकड़ों विद्यालयों को अपने यहाँ रख कर जीवन जीने के लिए आवश्यक शिक्षा प्रदान करते थे। उस समय कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए पुस्तकों द्वारा शिक्षा देने वाला प्रश्न ही नहीं उठता। उस समय सब प्रकार की शिक्षा मौखिक या व्यावहारिक रूप में ही दी जाती थी, इसलिए उस समय के विद्यार्थी जो कुछ पढ़ते थे उसे जन्म भर के स्मरण शक्ति द्वारा सुरक्षित बना लेते थे। मन, बुद्धि, आत्मा, अहंकार अन्तः करण चतुष्ठय को प्रभावित कर स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन कराया जाता था एवं आचारगत परिवर्तन को ही अधिगम की परिभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता था ''**आचारों परमोंधर्मः**''। इस शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की समस्त शक्तियों का सुसंगत विकास होता था। आजकल के समान परीक्षा समाप्त होते ही पुस्तकों से नाता तोड लेने और पढ़े हुए विषयों में से तीन चौथाई को कुछ ही महीनों में भुला देने वाली प्रणाली उस समय न थी। उस समय शिक्षा द्वारा संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन किया जाता था। संस्कृति पर बल देने के कारण शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़ना नहीं, बल्कि अनुभव करना था, ज्ञान को आत्मसात करना था। किसी विद्यार्थी की योग्यता का प्रमाण पत्र 33 प्रतिशत उत्तीर्णांको के आधार पर प्राप्त किया हुआ किसी विश्वविद्यालय का प्रमाण पत्र नहीं, अपितु विद्वत परिषद में किया हुआ शास्त्रार्थ था, जिसके लिये वह अपने जीवन में भी तैयार रहता था। (अग्निहोत्री आर. पृ. 4)

प्राचीन गुरूकुल शिक्षा पद्धति

प्राचीन समय में गुरूकुल. में जो कुछ शिक्षा दी जाती थी वह पूर्णरूप से व्यावहारिक होती थी। गुरूकुल मे समय तथा विधिविहित जीवन जो अभावों से पूर्ण था, उसमें त्याग की भावना की सृष्टि करता था। इस भावना के आने से मनुष्य विश्व को अनासक्त भाव से देखता था। (दुबे, ड़ॉ

एस. पृष्ठ. 5) विद्यार्थी को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया जाता था, जिससे वह अपने आगामी जीवन में कहीं भी और कैसी भी परिस्थिति में अपने पैरों पर खड़ा हो सकता था और जिससे उसमें सही निर्णय लेने की क्षमता तथा समत्वबुद्धि का विकास स्वयं हो जाता था। जीवन के प्रथमार्ध में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कराके उसके शरीर को फौलाद की तरह सुदृढ़ बना दिया जाता था। ब्रह्मचर्य से चरित्र विकास में बल मिलता है। सुकरात ने भी शील को ही ज्ञान माना है। भारतीय मनीषियों ने इस सत्य का साक्षात्कार पहले ही कर लिया था। (दुबे, ड़ॉ एस. पृष्ठ 4) गाँवों के बाहर या जंगल के वातावरण में रहने से उसका स्वास्थ्य और सहनशक्ति इतनी मजबूत हो जाती थी कि वह प्रायः रोग और बीमारियों के आक्रमण से सुरक्षित रहता था। गुरू और गुरूकुल के आवश्यक कार्यो से उसे पूरा भाग लेना पड़ता था। उपनिषद काल से ही शिष्यों को गोचारण कर्म में प्रवृत्त किया जाता था। महाभारत में उपमन्यु को गोचारण तथा आरूणिउद्दालक को खेतों की देखरेख के लिए आचार्य धोम्य ने भेजा था। (दुबे, ड़ॉ एस. पृ. 12) राम और कृष्ण जैसे रधुवंशी और यदुवंशी छात्रों को भी गुरू के लिए जंगल से लकड़ियाँ इकठ्ठी करके लानी पड़ती थी, गायों को चराना, उनकी देखभाल करना विद्यार्थीयों की जिम्मेदारी थी। यह काफी बड़ा काम था, क्योंकि उस समय एक–एक ऋषि के यहाँ हजारों गायें रहती थीं और समय–समय पर उन्हें हजारों गायें राजाओं और श्री मानों से दान में मिल जाती थी। गुरू की अधिक से अधिक सेवा करना और उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करना ही विद्यार्थी का परम कर्तव्य माना जाता था और गुरू भी अपनी संतान की तरह मान कर उनके कल्याण की सदैव चेष्टा किया करते थे। वैदिक काल में आचार्य को शिष्य का मानस पिता माना गया है।

आचार्य उपनयमानों ब्रह्मचारिणाम कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिसितस्त्र उदरे विमर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसयन्ति देवाः।।
(अथर्ववेद 1/1/5)

अर्थात् आचार्य उपनयन करता हुआ ब्रह्मचारी को गर्भ में धारण करता है। वह तीन रात्रि पर्यत्न उसे उदर में रखता है। जब वह नया जन्म ग्रहण करता है तो देवगण उसे देखने के लिए एकत्र होते है। (दुबे ड़ॉ. एस. पृ. 22) शिष्यों को सर्वथा विकास, मोक्ष के लिए प्रेरित करना था। इसके लिय पूरा और अपरा शिक्षा की व्यवस्था गुरूकुलों में थी। परा के अंतर्गत आध्यात्म विषय आते थे, जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड तथा पारलौकिकता की शिक्षा दी जाती थी जबकि अपरा के अंतर्गत लौकिकता से संबन्धित विषय होते

थे। शिक्षा के आदर्शो, सिद्धातों तथा विभिन्न पक्षों की चर्चा का जैसा रिवाज आजकल है वैसा कोई व्यवस्थित प्रयास प्राचीन भारत मे संभवतः नहीं किया गया है। अध्ययन की आधुनिक प्रणाली पश्चिम की देन है और स्वयं पश्चिम में भी सत्रहवीं सदी से पूर्व इस प्रकार का प्रयास प्रायः नहीं किया गया था अतः वैदिक शिक्षा पर इकठ्ठी और व्यवस्थित सामग्री कही नहीं मिलती वेद, उपनिषद, धर्मसूत्र, स्मृति, सुभाषित संग्रह, ब्राह्मण ग्रंथ, महाकाव्य आदि साहित्य मे तथा जनसामान्य में प्रचलित सूक्तियों मे इस विषय पर बहुत सामग्री मिलती है। (अग्निहोत्री आर. पृ. 2)

गुरूकुल शिक्षा की प्रणाली का मनोवैज्ञानिक आधार

गुरूओं के गुरूकुलों में शिक्षा प्रदान करने के पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक आधार थे। गुरूकुलों से अभिप्राय उनके उस आश्रम से है जहां वे रहते थे जहाँ निवास करके उनके शिष्य उनसे पवित्र शिक्षा पाते थे, अर्थात् गुरूकुल। ये गुरू साधू होते थे, ऋषि होते थे, आध्यात्मिक पुरूष होते थे इसीलिए तो वे आध्यात्मिक उन्नयन कर सके जिससे मस्तिष्क और आत्मा को संस्कृत किया जाता था। वास्तव में गुरूकुल खुली हुयी प्रयोगशाला थे, जहाँ प्रकृति के पुनीत संपक्र में प्रयोग किये जाते थे।

(वी. सरनः पूर्वोक्त पृष्ठ 125) गुरूकुल के लिए ऐसे शांत पर्यावरण की आवश्यकता क्यों पड़ी? क्योंकि मस्तिष्क और वाह्म विचार वाह्म और भौतिक आकर्षणों की ओर अधिक पलायन करते हैं जिससे अशांति फैलती है। इस अशांति और कोलाहल से बचने के लिए चितवृत्ति निरोध आवश्यक है। शिक्षा मस्तिष्क को नियंत्रित करने का एक साधन है। जब मस्तिष्क नियंत्रित हो जाएगा तो वह बाहर पलायन करने के स्थान पर नीचे की ओर जाएगा, गहराई में जायेगा और गहन विषयों पर विचार करके स्थायी मूल्यों की खोज करेगा। वृक्ष में जड़ का अस्तित्व पत्तियों और टहनियों से अधिक होता है, क्योंकि वह धरती के भीतर जाती है। अतः विद्यार्थी को जहाँ शिक्षा प्रदान करती है वह स्थान प्राकृतिक दृष्टि से मनोरम होना ही चाहिए, जिसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता का वास न हो। गुरूकुल वनों के प्राकृतिक वातावरण में स्थित होते थे। अतः आश्रमों में फल–फूल प्रायः पर्याप्त मात्र में सुलभ थे। जिससे गुरू और शिष्य तपोमय जीवन व्यतीत करते थे। कविवर टैगोर ने एक साथ ही हर्ष और विस्मय प्रकट करते हुए वैदिक शिक्षा के इस पक्ष का उल्लेख किया है कि, ''इन वनों में मानव समाज भी था और पर्याप्त एकांत भी। भीड़–भाड़ यहाँ नहीं थी। इस एकातं ने भारतीय समाज में जड़त्व या अकर्मण्यता का भाव पैदा नहीं किया,

बल्कि उसे गति और प्राण प्रदान किया। इन वनों से प्रवाहित संस्कृति की धारा में समस्त भारत निमज्जित हो गया''। (अग्निहोत्री आर. पृ. 5)

मानवीय मूल्य

वेद भारतीय संस्कृति की शाष्वत निधि है और मानव जाति के लिए सार्वभौम व सार्वकालिक संदेशों के वाहक है। वैदिक शिक्षा प्रणाली मानवीय भावनाओं और महान नैतिक मूल्यों पर आधारित। अतः ऋत और सत्य, श्रद्धा, आशा, उत्साह, वीरता, पवित्रता, ब्रह्मचर्य एवं व्रत की महिमा से ओतप्रोत वैदिक संस्कृति तथा उसमें अनुप्राणित गुरूकुल शिक्षा पद्धति में मानवीय मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक आदर्श के अनुसार शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान अर्जन का माध्यम नहीं अपितु व्यक्तित्व निर्माण एवं आत्मसाधना का अनुशासन था।

मानवीय मूल्यों का अर्थ

मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है तथा उसके अनुभवों में निरन्तर अभिवृद्धि होती है जैसे–जैसे मनुष्य अधिकाधिक सीखता जाता है ओर परिपक्व होता है वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं यह निर्देशन जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा इन्हें मानवीय मूल्य कहा जाता है।

मानवीय मूल्यों की प्रकृति

मूल्यों के अर्थ में तथा उनकी प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है

- मानवीय मूल्य मानव जीवन के लक्ष्यों से सम्बधित होते है।
- हमारा आचरण हमारे मूल्यों के द्वारा प्रेरित होता है।
- मूल्य हमारे प्रयासों को निर्देशन करते हैं जो ठीक न्यायोचित और वांछित है उसके सम्बन्ध में मूल्य भावनाओं रूचियों दृष्टिकोणों तथा विचारों प्राथमिकताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- मानवीय मूल्यों का अपना महत्व होता है एक अच्छा व्यक्ति ही अच्छी चीजों की पहचान कर सकता है।

- मूल्यों का निर्माण एव संरक्षण मनुष्य का महत्वपूर्ण प्रयोजन है।
- मानवीय मूल्यों का जितना अधिक महत्व होगा, उनका उतना ही अधिक ध्यान रखा जाएगा उतना ही बेहतर समाज का निर्माण होगा।
- परिपूर्णता आत्मानुभूति सन्तुष्टि विकास सत्यनिष्ठा आदि मूल्यों के लक्षण है।

मूल्यों के लक्षण

मूल्यों में अनेक विशेषताएँ पाई जाती है।

- मूल्य वस्तुओं के महत्व के बारे में विचार है।
- सभी विचारों की भांति मूल्यों का अस्तित्व अनुभव के क्षेत्र में नहीं बल्कि लोगों के मन में होता है।
- बिना तक्र के मूल्य अन्धे होते है, बिना भावनाओं के वे अशक्त होते है तथा बिना कार्यो के वे खाली होते है।
- मूल्यों का परिणात्मक व गुणात्मक आंकलन सम्भव है।

मानवीय मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्यों के वर्गीकरण को लेकर विभित्र प्रकार की दृष्टियाँ है। आमतौर पर हम ''सुवर्ण के आर्थिक मूल्य, रिवाज के धार्मिक मूल्य, दानशीलता के नैतिक मूल्य, कविता के सौन्दर्यात्मक मूल्य की चर्चा करते हैं। मूल्यों का वर्गीकरण आसान नहीं है और न ही कोई भी वर्गीकरण वैज्ञानिक ही है फिर भी कुछ विद्वानों ने मूल्यों का निर्धारण किया है। सोलें के अनुसार, ''प्रारम्भ

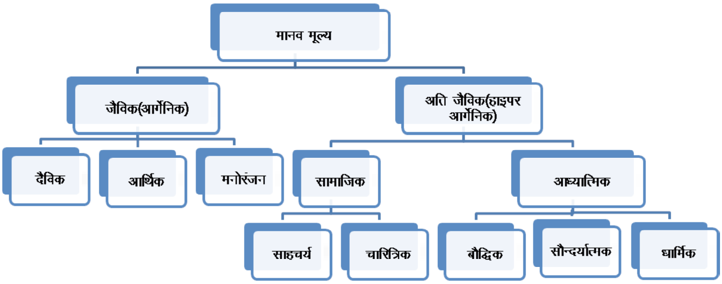

के तौर पर किसी ऐसे सिद्धान्त का निर्धारण करना कठिन है, जिसके आधार पर मूल्य के विभित्र प्रभेदों का निश्चित किया जा सकें, और जिन प्रभेदों को हम संकेत विश्लेषण की प्रक्रिया में प्रकट हो जाए।

जीवन में विभित्र क्षेत्र है, उनमें भी अलग–अलग मूल्य होते है। इनमें से कुछ मूल्य आवश्यकताओं से उत्पन्न होते हैं और कुछ आवश्यकताओं की तुष्टि करते हैं, वे हमारे संवेगों, इच्छाओं और वृत्तियों को आलोचित करते हैं। परन्तु मानव एक जैविक प्राणी मात्र नहीं है, उसका सरोकार परिवार, समाज, राष्ट्र, संस्कृति, नैतिकता, धर्म आदि से भी रहना हैं विलियम लिलि ने मूल्यों को यांत्रिक और निरपेक्ष दी कोटियों में रखा है। उनके अनुसार ''यांत्रिक मूल्य वह है जिसके सहारे किसी अन्य मूल्यवान वस्तु की प्राप्ति होती है, जब कि निरपेक्ष मूल्य वह है, जो स्वयं में ही उत्तम और मूल्यावान है।

उपर्युक्त विचार से मिलते–जुलते ड़ॉ. देवराज ने मूल्य को चरम गौर साधनात्मक दा प्रकार का माना है। ड़ॉ. देवराज–''सांस्कृतिक मूल्यों को चरम मूल्य की संज्ञा देते है।

मानव की केवल जैविक आवश्यकताए नहीं होती वह केवल उनकी प्राप्ति में ही नहीं प्रवत्त होता। सांस्कृतिक नैतिक की प्राप्ति में रूचि रखता है और प्रयत्नशील रहता है। भारतीय चिन्तन–पद्धति में मूल्य का वर्गीकरण चार पुरूषार्थ के रूप में किया गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जिन्हें अपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जो सकता है। वे सारे मूल्य एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे के अन्तर्गत सभाहित हे।

गुरूकुल शिक्षा प्रणाली एवं मानवीय मूल्य

उस समय कागज, कलम और पुस्तकें लेकर पढ़ने–लिखने का अभ्यास करने के बजाय विद्यार्थी का चरित्र गठन करना और जीवन संग्रह में उसे अपना और दूसरों का हित कर सकने योग्य बनाना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। दूसरा यह था कि मनुष्य को केवल भौतिकता की तरह दृष्टि रखने वाला ने बनाकर वह उसके जीवन को आध्यात्मिक की तरफ मोड़ती थी। क्योंकि जो व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपने समान समझकर उनके हित–अनहित का ध्यान न रखेगा वह समाज के लिए कभी श्रेष्ठ नागरिक सिद्ध न होगा। जो स्वार्थी भौतिक लाभों को ही सब कुछ समझकर अपनी बुद्धि का उपयोग अपने लिए अधिक से अधिक सामग्री प्राप्त करने और

दूसरों को उससे वंचित रखने में करता है वह प्राचीन आदर्श की कसौटी पर निस्संदेह एक पढ़ा–लिखा मूर्ख है तथा उसे सुशिक्षित कहना शिक्षा का अपमान करना ही होगा। प्राचीन शिक्षा पद्धति की एक बड़ी विशेषता सामाजिक समानता का प्रचार भी था। धार्मिक भावना, चरित्र और व्यक्तित्व का विकास करके शिक्षा सामाजिक कर्तव्यों पर बल देती थी। तीन ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण) की कल्पना सामाजिक जीवन को भलीभाँति सम्पन्न करने के लिए ही किए गय थे। प्रत्येक व्यक्ति से आशा की जाती थी की वह आने वाली पीढ़ी को पढ़ाकर ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर पारिवारिक दायित्वों को पूरा करके समाज की सेवा करे। विद्यार्थी में यह भावना भरी जाती थी की वह समाज के धन से (भिक्षावृत्ति से) शिक्षा प्राप्त कर रहा है। अतः समाज का उस पर बहुत ऋण है। (अग्निहोत्री आर. पृ. 4) गुरूकुलों में विद्यार्थियों को हर दर्जे की सादगी से रहना पड़ता था । जिससे गरीब–अमीर की अन्तर शिक्षाकाल में तो समाप्त ही हो जाता था। ब्रह्मचर्य के पालन के उद्देश्य से विद्यार्थियों को सब प्रकार की तड़क–भड़क की पोषाक, तेल–फुसेल, सुगन्धित उबटन तथा श्रृंगार सामग्री से दूर रहना पड़ता था। भोजन के लिए गाँव के किसी गृहस्थ के यहाँ से भिक्षा माँग कर लाना ब्रह्मचारियों के लिए नियम रखा गया था। इससे एक ओर जहां विद्यार्थी के हृदय में नम्रता तथा विनय का भाव उत्पन्न होता था। वही दूसरी ओर वह अपने को समाज का ऋणी और उसका एक अंग समझने लगता था और भविष्य में समाज में सेवा करना उसका कर्तव्य हो जाता था। इस प्रकार के वातावरण में नितान्त गरीब बालक भी उच्च शिक्षा भी सहजता से प्राप्त कर लेते थे। कृष्ण और सुदामा तथा राजा द्रुपद तथा द्रोणाचार्य का एक साथ मित्र रूप में शिक्षा प्राप्त करना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में मानवीय मूल्यों का विकास होने की एक क्रमबद्ध प्रणाली थी जिसका परिपालन कर छात्र स्वतः ही मानवीय गुणों को धारण करते थे। जो इस प्रकार है।

1. ब्रह्मचर्यः

वेद के कथनानुसार देवो ने ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के बल पर मृत्यु को परास्त किया और अमर हो गए। वस्तुतः प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में सच्चरित्र और सुसंस्कृत शिक्षार्थी ब्रह्मचारी के रूप में गुरूकुल में प्रविष्ट होते थे। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के मूल में सबसे महत्वपूर्ण 'नैतिक मूल्य' था। ब्रह्मचारी का अभ्यास जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अपरिहार्य था। आश्रम व्यवस्था पर आधारित वैदिक संस्कृति में विद्या अध्ययन काल

ब्रह्मचर्य आश्रम ही कहलाता था। इसलिए अरण में रहने को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। तथा 'ब्रह्मा' के स्वरूप में विचरण करना अर्थात ब्रह्मा का मनन करना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। तथा 'ब्रह्मा' के स्वरूप में विचरण करना अर्थात ब्रह्मा का मनन करना भी ब्रह्मचर्य का अर्थ है। वैदिक ऋषियों के अनुसार जीवन और प्राण का मूल स्त्रोत भौतिक नहीं आध्यात्मिक है और भौतिक तत्व का आध्यात्मिक सत्ता में आकर्षण ही ब्रह्मचर्य है। पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक शक्ति और आध्यात्मिक सत्ता में आकर्षण ही ब्रह्मचर्य है। पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक शक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं को वश में कर लेने से उत्कृष्ट फल प्राप्त होते है इसीलिए ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में प्रबल कार्य शक्ति और संकल्प शक्ति रहती है। ब्रह्मचर्य कोई प्राचीन रूढि नहीं है, यह तो संयम और साधना का सनातन मंत्र है। अतः इसमें मन का नियंत्रण बड़ा आवश्यक है। इससे जीवन में अदम्य उत्साह, शारीरिक बल और शक्ति उत्पन्न होती है जो ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक है। वस्तुतः शिक्षा या ज्ञान एक बौद्धिक प्रक्रिया है। ज्ञान प्राप्ति की सफलता हेतु मन को शुद्ध, निर्विकार रखना अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य वेद की शिक्षा का प्रारंभ बिंदु था। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को पूर्ण मानव, योग्य गृहस्थी और आदर्श नागारिक बनाना प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का ध्येय था। ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ है ज्ञान, वेद, ईश्वर, वीर्यरक्षा, संयम, नियम इत्यादि इन की प्राप्ति और आचरण ही ब्रह्मचर्य है। केवल कुशल, होनहार, कर्मठ, सच्चरित्र वाला छात्र की वहां प्रवेश पा सकता था। यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली सभी मानवों को समान रूप से शिक्षा का अधिकार देती है। किंतु साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि शुचि, अप्रमत्त, मेधावी और ब्रह्मचर्य से संपत्र विद्यार्थी को दी गई विद्या ही सफल होती है। विद्यार्थी गुरू के आश्रम में आता था तब सबसे पहले उसका उपनयन संस्कार करके उसे ब्रह्मचर्य व्रत और गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाता था तब उसे शिक्षा के योग्य बनाने के लिए गुरू उसे तीन रात तक अपने उदर या गर्भ में रखता था अर्थात अपने संपक्र में उसके त्रिविध अज्ञान (जन्म, परिवार और परिवेश) रूप दोषों को दूर कर उसे गुरूकुल में लेता था। इसके लिए वेद का यह भी आदेश है कि गुरू अपने 'आचार' से विद्यार्थी को शिक्षित करें तभी वह आचार्य कहलाएगा।

वैदिक शिक्षण पद्धति में 'अध्ययन' का स्थान तो सर्वथा नगण्य था। **श्रवण, मनन और निदिध्यासन–** ये तीन शिक्षा के सोपान माने गए थे। ब्रह्मचारी गुरूकुल में रहकर प्रतिफल गुरू के जीवन से साक्षात जीवन कला की शिक्षा लेता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली मौखिक परंपरा पर

आधारित थी। इसीलिए वेद को 'श्रुति' कहा जाता है क्योंकि ज्ञान पुस्तकों या पांडुलिपियों में निहित नहीं होता था जिसे पुस्तकालय में सचित किया जा सके अपितु मस्तिष्क में ही निहित होता था और स्वयं आचार्य ही उस समय के जीवित और सचल पुस्तकालय होते थे। अतः गुरू की सेवा से ही विद्या पाई जा सकती थी। इसीलिए ब्रह्मचारी गुरूकुल के लिए प्रतिदिन शिक्षाटन भी करता था। विद्यार्थी में मानवीता एवं त्याग की भावना जगाने के साथ–साथ शिक्षाटन अहंभाव को विगलित करने एवं अनियमित कामनाओं को नियंत्रण करके नैतिक अनुशासन सिखाने में सहायक होता था। इस माध्यम से प्रतिदिन ब्रह्मचारी का गृहस्थों से संपक्र आश्रम एवं समाज, वैराग्य एवं रागपूर्ण संबंधों के बीच एक समन्वयन भी स्थापित करता था। वेद में ब्रह्मचारी के लिए 'व्रतधारी' यह विशेषण भी मिलता है जिससे यही संकेत होता है कि वैदिक शिक्षा में शिक्षार्थी को कुछ व्रतों या नियमों का पालन अनिवार्य था।

2. तप

गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य के साथ–साथ को भी बड़ा महत्व दिया गया है। अपने आप को जो धर्म और राष्ट्र के लिए देता है, उसको निश्चय ही तप कहते है। वैदिक मानव केवल प्रार्थना द्वारा हाथ पर हाथ रख कर सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखता था। वह अपने पुरूषार्थ में विश्वास रखता था और स्वयं अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करता था। उसके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि संसार को यदि ऋत चलाता है तो मानव जीवन को सत्य चलाता है। ऋत ही मानव जीवन में सत्य कहलाता है, कष्ट सहकर भी मनुष्य को सत्य के मार्ग पर रहना चाहिए क्योंकि ऋत और सत्य तप से ही उत्पन्न होते थे। वस्तुतः शिक्षा ज्ञान की साधना है और ज्ञान प्राप्ति के लिए एक ही मार्ग है– एकाग्रता। इंद्रियों तथा चित्त की एकाग्रता का नाम ही परम तप है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने चित्तवृत्ति निरोध या तप को ही शिक्षा का लक्ष्य माना है, यही योग है और योग–साधना ही वैदिक शिक्षा प्रणाली है क्योंकि वैदिक संस्कृति यज्ञ और प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रद्धति में तप श्रम का पर्याय है और गुरूकुल में रहकर ब्रह्मचारी को तप या श्रम का ही अभ्यास करना होता था। नैतिक मूल्य आधारित शिक्षा वैदिक शिक्षा प्रणाली में तपस्या या श्रम का महत्व सुव्यक्त है। वेद की तो स्पष्ट घोषणा है कि देवगण उसी की सहायता करते हैं जो परिश्रम करते करते थक गया है, अतः तप द्वारा निश्चय ही लोक में विजय पाते है।

3. सर्वजनकल्याण की भावना

गुरूकुल शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता मानवीय भावना रही है। वेद में व्यक्ति को समाज के योग्य बनाना ही शिक्षा का केंद्र माना गया। अतः 'सर्वत्र कृण्वन्तो विश्वमार्यम' जैसे आदर्श सामने रखे गए। इनसे अधिक सार्वभौमिक, सार्वकालिक और मानवतावादी शिक्षाप्रद संदेश अन्यत्र मिलने दुर्लभ है। मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द व सद्भाव सिखाना वैदिक शिक्षा प्रणाली का प्रधान लक्ष्य रहा है। इसीलिए समस्त विश्व के सभी प्राणियों के प्रति मित्र दृष्टि का विस्तार और ब्रह्मांड के सभी लोगों में शाति की प्रार्थना वैदिक ऋषियों की मूल कामना थी। वेद के साम्मनस्य सूक्तों में व्यक्त सामाजिक सहयोग की भावना विश्व साहित्य में अद्वितीय ही है और यही समष्ठी भावना प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का आधार भी रही है। गुरू–शिष्य एक साथ आश्रम में रहकर श्रद्धा, साहिष्णुता, तप तितिक्षा और त्याग के अतिरिक्त मानवीयता का भी अभ्यास करते थे। समाज के सभी वर्गों के विद्यार्थी एक साथ रहते तथा पढ़ते थे अतः सामाजिक वैषम्य व भेदभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। आचार्य के साथ बैठकर जब राजा और निर्धन सभी के बालक 'सहनावभतु' और 'सह नौ भुनक्तु' की प्रार्थना करते थे तो उनमें विद्वेष और विघटन के भाव स्वतः ही विगलित हो जाते थे तथा वह शिक्षा केवल ज्ञानसंग्रह नहीं अपितु विश्व–मानवतावादी क्रियावती फलवती शिक्षा होती थी। एक समान खानपान, एक समान रहन सहन और एक सी शिक्षा ही उसे सच्चे समाजवाद को मूर्त्त करने में सहायक होते थे जिसकी परिकल्पना वैदिक ऋषियों ने की थी।

इस प्रकार उक्त संकेतो से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल सैद्धांतिक नहीं अपितु व्यावहारिक भी थी। उसका उद्देश्य मात्र अर्थोपार्जन सिखाना नहीं अपितु धर्म, अर्थ, काम और तीनों का समन्वित सेवन सिखाना था जिससे मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सके और अपने पुरूषार्थ की सिद्धि कर सके। आधुनिक शिक्षा पद्धति केवल मनुष्य का मानसिक व बौद्धिक विकास करने पर ही बल देती है किंतु उससे मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता यही कारण है कि आज शिक्षक जनों के एवं शिक्षा के आंकडे बढ़ने पर भी हमारा नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास सर्वथा अवरूद्ध सा होता जा रहा है। द्रुत औद्योगिकरण एवं भावी समाज के प्रति उदारसीनता की भावना ने विश्व में प्राकृतिक संपदा का क्षय एवं पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाने में बहुत सहायता की है। सापेक्ष रूप से सत्य होने पर भी आधुनिक विकास और वर्तमान शिक्षा के प्रसार ने

सभ्यता का विनाश ही किया है। एक निश्चित सीमा तक भौतिक उन्नति जीवन को आगे बढ़ाती है किंतु उसमे मानवीयता के उत्कर्ष की सम्भावना सुनिश्चित नहीं हो सकती। यही कारण है कि आज का मनुष्य खंड खंड होते जा रहा है, उसके समक्ष अखंड का सत्य का बोध कराने वाला या अखंड व्यक्तित्व निर्माण करने वाला कोई आदर्श नहीं है। सच्ची शिक्षा का तात्पर्य है 'मनुष्य में अतंर्निहित पूर्णता का प्रकाशन'। अतः शिक्षा के द्वारा मानव के अन्दर छिपी हुई दानवीय प्रवृत्तियों को नष्ट कर उसे मानवीय आदर्शो के प्रति सजग बनाया जाता है जिससे कि वह दिव्यता की ओर उन्मुख हो। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति एक निश्चित लाक्षात्मिक शाष्वत पद्धति थी और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मनुष्य को इस दिव्य व्यक्तित्व निर्माण की साधना सिखाती है और मनुष्य को मनुष्यत्व की शिक्षा देती है। इसीलिए उसमें शरीर, मन या वृद्धि का विकास करने पर नहीं अपितु समग्र संतुलन पर बल दिया गया है और 'आत्मविद्या' यानि अपने अन्तस् की पहचान कराने के लिए सत्य, धर्म, व्यवहार–शुद्धि, मानवीय मूल्य और नैतिकता प्राकृतिक चेतना एवं परिवेष के प्रति संवेदना आदि उदात्त तत्वों को भी समाविष्ट किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज की उपयोगितावादी शिक्षा को जीवन के समग्र विकास की दृष्टि से रचनात्मक मोड़ देने के लिए आवश्यक है कि उसमें जीवन मूल्यों की शिक्षा, मानवीय संबंधो की शिक्षा, परिवेश परिपोषण की शिक्षा, भावनात्मक संतुलन की शिक्षा तथा सर्वोपरि सिद्धांत और व्यवहार के समन्वयन की शिक्षा भी समाविष्ट की जाए। शिक्षा में परिवेश और नैतिक मूल्यों के प्रति जागृति का समावेश होने से अंतः प्रकृति और बाह्मप्रकृति के संतुलन में सहायता मिलेगी तथा समाज में सच्चे, सर्वांगीण रूप से विकसित, आध्यात्मिक आदर्शों से अनुप्राणित मनुष्यों के निर्माण की प्रक्रिया पुनः आरंभ हो सकेगी जो प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का केंद्र बिंदु है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिप्रा पब्लिकेशन, ड़ा. जै श्री (2008) दूसरा संस्करण पेज संख्या–1
   साई बाबा का मूल्य पर आधारित साहित्य
2. रामकृष्ण मिशन साहित्य दस्तावेज पेज–108
   चिन्मयानन्द मिशन साहित्य
3. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान
   नैतिक शिक्षा उपागम प्रकाशन पेज संख्या 206

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986
5. अहमपाल पब्लिशर्जस ड़ा. जे. एस. वालिया (2014) संस्करण पेज संख्या–239
6. वी. एन. रेड्डी की पुस्तक एजुकेशन एंड वैल्यूज पेजसंख्या–74
ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यार्थ), गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2006
7. वैशेषिकसुत्रोपस्कार, नारायण मिश्र, वाराणसी, चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, 2002
8. मनुस्मृति, व्या श्रीकृष्ण ओझा, जयपुर, राजप्रकाशन मंदिर, 2005

◆◆◆

शिक्षा तथा मानवीय मूल्य

हबीब इकराम

एसोसिएट प्रोफेसर (से0नि0), डी0ए0वी0 ट्रेनिंग कालेज, कानपुर (उ०प्र०)

शब्द शिक्षा बड़ा ही वृहद एवं विस्तृत शब्द है। शिक्षा के अनेक रूप हैं, कार्य हैं, अर्थ है, परिभाशा हैं और हैं, अनेक स्तर। अलग–अलग स्तर की अलग–अलग शिक्षा एवं उसका एक नामकरण होता है। वास्तव में देखा जाये तो शिक्षा मनुष्य को मानव बनाती है, आदमी को इंसान के रूप में परिवर्तित करती है। शिक्षा से बालक न केवल मानसिक एवं बौद्धिक रूप से बलवान होता है बल्कि भावात्मक एवं सामाजिक रूप से भी सुदृढ़ होता है और यह होता है मानवीय मूल्यों के आधार पर जिन्हें हम जीवन मूल्य के साथ–साथ भारतीय मूल्य के नाम से भी जानते है।

भारत को प्राचीनकाल से लेकर आजतक अनेक शिक्षा प्रणालियों से गुजरना पड़ा है। वैदिक कालीन शिक्षा से लेकर अंग्रेजों के आधिपत्य तक भारतीयता की सुगंध से प्रेरित होकर शिक्षा भारतवासियों को मिली। जबकि आज की शिक्षा प्राईमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक अंग्रेजों की देन है। हम चाहे जिस प्रकार अथवा जिस स्तर की शिक्षा ग्रहण करें हमारा उद्‌देश्य/लक्ष्य एवं परिणाम सुन्दरता से मण्डित होना चाहिये और यह सब कुछ मिलेगा भारत के जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाले मानवीय मूल्यों को अपनाने से।

भारतीय दृष्टिकोण से देखा जाये तो मनुष्यता की रक्षा निमित्त जिन गुणों की उपेक्षा की जाती है वे मानवीय मूल्य से अभिप्रेरित होते है। इसे यूँ भी कह सकते है कि आध्यात्मिक विचारों, चरित्र निर्माण तथा ज्ञान का समुचित सम्मिश्रित जो व्यक्ति द्वारा नियन्त्रित एवं निर्देशित होता है वे कुछ और नहीं मानवीय मूल्य हैं। यह भी कहा गया है कि 'मानव के लिये क्या त्यागने योग्य है और क्या करने योग्य है' जिन तत्वों द्वारा मार्गदर्षित किया जाता है उन्हें मानवीय मूल्य कहा जाता है।

मानवीय मूल्य जीवन के आचरण एवं व्यवहारों को बनाने वाले सूत्र एवं यंत्र माने गये है। सामाजिक परम्परायें एवं विभिन्न संस्कृतियाँ जीवन एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर बनती हैं। प्रत्येक देश के जीवन मूल्य वहाँ के धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर बनते है और बन कर पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। भारतीय शिक्षाविदों एवं

दार्शनिकों ने मूल रूप से मूल्यों को दो रूप में पहंचाना है। प्रथम–भौतिक मूल्य तथा द्वितीय–आध्यात्मिक मूल्य। भौतिक मूल्य के अन्तर्गत प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सौहार्द्र, अहिंसा और देशप्रेम आदि आते है जबकि आध्यात्मिक मूल्यों में चार फलों यथा–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को लिया गया है।

वैसे दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जहां एक ओर सामाजिक मूल्य हमारे समाज के प्रचलित है वहीं जनतान्त्रिक मूल्य भी अपना एक अलग अस्तित्व भी रखते है। समाज में जिन आदर्षो को महत्ता प्रदान करके व्यक्ति पहले स्वयं, तदुपरान्त समाज को नियंत्रण में रखता है, वे सामाजिक मूल्य कहलाते है। जीवन के प्रति सही एवं उचित दृष्टि रखकर ये मूल्य व्यक्ति एवं समाज के विकास एवं प्रगति में भरपूर सहायक होते है। इसके विपरीत समाज में जनतांत्रतिक आधार पर प्रगतिषीलता, संवेदनषीलता एवं बौद्धिकता साधी जाती है, वे जनतांत्रिक मूल्य कहलाते हैं। सत्यता एवं समता के भाव के साथ पारदर्षिता को सही रूप में समाहित कर लिया जाये तो निष्चिय ही ये जनांतात्रिक मूल्य लोगों में सही संवाद एवं वातावरण उत्पन्न का सकेगें।

भारत जैसे देश में जहां आध्यात्मवाद, ईष्वरवाद, परलोकवाद एवं नियतिवाद का सदा से बोलबाला रहा है। वहाँ के जीवन मूल्य अपने आप में अनूठे एवं हृदयग्राही माने गये है। भारतीय मूल्य जो कि विभिन्न धर्मो के सिद्धान्तों एवं नियमों–उपनियमों तथा विभिन्न संस्कृतियों से पोशित हैं अपने अन्दर प्राचीनता के साथ–साथ नवीनता की भी सुगन्ध समेटे हुये हैं भारतीय मूल्यों के पुश्पित एवं पल्लिवत होने का श्रेय केवल वेद, उपनिशद, स्मृतियों आदि को नहीं जाता है वरन् उन मनीशियों,. ऋशियों–मुनियों, साध ू–संतो, पीरो–फकीरों एवं सूफियों को जाता है जिन्होने धर्म एवं संस्कृति के आधार पर समस्त को एक सूत्र में पिरोने का सफलतम प्रयास किया है।

भारतीय मूल्य जिन्होंने भारत में आने वाले विदेषियों तक की विचार– व्यवस्था को प्रभावित कर दिया, सदा से व्यापक और लचीले रहे हैं। आइये भारतीय मूल्यों को जानने एवं समझने का प्रयास किया जाये। वैदिक वाड्मय में माननीय मूल्यों की प्रचुरता स्पशट रूप से दिखाई देती है। सम्पूर्ण वाड्मय मानवमात्र के अभ्युदय और कल्याण की दिषा तथा दिषा निर्देशित करता है। वष्हदारण्यक उपनिशद कथन है–'अस्तो मा सद् गमय (हे प्रभु ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो)। ज्ञान को सत्य की सिद्धि मानकर यहां कल्याण की कामना की जाती है। सत्य पर चलने से मनुष्य सदाचार के पथ पर चलने वाला बन जाता है।

वास्तव में मनुष्य की लौकिक तथा पारलौकिक कल्याणकारी उपलब्धि में सदाचार का महती योगदान है। मनुष्य को तत्व मानव बनाते हैं, वे हैं—कर्तव्य पूर्ति का भाव, सुन्दर आचरण, जिसमें चरित्र भी समाहित है तथा समस्त बोधगम्य गुण। ये सभी कुछ सदाचारी व्यक्ति के सदाचार से प्रस्फूटित होते रहते है। उच्च श्रेणी के षुद्ध आचारण वाले संत—महात्मा, पीर एवं पैगम्बर इसी सत्पथ पर चलने वाले व्यक्तित्व रहे हैं। कहा भी गया है—

''धर्म न दूसरे सत्य समाना।''

इसी श्रृँष्खला में 'सत्यमेव जयते' भी एक जगमगाता मील का पत्थर है जिसके विशय में जितना कहा जाये वह कम है। कबीर जिन्होंने स्वयं अपने विशय में कहा है कि 'मसि कागद छुयों नहीं कलम गह्यो नहीं हाथ' एक समाज सुधारक, सद्गुरू की महिमा के गायक, निर्गुण के प्रचारक, प्रेम के साधक, सच्चे भक्त होने के साथ—साथ आन्तरिक षुद्धि को वरीयता देने वाले रहस्यवाद से परिपूर्ण एक कवि थे, ने सत्य को तप का रूप दिया—

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके ह्रदय सांच है ताके ह्रदय आप।।

इस प्रकार सत्य जैसा वेदों एवं अनेक धार्मिक ग्रन्थों में बताया गया है हमें रोषनी की ओर ले जाता है, अंधेरे से निकाल कर। ध्यानपूर्वक देखा एवं समझा जाये तो साँच को आँच नहीं के साथ—साथ सत्य ही हमें तपा करके खरा सोना बनाता है।

अगला रूप आता है 'सत्यम शिवम सुन्दरम' का अर्थात् जहाँ सत्य है, वहाँ शिव है और जहाँ शिव है, वहाँ सुन्दरता है। सत्य कार्य करने से कल्याण की उत्पत्ति होती है इसके विपरीत जहाँ झूठ होगा वहाँ अकल्याणकारी बातें होंगी और परिणाम अमंगलकारी होंगे। अतः भारतीय मूल के आधार पर केवल कल्याण का निर्माण करना चाहिये और कल्याण वहीं उपस्थित होगा जहाँ सत्य होगा। सत्य के साथ अहिंसा रहने पर बड़े—बडे तूफान टाले जा सकते है। सत्य की बड़ी महिमा है और सत्य ही एक बाद एक कदम बढ़ा कर कल्याण और सुन्दरता की ओर ले जाता है।

अगला भारतीय मूल्य है—'वसुधैव कुटुम्बकम'। सारी वसुधा के, सारे संसार के समस्त लोग, व्यक्ति अथवा इंसान एक समान हैं। ये बात अलग है भारत—भूमि के सभी व्यक्तियों की बात तो दूर की है; एक प्रदेश,

एक षहर, एक गली और एक परिवार के लोग एक साथ होकर नहीं रह पाते हैं, पृथ्वी और वसुधा की बात तो छोड़ दीजिये। हाँ बुरे लोग एवं खराब मनोवृतियों के व्यक्तित्व जल्द ही एक दूसरे के साथी हो जाते हैं। कहा भी गया है चोर–चोर मौसेरे भाई। इसके विपरीत भारतीय संस्कृति का मानवीय मूल्य वसुधैव कुटुम्बकम है जिसके दर्शन भारत की सरजमीं को छोड़ने पर ही दिखते हैं।

इसका एक उदाहरण कुछ इस प्रकार दिखता है कि जब अमेरिका की धरती पर स्वामी विवेकानन्द जलयान से उतरने के बाद कुछ अकेले हो गये तो एक अमेरिकी ने उनसे कहा आप कोई विदेशी मालूम होते हैं। तो विवेकानन्द ने उस अमेरिकी व्यक्ति की ओर मुसकुराते हुये उत्तर दिया, ''मैं यहाँ विदेशी कैसे हूँ ? सारी दुनियॉ मेरा कुटुम्ब है। भूमि के एक भाग तक चलकर आना क्या विदेश कहलायेगा?'' इस बात का उस अमेरिकी पर इतना असर पड़ा कि उसने हृदय से उन्हें अपने साथ चलने को आमंत्रित किया। यह है वसुधैव कुटुम्बकम। एक सिक्ख गुरू ने क्या खुब कहा है–

''एक नूर से सब जग उपज्यां
कौन भले कौन मन्दे''

इस्लाम की पवित्र धर्म पुस्तक कुरान में स्थान–स्थान पर प्रेम और सत्य की सीख देते हुये सारे विश्व की भलाई अर्थात वसुधैव कुटुम्ब की कामना की गयी है। एक स्थान पर परमपरमेष्वर अल्लाह ने अपने नबी हजरत मोहम्मद साहब जिनका चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में इकत्तीस बार वर्णन मिलता है और सभी धार्मिक पुस्तकों यथा–पुराणों, बौद्ध ग्रन्थों, तौरात एवं इंजील आदि में जिनका वर्णन अलग–अलग नामों से आया है, से कहा–''ए मोहम्मद ! अल्लाह ने तुम्हें भी हक यानी सच्चाई का बयान कर सकने तथा यह बता सकने की दुनिया में भेजा कि सभी लोग उसी अल्लाह के बन्दे है चाहे वे किसी भी नाम से जाने जाते हों।''

कुरान के वसुधैव कुटुम्बकम के बाद गीता में ये आना कि 'परित्राणाम् साधूनाम विनाषाय च दुश्कृताम धर्म संस्थापनार्थाय समभावनी युगे–युगे' क्या दर्षाता है ? सारे संसार की कामना और रक्षा की बात कही गयी है। यानी–बुराईयों का नाष हो और अच्छाईयों अर्थात साधुता स्थापित हो।

उदारीकरण, वैष्वीकरण न जाने कितने 'करण' से सम्पन्न इस अति आधुनिक युग ने पैसे व पद की अंधाधुन्ध दौड़ को आज बड़े प्रतिषत में लोगो को बेलगाम, लालची, हवसवाला और असन्तोशी बना दिया है। जीवन के भारतीय मूल्य की कड़ी में अगला अनमोल हीरा है 'संतोश'। संतोश अर्थात धैर्य वह मानवीय मूल्य है जो हमें सुकुन और फिर सुख प्रदान करता है **(संतो ाम् परम सुखम्)**। धैर्य धारण करने को ही हमें अपने बड़ों से सुनने को मिला है। कुरान में भी आया है–इन्नल्लाह मअस्साबरीन अर्थात संतोश करने वालो के साथ तुम्हारा अल्लाह है, तुम्हारा ईष्वर है। देखिये कैसा गुणकारी एवं लाभदायक है संतोश। कवि कबीरदास ने कहा है–

रूखा सूखा खाय के ठंडा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जीव।।

और

साई इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
मैं भीं भूखा न रहूं साधू भीं भूखा न जाये।।

इस प्रकार सभी धर्माचायों एवं महापुरूशों ने चाहे वह ईसा हों या मूसा, मोहम्मद साहब हो या महात्मा बुद्ध या जरस्थु, दयानन्द हों या विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर या महात्मागांधी सभी ने मानवीय मूल्यों की बात की है जो संविधान के चार मूल आदर्षो (न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व) पर आधारित दिखते है। सब की भावना में साम्य दृष्टिगोचर है। इतना ही नहीं आज का शिक्षाविद्, समाजसुधारक, विधिवेत्ता एवं राजनेता इत्यादि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा के आज के प्रारूप में क्षरण महसूस कर रहा है।

आज की शिक्षा में भारतीय मानवीय मूल्यों की कमी के कारण एक विस्फोटक स्थिति पैदा होती जा रही है। आज विद्यार्थी से सम्बन्धित अभिवाक परिवार, समुदाय एवं सभी षिक्षण संस्थायें त्रस्त हैं परन्तु जब तक हर कोई स्वयं सतत प्रयास नहीं करेगा तब तक कुछ भी संभव नहीं है क्योंकि भारतीय मूल्यों के षिक्षण का कोई निष्चित पाठ्यक्रम अथवा षिक्षण विधि नहीं है और न ही कोई समय सीमा। ये जीवनभर चलने वाली प्रक्रिया है और जब तक हम भारतीय मूल्यों की अवहेलना करते रहेंगे तब तक आपाधापी, सामाजिक क्षरण एवं अन्तरकलह की स्थिति रहेगी। मानवीय

मूल्यों को ध्यान मे रखकर दी जाने वाली शिक्षा से ऋग्वेद का अन्तिम मंत्र जो एकता को लेकर चलता है, के साकार होने की सम्पूर्ण संभावना उभर कर सामाने आती है।

''समानी व आकूतिः समाना ह्रदयानी वः।
समानमस्तु वो मनों यथा वः सुसहासति।।

संदर्भ

1. नैतिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक मूल्यों के आधार–डॉ0 ए0सरीन व डॉ0 (श्रीमती) एस0 त्यागी
2. पाठ्यक्रम विकास एवं आकलन–डॉ0 गीता दुजेजा, डॉ0 गुरविन्दर कौर, डॉ0 विजय गुप्ता
3. संस्कृति वाड्मय में राष्ट्रीय एकता एवं लोक कल्याण की अवधारणा– डॉ0 नीलम त्रिवेदी
4. जनतांत्रिक मूल्य–डॉ0 एम0ए0 अंसारी
5. हिन्दी गौरव–डॉ0आर0डी0 अग्रवाल, डॉ0 एच0एल0जैन

◆◆◆

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का सामाजिक–आर्थिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 राजेश बाबू

2202/7 आवास विकास कॉलोनी, बोदला, आगरा, (उ०प्र०)

प्रस्तावना

शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ–प्रदर्शन करती है। एक विद्वान का कथन है कि **''ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है''**, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को परखने की क्षमता प्रदान करता है एवं उसे उचित व्यवहार करने में प्रवृत्त करता है। शिक्षा से हमें इस संसार में सुख, समृद्धि एवं सुयश प्राप्त होता है तथा परलोक में मोक्ष। शिक्षा द्वारा प्राप्त प्रकाश से हमारे संयम को उन्मूलन एवं कठिनाइयों का निवारण होता है। और जीवन के वास्तविक महत्व को समझने की शक्ति उत्पन्न होती है। शिक्षा से हमें ऐसा सही दृष्टिकोंण उपलब्ध होता है कि हम में बुद्धि, विवेक तथा निपुणता की वृद्धि होती है। प्राचीन भारतीयों का दृढ़ विश्वास था कि –शिक्षा से विकसित बुद्धि ही यर्थाथ बल है। उन्होंने दृढ़ता से कहा था कि शिक्षा कल्पना के समान हमारे समस्त मनोरथों को सिद्ध करती हैं। भृतहरि ने नीतिशतक में लिखा है – **''विद्याहीन मनुष्य पशु के समान है।''** अतः शिक्षा ही हमें मनुष्य बनाती है और शिक्षा रहित हमारा जीवन व्यर्थ है। भारत अपनी कला संस्कृति तथा दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है। किसी भी राज्य के विकास के लिए वहॉ के प्राकृतिक संसाधनों के साथ–साथ मानवीय संसाधनों के विकास का वस्तु–परक विश्लेषण एवं अनुसंधान होना वर्तमान युग की आवश्यकता है। इसलिए शोधार्थी ने मूल्यों से सम्बन्धित समस्या को अपने शोध कार्य के लिए चुना है।

अध्ययन का महत्व

प्रस्तुत अध्ययन शैक्षिक परिवेश में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि शैक्षिक परिवेश में वर्तमान में विशेष परिवर्तन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में उन मूल्यों का ह्रास हो रहा है जो उनके

व्यक्तित्व को एक संगठित आधार प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज का विद्यार्थी भौतिक मूल्यों की चकाचौंध में आध्यात्मिक मूल्यों से बहुत दूर होता जा रहा है। यही कारण है कि उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास न होकर उसमें अनके प्रकार की विसंगतियों का उदभव हो रहा है। मूल्यों के साथ–साथ उसकी संवेगात्मक स्थिरता भी छिन्न–भिन्न होती जा रही है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम के स्थान पर शैक्षिक, कलुष, तमस एवं कुण्ठाओं के आधार बनते जा रहे हैं। जिनके परिप्रेक्ष्य में आज का विद्यार्थी जिसके कंधों पर राष्ट्र की भावी प्रगति का भार है वह अपने उद्देश्य से भटकता हुआ अनेक प्रकार की विसंगतियों में लिप्त होता जा रहा है। उसका अधिकांश समय संरचनात्मक कार्यों में नहीं अपित मादक पदार्थों के सेवन से लेकर हत्या, आत्महत्या, चोरी, डकैती आदि जैसे नैतिक मूल्यों, धार्मिक मूल्यों, आदर्शों एवं कलात्मक पक्षों से अलग हटती जा रही है वह प्रत्येक दृष्टि से विद्यार्थियों का उपयुक्त मार्गदर्शन न करते हुए उन्हीं विघटनकारी प्रवृतियों में लिप्त होने के लिए बाध्य कर रही है, ऐसी स्थिति में शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शैक्षिक परिवेश सभी कुछ असंगठित होते जा रहे हैं उनमें दिन प्रतिदिन समन्वय का अभाव होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण शैक्षिक परिवेश को आदर्शों, मूल्यों, संवेगों एवं धार्मिक पक्षों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जानकारी प्रदान की जाए, जिससे आज का भटका हुआ विद्यार्थी समाज के मानवीय मूल्यों को आत्मसात कर सके जो उनके लिए तथा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अपेक्षित एवं उपयोगी है। इस प्रकार यह अध्ययन शैक्षिक सन्दर्भ में अपना एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता

आज सामान्य व्यक्ति की यह धारणा बनती जा रही है कि मेहनत, मजदूरी एवं ईमानदारी से जीने वाला हर व्यक्ति पिस रहा है और झूठ एवं फरेब का कारोबार करने वाला व्यक्ति निरन्तर ''दिन दूनी रात चौगुनी'' प्रगति कर रहा है। ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है। इस धारणा ने शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासनहींनता, सत्य के प्रति अनास्था एवं कर्तव्य के प्रति उदासीनता को जन्म दिया है जिसके फलस्वरूप समाज में उत्थान का मार्ग अवरूद्ध हो गया है। आज की सामाजिक विसंगतियों में प्रत्येक शिक्षका का दायित्व हो जाता है कि वे स्वयं मूल्यों के विकास पर बल दें क्योंकि मूल्यहीन शिक्षा, शिक्षक, समाज एवं देश को विनाश की ओर ले जायेगी न कि विकास की ओर। अतः इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए

है कि बी0 एड0 के छात्र–छात्राएं भावी शिक्षक हैं जिससे कि वे अपने मूल्यों के विकास में एवं दूसरों में मूल्यों का विकास कर सकते हैं। अतः वर्तमान समाज में जहॉ मूल्यों में गिरावट, छलकपट एवं एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ सी लगी है ऐसे में भावी शिक्षकों में इन मूल्यों का होना अति आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हमारे समाज में शिक्षक इन मूल्यों से युक्त होंगे तो निश्चित ही वे सशक्त होंगे।

समस्या कथन

''शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का सामाजिक आर्थिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन''

समस्या में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषा

मूल्य– मूल्य एक ऐसी आचरण–संहिता या सद्‌गुणों का समावेश है जिसको अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है। इस मूल्य में मानव की धारणाएं, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि अन्तःनिहित होते हैं।

मूल्य एक प्रकार की मानव की अन्तःनियन्त्रित व्यवस्थित ऊर्जा है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने के पूर्व यह निर्णय करता है कि वह उसे अपनाये या त्याग दे, जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में निर्णायक ढ़ंग से आता है तो वह उसका मूल्य कहलाता है।

सामाजिक–आर्थिक स्तर – सामाजिक आर्थिक स्तर वह स्थिति है जिसमें एक परिवार का सदस्य सांस्कृतिक आधिकारों में प्रचलित औसत स्तर तथा समुदाय की सामूहिक प्रतिक्रियाओं में भाग लेने के सन्दर्भ में प्राप्त करता है, वही उसकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति है।

शोध अध्ययन के उद्‌देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्‌देश्य निम्न प्रकार से हैं–

1. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक मूल्यों का अध्ययन करना।
2. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के आर्थिक मूल्यों का अध्ययन करना।

3. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्यों का अध्ययन करना।

4. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर का अध्ययन करना।

5. उच्च, निम्न और मध्य वर्ग के सामाजिक–आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन करना।

अध्ययन की सीमाएं

1. प्रस्तुत अध्ययन आगरा जिले तक सीमित है।

2. प्रस्तुत अध्ययन केवल 200 विद्यार्थियों तक सीमित है।

3. प्रस्तुत अध्ययन केवल ड़ॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा से सम्बन्धित बी0 एड0 महाविद्यालयों तक ही सीमित है।

4. प्रस्तुत अध्ययन बी0 एड0 के विद्यार्थियों का सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी से प्राप्त अंकों के आधार पर छात्र–छात्राओं को उच्च, मध्य एवं निम्न स्तरों में विभाजित करता है।

5. प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त मूल्य परीक्षण में सम्मिलित मूल्यों में से सिर्फ सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं धार्मिक मूल्यों को ही शामिल किया गया है।

6. वैधता, विश्वसनीयता और समय सीमा आदि को दृष्टिगत रखते हुए प्रभावशाली चरों के परीक्षणों का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य और निम्न स्तर के छात्र–छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

2. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य और निम्न स्तर के छात्र–छात्राओं के आर्थिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

3. बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य और निम्न स्तर के छात्र–छात्राओं के धार्मिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

अध्ययन के चर

स्वतन्त्र चर– आगरा महानगर के बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राएं, सामाजिक आर्थिक स्तर, अध्ययन की आवश्यकता, महत्व, उद्देष्य इत्यादि।

आश्रित चर –मूल्य

नियंत्रित चर– शिक्षा महाविद्यालय, माध्यम, पाठ्यक्रम, आयु तथा कक्षा इत्यादि।

मध्यस्थ चर – कालेजों की संस्कृति, शैक्षिक उपलब्धि इत्यादि।

अध्ययन की विधि –

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्थ

प्रस्तुत अध्ययन में ड़ॉ0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त बी0 एड0 महाविद्यालयों में से अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में से मात्र 200 छात्र–छात्राओं को न्यादर्ष के रूप में चुना गया है।

सांख्यिकीय – प्रदत्तों की व्याख्या विश्लेषण एवं संष्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि तथा ''टी'' मान इत्यादि का प्रयोग किया गया है।

उपकरण

1.सामाजिक आर्थिक स्तर – श्री राजवीर सिंह, श्री राधेष्याम एवं श्री सतीष कुमार द्वारा निर्मित सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी, नेषनल साइकोलॉजी कारपोरेषन, आगरा

2. मूल्य शिक्षक सूची – ड़ॉ0 एस0 पी0 अहलूवालिया एवं ड़ॉ0 हरभजन लाल सिंह, नेषनल साइकोलॉजी कारपोरेषन, आगरा।

प्रदत्तों की व्याख्या एवं विश्लेषण

तालिका –1: छात्र–छात्राओं का सामाजिक आर्थिक वर्गीकरण

विद्यार्थी	स्तर			कुल संख्या
	उच्च	मध्य	निम्न	
छात्र	25	50	25	100
छात्राएं	25	55	20	100

प्रस्तुत तालिका–1 से स्पष्ट है कि आगरा महानगर के विभिन्न बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत कुल 200 विद्यार्थियों का चयन प्रस्तुत अध्ययन के लिए किया गया है। इसमें कुल 100 छात्राओं एवं 100 छात्रों का चयन किया गया है। उनके द्वारा प्रश्नावली में भरे गये आँकड़ों के आधार पर उच्च मध्य एवं निम्न स्तर में बाँटा गया है जिसकी संख्या उपरोक्त तालिका में दी गयी है।

छात्र–छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्य

तालिका 2 : बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक मूल्यों के मध्यमान एवं मानक विचलन

स्तर	संख्या		मध्यमान		मानक विचलन	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च	25	25	233.33	236.32	31.84	31.68
मध्य	55	50	233.18	236.26	27.40	32.13
निम्न	20	25	233.20	235.87	27.43	31.13
कुल	100	100	233.24	236.15	27.98	31.85

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर की छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्यों की प्रश्नावली के आधार पर प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमषः 233.33, 233.18 एवं 233.20 है जो कि उच्च से मध्य स्तर की ओर घटता है तथा फिर मध्य से निम्न स्तर की ओर जाने पर मामूली सा बढ़ता है। उपरोक्त तालिका का अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तरों की छात्राओं के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। ये मान सभी स्तरों की छात्राओं के लिए लगभग समान हैं। जबकि छात्रों के मध्यमान उच्च से निम्न स्तर की ओर क्रमषः 236.32, 236. 26 एवं 235.87 घटते क्रम में हैं तथा इन मानों में भी छात्राओं के मध्यमानों

के समान कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। छात्राओं के आँकड़ों से प्राप्त मानक विचलन क्रमषः 31.84, 27.40 एवं 27.43 है जिसका मान उच्च से मध्य स्तर की ओर घटते क्रम में है।

यह मान फिर मध्य से निम्न की ओर जाने पर मामूली सा बढ़ जाता है जबकि छात्रों का मानक विचलन क्रमषः 31.68, 32.13 एवं 31.13 है जो कि उच्च से मध्य स्तर की ओर बढ़ता है तथा मध्य से निम्न स्तर की ओर घटते क्रम में है। यह क्रम छात्राओं में प्राप्त मानक विचलन के क्रम से भिन्न है समस्त छात्राओं का माध्य 233.24 व मानक विचलन 27.98 एवं छात्रों का माध्य 236.15 और मानक विचलन 31.85 है। छात्रों का माध्य छात्राओं से अधिक है।

तालिका 3: बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के सैद्धान्तिक मूल्यों का एस0 ई0 एवं मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता जाँचने के लिए टी–मान

स्तर	संख्या		एस0 ई0		टी–मान	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च–मध्य	25	25	5.63	5.14	0.03	0.01
मध्य–निम्न	55	50	4.15	5.40	0.005	0.07
निम्न–उच्च	20	25	6.53	6.40	0.02	0.07

उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट है कि उच्च–मध्य, मध्य–निम्न एवं निम्न–उच्च समूहों की छात्राओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर प्राप्त टी–मान क्रमषः 0.03, 0.005 तथा 0.02 हैं। ये मान सांख्यिकीय दृष्टि से 0.

तालिका क–4: बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के आर्थिक मूल्यों के आधार पर प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन

स्तर	संख्या		मध्यमान		मानक विचलन	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च	25	25	238.33	240.09	36.36	30.07
मध्य	55	50	238.04	239.90	38.01	29.79
निम्न	20	25	237.71	239.13	28.51	30.69
कुल	100	100	238.03	239.71	35.79	30.02

01 एवं 0.05 स्तर पर टी–तालिका के मानों क्रमषः 2.576 एवं 1.96 से कम हैं अतः विभिन्न समूहों की छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् सभी समूहों की छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्य समान हैं। इसी प्रकार छात्रों के समूहों के आँकड़ों का टी–मान क्रमषः 0.01, 0.07 तथा 0.07 है जो कि सांख्यिकीय दृष्टि से टी–तालिका के 0.01 एवं 0.05 स्तरों के सांख्यिकीय मानों से कम है। अतः विभिन्न समूहों के छात्रों के सैद्धान्तिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

छात्र–छात्राओं के आर्थिक मूल्य

उपरोक्त तालिका–4 से स्पष्ट है कि उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर की छात्राओं के आर्थिक मूल्यों का प्रश्नावली के आधार पर प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमषः 238.33, 238.04 और 237.71 है जो कि उच्च से निम्न स्तर की ओर घटता है। इसका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तरों की छात्राअें के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। ये मान सभी स्तरों की आवश्यकताओं के लिए लगभग समान हैं। वहीं छात्रों का माध्य उच्च से निम्न की ओर घटते क्रम में क्रमषः 240.09, 239.90 एवं 239.13 है। इनमें भी छात्राओं के मध्यमानों के समान कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। छात्राओं के आँकड़ों का प्रमाणिक विचलन क्रमषः 36.36, 38.01 एवं 28.51 है जो उच्च से मध्य की ओर बढ़ता है व निम्न की ओर जाने पर घटता है जबकि छात्रों का प्रमाणिक विचलन क्रमषः 30.07, 29.79 एवं 30.69 है जो कि उच्च से मध्य स्तर की ओर घटते क्रम में है तथा फिर निम्न स्तर की ओर ज्यादा हो जाता है। यह छात्राओं में प्राप्त मानक विचलन के क्रम से भिन्न है। सभी छात्राओं का माध्य 238.03 व मानक विचलन 35.79 है जबकि छात्रों का माध्य 239.71 है और मानक विचलन 30.02 है। छात्रों का माध्य छात्राओं से अधिक है तथा दोनों में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 5: बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के आर्थिक मूल्यों का एस0 ई0 एवं मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता जाँचने के लिए टी–मान

स्तर	एस0 ई0		टी–मान	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च–मध्य	7.55	4.79	0.04	0.04
मध्य–निम्न	5.46	5.08	0.06	0.15
निम्न–उच्च	7.12	6.18	0.09	0.16

विभिन्न समूहों के छात्रों के आँकड़ों का टी–मान क्रमषः 0.04, 0.15 एवं 0.16 है जो कि सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 एवं 0.05 स्तरों के टी–तालिका के मानों से कम है। अतः विभिन्न समूहों के छात्रों के आर्थिक मूल्यों में कोई अन्तर नहीं है।

छात्र–छात्राओं के धार्मिक मूल्य

तालिका –6 से स्पष्ट होता है कि उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर की छात्राओं से धार्मिक मूल्यों के आधार पर प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमषः 228.33, 228.46, 229.92 हैं जो कि उच्च से निम्न स्तर की ओर मामूली सा बढ़ता जाता है। अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न स्तरों की छात्राओं के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। ये मान सभी स्तरों की छात्राओं के लिए लगभग समान हैं। इसी प्रकार छात्रों का मध्यमान उच्च से निम्न स्तर की बढ़ते क्रम में क्रमषः 228.77, 227.98 एवं 228.26 है तथा मध्यमानों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है।

छात्राओं के आँकड़ों से प्राप्त मानक विचलन क्रमषः 2560, 19.52 एवं 19.64 है। यह मान उच्च से मध्य स्तर की ओर घटता है तथा फिर थोड़ा सा निम्न स्तर की ओर बढ़ता है जबकि छात्रों का मानक विचलन क्रमषः 31.99, 32.67 एवं 33.63 है जो कि उच्च से निम्न स्तर की ओर बढ़ते क्रम में है। यह क्रम छात्राओं में प्राप्त मानक विचलन के क्रम से भिन्न है। समस्त छात्राओं का माध्य 228.80 एवं मानक विचलन 20.39 है एवं छात्रों का माध्य 228.20 और मानक विचलन 32.71 आया है। छात्राओं का माध्य छात्रों से थोड़ा सा अधिक है तथा दोनों के मध्यमानों में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है।

तालिका 6: बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्यों के आधार पर प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन

स्तर	संख्या		मध्यमान		मानक विचलन	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च	25	25	228.33	228.77	25.60	31.99
मध्य	55	50	228.46	227.98	19.52	32.67
निम्न	20	25	229.92	228.26	19.64	33.63
कुल	100	100	228.80	228.20	20.39	32.71

तालिका 7: बी0 एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत उच्च, मध्य एवं निम्न स्तर के विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्यों का एस0 ई0 एवं मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता जाँचने के लिए टी–मान

स्तर	एस0 ई0		टी–मान	
	छात्राएं	छात्र	छात्राएं	छात्र
उच्च–मध्य	4.12	5.21	0.03	0.15
मध्य–निम्न	2.96	5.57	0.49	0.05
निम्न–उच्च	4.91	6.67	0.32	0.08

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि उच्च–मध्य, मध्य–निम्न एवं निम्न–उच्च समूहों की छात्राओं से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर टी–मान 0.03, 0.49 एवं 0.32 है। ये मान 0.01 एवं 0.05 स्तर पर टी तालिका मान से कम हैं। अतः विभिन्न समूहों की छात्राओं के धार्मिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् छात्राओं के धार्मिक मूल्यों में समानता है। उपरोक्त समूहों के छात्रों के आँकड़ों का टी–मान क्रमषः 0.15, 0.05 और 0.08 है जो कि सांख्यिकीय दृष्टि से टी–तालिका के 0.01 एवं 0.05 स्तरों के मान से कम है। विभिन्न समूहों के छात्रों के धार्मिक मूल्यों में भी कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष

सैद्धान्तिक मूल्य– बी0 एड0 के समस्त छात्र–छात्राओं के सैद्धान्तिक मूल्यों में अन्तर ज्ञात करने के लिए उनसे प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किया गया। तदोपरान्त मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता जानने के लिए समस्त विद्यार्थियों से प्राप्त आँकड़ों का एस0 ई0 ज्ञात कर टी–मान प्राप्त किया गया। मध्यमान एवं मानक विचलन से प्राप्त एस0 ई0 का मान 2.68 से 7.41 एवं टी–मान 0.01 से 1.12 के बीच आया जो कि टी–तालिका के मान से कम है। अतः छात्राओं तथा छात्रों के सैद्धान्तिक मूल्यों में सांख्यिकीय दृष्टि से कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यद्यपि विभिन्न स्तरों के छात्र और छात्राओं के मध्यमानों से अधिक है। अतः छात्रों के सैद्धान्तिक मूल्य छात्राओं से अधिक है।

चूँकि मध्यमानों के अन्तर की टी–मान सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 एवं 0.05 स्तरों पर महत्वपूर्ण नहीं है। अर्थात् विभिन्न स्तरों की छात्राओं–छात्रों में सैद्धान्तिक मूल्य लगभग समान है। अतः यह परिकल्पना स्वीकार करने

योग्य है।

आर्थिक मूल्य– बी0 एड0 के समस्त छात्र–छात्राओं के आर्थिक मूल्यों का अन्तर ज्ञात करने के लिए उनसे प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किया गया। तदोपरान्त मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए मध्यमान एवं मानक विचलन की सहायता से एस0 ई0 और टी मान ज्ञात किया। एस0 ई0 का मान 2.60 से 7.41 एवं टी मान 0.02 से 2.54 के मध्य प्राप्त हुआ। यह टी मान सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 स्तर के टी–तालिका मान से कम व 0.05 स्तर से अधिक है। अतः छात्राओं व छात्रों के आर्थिक मूल्यों में 0.01 स्तर पर कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। जबकि 0.05 स्तर पर उनके आर्थिक मूल्य भिन्न हैं।

विभिन्न स्तरों के विद्यार्थियों के मध्यमानों के अन्तर की टी–मान छात्राओं–छात्रों को छोड़कर सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 व 0.05 स्तरों पर महत्वपूर्ण नहीं है अर्थात् उन सभी के आर्थिक मूल्य लगभग समान है। जबकि छात्र एवं छात्राओं के मध्य टी मान 0.01 स्तर के टी–तालिका के मान से कम है अर्थात् उनके आर्थिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है जबकि यह मान 0.05 स्तर के टी–तालिका मान से अधिक पाया गया है। अतः उनके आर्थिक मूल्यों में सार्थक अन्तर है। यद्यपि छात्राओं व छात्रों के मध्यमानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सभी स्तरों के छात्रों का मध्यमान छात्राओं के मध्यमान से लगभग 3 प्रतिशत तक अधिक है अतः छात्रों के आर्थिक मूल्य छात्राओं से अधिक हैं। चूँकि विभिन्न स्तरों के विद्यार्थियों का टी–मान सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 व 0.05 स्तर पर महत्वपूर्ण नहीं है। अतः यह परिकल्पना स्वीकार करने योग्य है।

धार्मिक मूल्य–बी0 एड0 के विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के धार्मिक मूल्यों का अन्तर ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों से प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात करने के उपरान्त मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता जानने के लिए एस0 ई0 व टी–मान ज्ञात किया गया। एस0 ई0 मान 2.44 से 7.30 एवं टी–मान 0.01 से 0.49 के मध्य प्राप्त हुआ। सभी स्तरों के विद्यार्थियों का टी मान सांख्यिकीय दृष्टि से 0.01 एवं 0.05 स्तरों पर टी–तालिका मे मान से कम है अतः उनके धार्मिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् विभिन्न स्तरों की छात्राओं व छात्रों के धार्मिक मूल्य समान हैं। छात्राओं एवं छात्रों के मध्यमानों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सभी स्तरों की छात्राओं व छात्रों के मध्यमान लगभग समान हैं। अतः उनके धार्मिक मूल्य समान हैं। अतः यह परिकल्पना स्वीकार करने योग्य है।

सुझाव

प्रस्तुत शोध कार्य तथा शोध अवधि से प्राप्त विभिन्न समस्याओं के आंकलन तथा अनुभवों के आधार पर निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

आज के समय में छात्र–छात्राएं अपने मूल्यों को भूलते जा रहे हैं और उनके लिए मूल्यों का महत्व नहीं रह गया है। ऐसी परिस्थिति में छात्र–छात्राओं के लिए यह अध्ययन अधिक आवश्यक है जिससे कि व्यक्ति अपने मूल्यों को सुरक्षित रख सकेगा और समाज में अपना स्थान बना पायेगा। यदि आज के विद्यार्थी में मूल्यों का अभाव है तो कल का समाज, समाज न रहकर उसमें असामाजिकता का विकास हो जायेगा।

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षो से यह स्पष्ट है कि सामाजिक–आर्थिक स्तर भी एक कारक है अतः उसी आधार पर छात्र–छात्राओं के विषय चुनाव में सहायता मिलती है।

प्राचार्य का महाविद्यालय में प्रमुख स्थान होता है। वह स्वयं विद्यार्थियों के प्रति सचेत रहता है। प्राचार्य को अपने महाविद्यालय में ऐसे कार्यक्रम कराने चाहिए जिससे शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास हो सके। विद्यार्थी अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों से बच सकें। जो निम्न स्तर के विद्यार्थी हैं उनको वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए, जिससे वे पढ़ने में रूचि ले सकें।

अध्यापकों को अपने अन्दर मूल्यों के संरक्षण के साथ विद्यार्थियों में इस प्रकार के गुण विकसित करने चाहिए ताकि वह अपने शिष्यों को अंधेरे से उजाले की ओर ले जा सकें।

माता–पिता अपने बच्चों को विद्यालय में दाखिला करवा देते हैं लेकिन वह यह जानने की कोशिश नहीं करते कि महाविद्यालय का वातावरण कैसा है? अतः माता–पिता को ऐसे महाविद्यालय का चयन करना चाहिए जहाँ का वातावरण ऐसा हो जिसमें उनके बच्चों में मूल्यों का सही विकास हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

एंडरसन एवं अन्य 1983 – जर्नल आफ साइकोलॉजी, वाल्यूम, 115 पृ0 185–191.

बुचानन 1992– क्रिस्टी एवं अंडर साइक्लोजिकल बुलेटिन वाल्यूम 111 नं0 2 पृ0 62–107

फिसनवर्ग एवं अन्य 1992– चाइल्ड डवलपमेंट वाल्यूम 62 नं0 6 पृ0 1393–1498

गर्ग एवं अन्य 1983– ऐषियन जर्नल ऑफ साइकलोजीकल वाल्यूम 1 नं0 02, पृ0 19–22

मेहता सी0 एस0 1982– इण्डियन साइक्लोजीकल रिव्यू वाल्यूम 22 नं0 1 पृ0 1–5.

पटेल एवं अन्य 1977 जर्नल आफ साइकलोजी रिसर्च वाल्यूम 21 नं0 1 पृ0 178–184

◆◆◆

भारतीय उच्च शैक्षणिक संस्थानों में वाणिज्य शिक्षा और शिक्षण में आचार विचार, मूल्यों, चरित्र और नैतिकता पर बल

डॉ. अमित अग्रवाल

वाणिज्य संकाय, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ०प्र०)

प्रस्तावना

नैतिकता मानव व्यवहार का उल्लेख करती है जहां नैतिकता व्यावहारिक गतिविधि है और नैतिकता उस मानव व्यवहार (चर्चिल, 1982) पर सैद्धांतिक, व्यवस्थित और तक्रसंगत प्रतिबिंब का वर्णन करती है। मान विश्वासों और दृष्टिकोणों से जुड़े होते हैं और मानव व्यवहार को निर्देशित करते हैं (रेनी, 2007)। नैतिकता, मूल्य, और नैतिकता समाज, आध्यात्मिकता और संस्कृति (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन, 1991) से दृढ़ता से जुड़ी हुई है। नैतिकता के तीन अर्थ हैं। सबसे पहले, नैतिकता को आमतौर पर नैतिकता, सार्वभौमिक मूल्यों और आचरण के मानकों के एक पर्याय के रूप में लिया जाता है, जिसे हर तक्रसंगत व्यक्ति हर दूसरे का पालन करना चाहता है। दूसरे, नैतिकता दर्शन की एक अच्छी तरह से स्थापित शाखा है जो मानव मूल्यों और मानकों के स्रोतों का अध्ययन करती है, और उन्हें मानव व्यक्तिगत और सामाजिक स्थिति के सिद्धांतों के भीतर खोजने के लिए संघर्ष करती है। तीसरा, पेषेवर नैतिकता, और यह सार्वभौमिक नहीं है और न ही यह नैतिक सिद्धांत है। यह आचार संहिता के विशेष कोड को संदर्भित करता है।

लोग नैतिक या नैतिक अलगाव में अपना जीवन नहीं जीते हैं, बल्कि विशेष नैतिक परंपराओं के भीतर बड़े होते हैं (रिस्सि,1999)। उदार लोकतंत्र तभी पनप सकता है जब उसके नागरिक कुछ नैतिक और नागरिक मूल्यों को धारण करते हैं और कुछ सद्गुणों को प्रकट करते हैं (एल्थोफ और बर्कोवित्ज, 2006)। आधुनिक युग में, प्रौद्योगिकी अपनी ईमानदार स्थिति को बनाए रखते हुए सर्वव्यापी फैषन में समाज को प्रभावित कर रही है और वाणिज्य और प्रौद्योगिकी दोनों ही समाज से प्रभावित हो रहे हैं। वाणिज्य और प्रौद्योगिकी में तेजी से वृद्धि और सामाजिक जटिलताएं भी नैतिकता, मूल्यों और नैतिकता के महत्व और समाज को उनके लाभों को रेखांकित करती हैं।

20 वीं शताब्दी के बाद से तेजी से वाणिज्य और तकनीकी प्रगति हुई है। हाल ही में, वैश्वीकरण समाज, वाणिज्य शिक्षा और शिक्षण प्रथाओं को गहराई से प्रभावित कर रहा है। 20 वीं शताब्दी से पहले, वाणिज्य प्रथाएं वाणिज्य शिक्षा के दार्शनिक और तत्वमीमांसात्मक पहलुओं की सराहना के साथ नैतिक और धार्मिक मूल्यों पर केंद्रित थीं। उस समय, सामाजिक गतिविधियाँ दोनों सहायक थीं, साथ ही वाणिज्य प्रथाओं द्वारा समर्थित थी। सकारात्मक पक्ष यह था कि इसने वाणिज्य को ऐसे काम करने में सक्षम बनाया, जिसने नैतिक और उच्च मूल्यों को बढ़ावा देने के अलावा, व्यक्तिगत नैतिक और आध्यात्मिक विकास को प्रभावित किया। लेकिन उस प्रणाली की तुलना में वर्तमान प्रणाली वाणिज्य प्रथाओं का बहुत समर्थन नहीं करती है और यह काफी बिगड़ती पाई जाती है। यह तक्र दिया गया था कि विचारधारा का अभ्यास करने वाला मौजूदा वाणिज्य व्यक्ति के आंतरिक नैतिक और आध्यात्मिक खुलासा और पूर्ति के खिलाफ दृढ़ता से कार्य कर रहा है। इस तरह की विरोधी विचारधारा किसी व्यक्ति को जीवन और सत्य की अच्छाई और सुंदरता की सराहना करने से रोक सकती है। इस प्रकार यह एक ध्वनि शरीर में एक ध्वनि मन के लिए उचित अभिविन्यास और आधार प्रदान नहीं कर सकता है जो नैतिकता और मूल्यों को बढ़ाता है। जो वास्तव में, ऐतिहासिक रूप से समाज, धर्म, पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों, कार्य मूल्यों और नैतिकताओं द्वारा प्रदान किए गए थे।

अध्ययन का उद्देश्य

क्या यह है कि शिक्षा के बुनियादी ढांचे के विस्तार से अच्छे मानव का निर्माण होगा, जिसमें मूल नैतिकता, मूल्य और सद्गुण शामिल होंगे, जैसा कि संतों, सूफियों, हमारे प्राचीन समाज के गुरुओं और हमारी समृद्ध सभ्यता द्वारा की गई है? क्या हम नैतिकता, मूल्यों और गुणों के ज्ञान के बिना प्रभावी प्रबंधक, टेक्नोक्रेट, नौकरशाह, राजनेता और उद्यमी पैदा कर सकते हैं?

डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम – 'सीखने से रचनात्मकता मिलती है, रचनात्मकता सोचने की ओर ले जाती है, सोच ज्ञान प्रदान करती है, ज्ञान आपको महान बनाता है।'

भारतीयों को मोटे तौर पर अपनी भूमिकाओं और पेषेवर नैतिकता पर गर्व है। सभी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वे अपने कर्तव्यों को पूर्ण समर्पण के साथ करते हैं। हालाँकि उच्च शिक्षा क्षेत्र में जीवन के सभी क्षेत्रों

में बहुत बड़ी संख्या में विपथन और विचलन आज भारत के युवाओं के बीच व्यावसायिक उत्कृष्टता, शांति और सद्भाव को बिगाड़ रहे हैं।

1. नैतिकता क्या है, इसे समझें।
2. नैतिकता, मूल्यों और चरित्र पर्यावरण में मानव व्यवहार को समझें।

अनुसंधान पद्धति

खोजपूर्ण अनुसंधान मूल्यवान अंतर्दृष्टि देता है, विचारों और मूल्यवान पहलू को अधिक खोजपूर्ण तरीके से उत्पन्न करता है। प्राथमिक संमक (डेटा) हाथ में विषिष्ट उद्देश्यों के लिए पहले हाथ की जानकारी देता है, जबकि द्वितीयक संमक (डेटा) में अनुसंधान में मूल्यवान अंतर्दृष्टि का वर्णन करने और उजागर करने के लिए महत्वपूर्ण जानकारी होती है। द्वितीयक संमक (डेटा) पुस्तकों, प्रकाशित रिपोर्टों, इंटरनेट, पुस्तकालयों, पत्रिकाओं और कुछ सरकारी एजेंसियों की रिपोर्ट से प्राप्त किए गए हैं। शेड्यूल और प्रष्नावली तैयार करके डेटा एकत्र किया गया था। 200 लोगों को विषय बनाया गया था। उत्तरदाताओं को यादृच्छिक रूप से चुना गया है और साक्षात्कार देने के लिए अनुरोध किया गया है। प्रष्न पहले से निर्धारित क्रम में पूछे गए हैं। इन आंकड़ों का विश्लेषण/हल कंप्यूटर की मदद से किया जाता है

एथिक्स और वैल्यू के स्रोत

हमारे द्वारा धारण किए गए मूल्यों का मुख्य भाग हमारे शुरुआती वर्षों में परिवार, शिक्षकों, दोस्तों और अन्य लोगों से स्थापित है। हमारे पहले के सही और गलत विचारों में से अधिकांश, हमारे माता–पिता द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से तैयार किए गए थे। जैसे–जैसे हम बढ़ते हैं, और अन्य मूल्य प्रणालियों के संपक्र में आते हैं, हमारे मूल्य भी बदलते हैं। किसी भी समाज में मूल्य गठन के छह मुख्य स्रोत हैं:

आचार विचार और मूल्यों के स्रोत

चत्र–1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि एथिक्स और मूल्यों के स्रोतों का विश्लेषण करनें से ज्ञात होता है कि उत्तरदाताओं ने परिवार स्कूल राज्य और धर्म संस्थान को मूल्य बनाने में प्रथम वरीयता दी है, द्वितीय वरीयता पेषेवर संस्था को दी है। तृतीय वरीयत साथी और

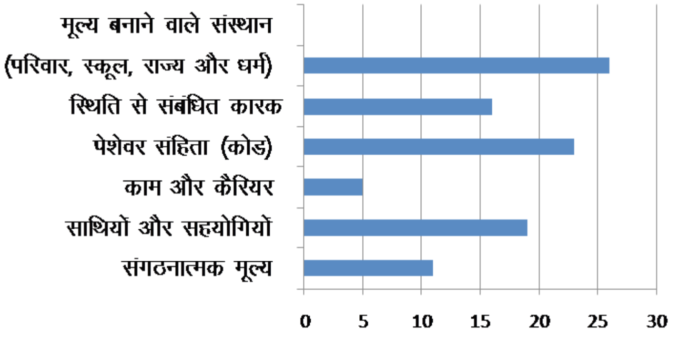

स्त्रोतः स्वतः सर्वेक्षण

चित्र संख्या – 01

सहयोगियों के साथ काम करते समय एथिक्स और मूल्यों का विकास होता है चतुर्थ वरीयता संगठन में स्थिति से संबंधित कार्य को दी गई है जबकि पांचवी वरीयता संगठनात्मक मूल्य को प्रदान की गई है और अंतिम वरीयता काम और कैरियर को प्रदान की गई है।

नैतिकता और मूल्यों के लाभ

हमारे युवाओं को नैतिक शिक्षा समय की आवश्यकता है, क्योंकि यह आज के युवाओं के लिए विभिन्न लाभों की ओर ले जाता है। चित्र–2 में उत्तरदाताओं ने 10 प्रमुख लाभ कारकों के संबंध में सहमति का प्रतिशत दर्शाया गया है। सर्वाधिक प्रतिशत नैतिक विकास का है और न्यूनतम प्रतिशत सहकारी जीवन कारक का है। उनमें से कुछ हैं :–

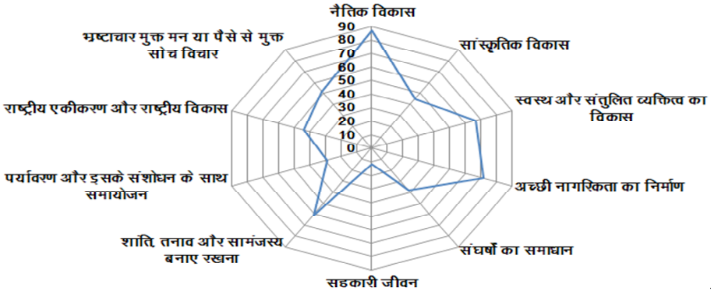

स्त्रोतः स्वतः सर्वेक्षण

चित्र संख्या – 02

कॉमर्स में शिक्षण प्रथाओं के माध्यम से नैतिकता, मूल्यों, नैतिकता और चरित्र शिक्षा को बढ़ावा देना

मान और नैतिकता सीधे छात्रों (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन, 1991) को नहीं सिखाई जानी चाहिए क्योंकि कुछ छात्र संवेदनशील हो सकते हैं और विभिन्न तरीकों से प्रतिक्रिया दे सकते हैं। हालांकि, छात्रों के दिमाग में बौद्धिक ईमानदारी के उचित पोषण से उनके ज्ञान, नैतिकता, मूल्यों और नैतिकता के संकाय को समृद्ध करने में मदद मिलेगी। यह दृष्य राष्ट्रीय वाणिज्य शिक्षा मानकों (राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद, 1996) द्वारा दिए गए दिशा–निर्देशों के साथ संरेखित करता है। नैतिकता और मूल्यों को बढ़ावा दिया जा सकता है (यूनेस्को, 1991) शिक्षण तकनीकों की एक असंख्य श्रृंखला के माध्यम से जैसे कि भूमिका इम खेल, नाटक, सिमुलेषन, शैक्षिक खेल, बहस, चर्चा, परियोजना, समूह कार्य, शैक्षिक यात्रा, साक्षात्कार, विचार–मंथन और कविताओं, कहानियों, गीतों, तस्वीरों, पोस्टरों और नारों का उपयोग करके संसाधन सामग्री का उपयोग करना। अन्य शिक्षण तकनीकों में परियोजना मूल्यांकन, समूह कार्य मूल्यांकन, अवलोकन तकनीक, साक्षात्कार, पूर्व चवेज परीक्षण, पोस्ट, परीक्षण, उपाख्यानात्मक रिकॉर्ड और ऑडियो मअंसन दृष्य मूल्यांकन (चर्चिल एट अल।, 2013) शामिल हैं। ये तकनीक शिक्षकों, वाणिज्य और अन्य जीवन की दुनिया के नैतिकता, मूल्यों और नैतिकता पर विचार करते हुए महत्वपूर्ण मुद्दों के साथ महत्वपूर्ण जुड़ाव पर छात्रों का मूल्यांकन करने में प्रभावी ढंग से मदद करती हैं। वाणिज्य पाठ के उद्देश्यों को केवल सामग्री ज्ञान पर विचार करने के बजाय परीक्षा प्रक्रियाओं (जैसे, निर्णय बनाने और साक्ष्य के मूल्यांकन) के अनुसरण के माध्यम से महसूस किया जा सकता है। शिक्षण विशेष रूप से वैज्ञानिक मूल्यों के सीमित ड़ोमेन की अभिव्यक्ति पर ध्यान केंद्रित कर सकता है, और वे कैसे एकीकृत या अन्य मूल्यों से जुड़े हो सकते हैं जो सामाजिक ड़ोमेन में मौजूद हैं।

कार्य स्थान के माध्यम से व्यावसायिक मूल्यों को अपनाना

प्रचलित सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम, विशेष रूप से कॉमरेड़ों में, जो पारंपरिक अनुशासनात्मक लाइनों के साथ आयोजित किए जाते हैं, लगातार असफल हो रहे हैं। इसका कारण वाणिज्य और प्रौद्योगिकी की वर्तमान प्रथाओं और संस्कृति की समझ को बढ़ावा देना, और जीवन के प्रासंगिक पहलुओं (जैसे, नागरिक, काम, व्यक्तिगत, सामाजिक और अर्थव्यवस्था) के साथ वाणिज्य और प्रौद्योगिकी को एकीकृत करने की आवश्यकता को

समझना है (बाधा) 2000)। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान स्कूल या विश्वविद्यालय की सामान्य शिक्षा छात्रों को कार्यबल में प्रवेश करने के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान नहीं कर सकती है, जिसके लिए पूर्व तैयारी की आवश्यकता होती है। नियोक्ता नए स्नातकों से कुछ कौषल और अनुभवों की अपेक्षा करते हैं जो उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, और उन्हें कार्यस्थल में जल्दी से अनुकूलित करने की उम्मीद करते हैं। एक सह – ऑपरेटिव एजुकेशन आइडिया (जिगार्ड एंड कैंपबेल, 2011) पेषेवर मूल्यों और नैतिकता को बढ़ावा देने के लिए एक अद्वितीय सीखने का माहौल प्रदान कर सकता है। यह नैतिक तक्र, पेषेवर पहचान और अखंडता को विकसित करने में मदद कर सकता है। इसलिए, कार्य प्लेसमेंट कार्यक्रमों में संलग्न होने से, छात्रों को लाभ हो सकता है जब वे कार्यस्थल मूल्य प्रणालियों और कार्य प्रथाओं की नैतिक प्रकृति का पालन और प्रतिबिंबित करते हैं।

सारांश

एक प्रषंसनीय और समझदार तरीके से छात्र अपने वाणिज्य ज्ञान को उपयोगी और प्रासंगिक समझ सकते हैं जब वे हरित जी.डी.पी., स्वास्थ्य, पर्यावरण, ऊर्जा, सामग्री वाणिज्य और उद्योग आधारित मामलों जैसे वैज्ञानिक विषयों पर विचार करते हैं और वाणिज्य से संबंधित उन्मुख और नैतिक मुद्दों को उनके सामने प्रस्तुत करते हैं। कई शिक्षक संज्ञानात्मक और स्नेही लक्ष्यों के साथ वाणिज्य पाठ्यक्रम डिजाइन को संरेखित करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। छात्र वास्तविक जीवन में वाणिज्य अनुप्रयोगों और व्यावहारिक निहितार्थों को देखना चाहते हैं जैसे औद्योगिक सेटिंग्स में अनुभव और विभिन्न समस्याओं से निपट कर, उन मुद्दों को हल करना जो उन्हें कॉमरेड़ों में दिलचस्पी ले सकते हैं।

इस बात के पुख्ता सबूत हैं कि छात्रों को कॉमर्स की शिक्षा में नैतिक मुद्दों को अधिक व्यापक रूप से संबोधित किया जाता है, जैसा कि अक्सर होता है। इसलिए प्रस्तुत शिक्षण तकनीक, तरीके और महत्वपूर्ण मुद्दे छात्रों की महत्वपूर्ण सोच, मूल्यों, नैतिकता, नैतिकता और चरित्र विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव ड़ाल सकते हैं। और एक ही समय में नैतिक मुद्दों को संबोधित करते हुए लागू वाणिज्य और संबंधित व्यावसायिक परिणाम सीखने का अवसर प्रदान करेगा। छात्रों को वाणिज्य में ठोस नींव बनाने और वैज्ञानिक ज्ञान के आगे अधिग्रहण को सक्षम करने में मदद करता है जो निर्णय लेने में संस्कृति और संदर्भ पर विचार करता है, और अपने ज्ञान को

अन्य ज्ञान से संबंधित करता है। छात्र पर्यावरण को समझने और नियंत्रित करने में अपने वैज्ञानिक ज्ञान को लागू करने की क्षमता हासिल करते हैं। वे वाणिज्य, प्रौद्योगिकी, और निर्णयों, वाणिज्य की विभिन्न सीमाओं, वाणिज्य और प्रौद्योगिकी के बीच अंतर और कैसे वाणिज्य और प्रौद्योगिकी के विचार व्यक्तिगत और राजनीतिक मूल्यों से भिन्न होते हैं। कुल मिलाकर, इन प्रस्तुत शिक्षण तकनीकों, विधियों और महत्वपूर्ण मुद्दों से छात्र प्रेरणा और जुड़ाव बढ़ेगा जिससे बेहतर भविष्य के नागरिक पैदा होंगे।

निष्कर्ष

उचित शिक्षा प्रक्रिया अच्छे, आरामदायक और सुरक्षित जीवन के लिए एक पासपोर्ट है। प्यार और खुषी, मूल्य और सम्मान, मूल नैतिकता या तो समाप्त हो रही है या चट्टान के नीचे खराब हो रही है।

इन दिनों में सभी प्रकार की उच्च शिक्षा के शिक्षण संस्थानों ने न तो समुदाय की परवाह की और न ही दूसरों का सम्मान किया। मानवीय संबंधों को कोई महत्व नहीं दिया जाता है जो एक प्रभावी शिक्षा के लिए आवश्यक प्रासंगिक विषय हैं। जिम्मेदारियों और आत्म–अनुशासन के गुणों का कोई प्रोत्साहन या प्रषंसा नहीं है। इसलिए कॉलेज का समाज के सेवक के रूप में कोई प्रक्षेपण नहीं है।

वाणिज्य शिक्षकों और समाज के अधिकांश लोग वाणिज्य पाठ्यक्रम में नैतिकता, मूल्यों, नैतिकता और चरित्र शिक्षा की उपस्थिति का दृढ़ता से समर्थन करते हैं जो एक प्रेरक संदर्भ प्रदान कर सकते हैं। वाणिज्य सीखने के लिए और वाणिज्य और प्रौद्योगिकी के समाजीकरण और मानवीकरण पहलुओं को समझना। छात्र अपने वाणिज्य अध्ययन के सामाजिक प्रभावों के बारे में उच्च जागरूकता विकसित कर सकते हैं। आत्म–निर्भर व्यक्ति बन सकते हैं और निर्णय लेने में अपनी भूमिकाओं को पहचानने, स्वीकार करने और आंतरिक करने में सक्षम हो सकते हैं। इस तरह के शिक्षण से छात्रों के निर्णय, महत्वपूर्ण सोच की क्षमता और प्रेरणा बढ़ेगी और साथ ही साथ साथियों में जुड़ाव को बढ़ावा मिलेगा। छात्र समाज में विभिन्न नैतिक और नैतिक मुद्दों को संभाल सकते हैं, जिम्मेदारी ले सकते हैं और एक अच्छे चरित्र का निर्माण कर सकते हैं।

तेजी से वाणिज्य और तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और सामाजिक संरचना में उभरती जटिलताएं अर्थशास्त्र, राजनीति और पर्यावरण के संबंध में सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित और बदल रही हैं। और जिस तरह

से वाणिज्य संगठित और संचालित होता है। इस तरह की बदलती परिस्थितियां भविष्य के वाणिज्य शिक्षकों के लिए चुनौतियों का सामना करती हैं कि कैसे नैतिकता, मूल्यों, नैतिकता और चरित्र शिक्षा को पाठ्यक्रम विकास और कार्यान्वयन के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। वर्तमान वाणिज्य शिक्षा में छात्रों के निराकरण और आंतरिक नैतिक मूल्यों और आदर्शों की पूर्ति के लिए पर्याप्त आंतरिक अभिविन्यास और आधार प्रदान करने का अभाव है जो उनके विकास के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार यह नैतिकता, मूल्यों और नैतिकता पर जोर देता है जिसे एक बेहतर वाणिज्य शिक्षा पाठ्यक्रम के माध्यम से परिलक्षित किया जा सकता है।

इस लेख ने उचित स्कूल कार्यक्रमों और शिक्षण निर्देशों को विकसित करने के लिए एक ठोस सैद्धांतिक ढांचे की अवधारणा और कलाकारी के लिए नैतिक, नैतिकता और चरित्र शिक्षा से संबंधित दार्शनिक और शैक्षणिक सवालों के कठोर संष्लेषण और विश्लेषण प्रस्तुत किए। एक छात्र पर केंद्रित और पूछताछ शिक्षण आधारित शिक्षण दृष्टिकोण छात्रों की प्रेरणा और सगाई को बढ़ाने और व्यक्तिगत मूल्यों और व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों के साथ जुड़ाव बढ़ाने के लिए सुझाया गया है। अनुसंधान ने सिद्ध किया है कि वाणिज्य शिक्षण और सीखने की प्रथाओं को नैतिकता, मूल्यों और नैतिकता को बढ़ावा देते हुए लागू किया जा सकता है। इस लेख में शोध के उदाहरणों के साथ कुछ महत्वपूर्ण शिक्षण तकनीकों, विधियों और मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है और सुझाव दिया गया है जो छात्रों के मन में मूल्यों, नैतिकता और नैतिकता को बढ़ावा देने और छात्र प्रेरणा और सगाई को बढ़ा सकते हैं। जबकि शिक्षण तकनीकों और चर्चा की गई विधियों को लागू करना महत्वपूर्ण है। यह भी आवश्यक है कि शिक्षक आगामी शोध से नए उभरते मुद्दों, अनुदेशात्मक तरीकों और तकनीकों के बारे में अच्छी तरह से जानते हैं और नियमित रूप से अवगत कराते हैं। यह शिक्षकों को नैतिकता, मूल्यों, नैतिकता और चरित्र शिक्षा को शिक्षा देने के संदर्भ में वैचारिक उपकरण विकसित करने में मदद कर सकता है।

REFERENCES

Alavi, H. R. (2007). Al Ghazāli on moral education. Journal of Moral Education, 36(3), 309 319. doi: 10.1080\03057240701552810

Althof, W., & Berkowitz, M. W. (2006). Moral education and character education: Their relationship and roles in citizenship education. Journal of Moral Education, 35(4), 495 518. doi:

10.1080\0305724060101220
Arthur, J., & Carr, D. (2013). Character in lesarning for life: A virtue ethical rationale for recent resesarch on moral and values education. Journal of Beliefs & Values, 34(1), 26 35. doi: 10.1080\13617672.2013.759343
Bala Harish (2011): Challenges of Higher Education in 21st Century Journal of Education and Practice, Vol 2, No 6 pp78-81.
Berkowitz, M. W. (1999). Obstacles to tesacher training in character education. Action in Tesacher Education, 20(4), 1 10. doi: 10.1080\01626620.1999.10462930
Bullougha, R. V., Jr. (2011). Ethical and moral matters in tesaching and tesacher education. Tesaching and Tesacher Education, 27(1), 21 28. doi: http:\\dx.doi.org\10.1016\j.tate.2010.09.007
Campbell, E. (2008). Tesaching ethically as a moral condition of professionalism. In D. Narváez & L. Nucci (Eds.), The international handbook of moral and character education (pp. 601 617). New York, NY: Routledge.
Churchill, L. R. (1982). The tesaching of ethics and moral values in tesaching:
Some contemporary confusions. The Journal of Higher Education, 53(3), 296 306.
doi: 10.2307\1981749
Deepti Gupta and Navneet Gupta (2012): Higher Education in India: Structure, Statistics and Challenges, Journal of Education and Practice, Vol 3, No 2, pp 17-24.
Goldsmith Conley, E. (1999). School culture before character education: A model for change. Action in Tesacher Education, 20(4), 48 58. doi: 10.1080\01626620.1999.10462934
Halstesad, J. M. (2007). Islamic values: A distinctive framework for moral education? Journal of Moral Education, 36 (3), 283 296. doi: 10.1080\03057240701643056
Han, H. (2014). Analysing theoretical frameworks of moral education througha Lakatos's philosophy of commerce. Journal of Moral Education, 43(1), 32 53. doi: 10.1080\03057240.2014.893422
Jones, E. N., Ryan, K., & Bohlin, K. (1999). Character education & tesacher education: How are prospective tesachers being prepared to foster good character in students? Action in Tesacher Education, 20(4), 11 28. doi: 10.1080\01626620.1999.10462931.
Kang, M. J., & Glassman, M. (2010). Moral action as social capital, moral

thoughat as cultural capital. Journal of Moral Education, 39(1), 21 36. doi: 10.1080\03057240903528592
Lickona, T. (1999). Character education: Seven crucial issues. Action in Tesacher Education, 20(4), 77 84. doi: 10.1080\01626620.1999.10462937
Rosnow, R. L. (1990). Tesaching resesearch ethics througha role play and discussion. Tesaching of Psychology, 17(3), 179 181. doi: 10.1207\s15328023top1703_10.
Sanderse, W. (2012). The mesaning of role modelling in moral and character education. Journal of Moral Education, 42(1), 28 42. doi: 10.1080\03057240.2012.690727
Shirley van Nuland and B.P. Khandelwal (2001): Ethics in education: the role of tesacher codes Canada and South Asia in Ethics and corruption in education published by IIEP, UNESCO.
United Nations Educational Scientific and Cultural Organization. (1991). Values and ethics and the commerce and technology curriculum. Bangkok, Thailand: Asia and the Pacific Programme of Educational Innovation for Development.
Uttara Dukkipati (2010): Higher Education in India: sustaining long term growth, South Asia Monitor, Vol. 141, 01 May, 2010.
Yap, S. F. (2014). Beliefs, values, ethics and moral resasoning in socio scientific education. Issues in Educational Resesarch, 24(3), 299 319.
Zegwaard, K., & Campbell, M. P. (2011). Ethics and values: The need for student awareness of workplace value systems. Paper presented at the 2011 WACE World Conference, Philadelphia.

◆◆◆

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

डॉ० अनीता
असिस्टेट प्रोफेसर, न्यू ऐरा कालिज ऑफस साइंस एण्डटैक्नोलोजी गाजियाबाद (उ०प्र०)

सारांश

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्त्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।मूल्य शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति समाज में सकारात्मक मूल्यों की क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करता है जिसमें वह रहता है । मूल्य शिक्षा का अर्थ है, दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी दौरों को समझना। इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्व, लोकतांत्रिक तरीके से जीवन यापन, संस्कृति की समझ, महत्वपूर्ण सोच आदि को समझ सकते हैं।वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप अत्याधुनिक है। विविध विषयों के विशिष्ट अध्ययन की परिपाटी प्रचलन में है।विविध विषय तथा नैपुण्यता परक ज्ञान के पश्चात् भी जिस चीज की कमी व्यक्ति तथा समाज में चिन्तकों के द्वारा अनुभूत की जा रही है वह है मानवीय मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य और अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य। शिक्षार्थी के जीवन में इस मूल्य परक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इन मूल्यों वाली शिक्षा लोगों को एक अवसर प्रदान करती है जिससे वे मानवता के सामने आज शोचनीय रूप से उपस्थित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक मसलों पर सोच–विचार कर सकें। अपने विशिष्ट ज्ञान और कौशल के प्रसार द्वारा शिक्षा राष्ट्रीय विकास में योगदान करती है। इस कारण हमारे अस्तित्व के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में कलुषित प्रवृत्तियों का दमन कर देश को एक सूत्र में बांधना है तो हमें जागना होगा और लोगों को भी जगाना होगा तथा सामाजिक और नैतिक वातावरण में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील होना होगा। तभी हमारी इस शिक्षा यात्रा का प्रयोजन सार्थक हो सकेगा।

शिक्षा" एवं "मूल्य"का अर्थ

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से हुयी है,

जिससे अभिप्राय है, सीखना, अर्जित करना, ग्रहण करना, ज्ञानात्मक रूप से संवृद्ध होना।

अंग्रेजी में शिक्षा के लिये "Education" शब्द है, जो कि 'Educere' (Latin) से बना हुया है, जिससे तात्पर्य होता है 'to lesad, to draw, toacquire'। अर्थात् आगे बढ़ना, निकालना, खींचना(ग्रहण), अर्जित करना। तात्पर्य है कि जो बातें व्यक्तित्व तथा चरित्र के निर्माण में सारभूत हैं उनके अर्जित करना(acquire), उनकी प्राप्ति की ओर अग्रसर(lesad) होना। शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्त्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया।जब हम शिक्षा शब्द के प्रयोग को देखते हैं तो मोटे तौर पर यह दो रूपों में प्रयोग में लाया जाता है, संकुचित रूप में तथाव्यापक रूप में ।

संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर संबंधित परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।

व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। मनुष्य क्षण–प्रतिक्षण नए–नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है, जिससे उसका दिन–प्रतिदन का व्यवहार प्रभावित होता है। उसका यह सीखना–सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि से अनौपचारिक रूप से होता है। यही सीखना–सिखाना शिक्षा के व्यापक तथा विस्तृत रूप में आते हैं।

मूल्य का अर्थ

मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिक नैतिक और लोकतांत्रिक समाज बनाना है। मूल्य के लिये अग्रेंजी में "Value" है। "Value" की

निष्पत्ति लैटिन "Velere" से हुयी है। जिसका तात्पर्य "to be Worthy" है। एवं इसका अर्थ है सार,महत्व। यह सार या महत्व किसी कर्म के परिणाम,प्रभाव या गुण के सन्दर्भ में मापित किया जाता है। यही उसकी टंसनम या मूल्य होताहै।मूल्य समाज के प्रमुख तत्त्व हैं तथा इन्हीं मूल्यों के आधार पर हम किसी समाज की प्रगति, उन्नति, अवनति अथवा परिवर्तन की दिशा निर्धारित करते हैं। इन्हीं मूल्यों द्वारा व्यक्तियों की क्रियाएँ निर्धारित की जाती हैं तथा इससे समाज का प्रत्येक पक्ष प्रभावित होता है। मूल्यों के आधार पर ही हमें यह पता चलता है कि समाज में किस चीज को अच्छा अथवा बुरा समझा जाता है। अतः मूल्य मूल्यांकन का भी प्रमुख आधार हैं। हमारे जीवन में जीवन मूल्य शिक्षा का बहुत महत्व है।

मूल्य शिक्षा के माध्यम से हम व्यक्ति समाज में सकारात्मक मूल्यों क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करते हैं मूल्य शिक्षा का अर्थ है, दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी दौरों को समझना। इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्व, लोकतांत्रिक तरीके से जीवन यापन, संस्कृति की समझ, महत्वपूर्ण सोच आदि को समझ सकते हैं।

मूल्य शिक्षा के कुछ सिद्धांत इस प्रकार हैंः – सहानुभूति ,समानता ,सभी का सम्मान, स्वास्थ्य की देखभाल, गहन सोच, मूल्य शिक्षा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से छात्र को मदद करती है।

शिक्षा में मानवीय मूल्यों की आवश्यकता

वर्तमान शिक्षा से हमने असंख्य भौतिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं, लेकिन वर्तमान संदर्भ में शिक्षा मानवीय मूल्यों, परंपरा व आदर्शों की उपेक्षा कर एकांगी व संवेदनहींन होती जा रही है। संवेदनहींनता की स्थितियां पूरे परिवेश में देखी जा सकती हैं। मूल्यों व आदर्शों के अभाव में दिशाहीन विद्यार्थी हिंसक, क्रूर व अमानवीय वृत्तियों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आधुनिकता की चकाचौंध व प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उन्हें घोर अवसरवादी व अनैतिक बना दिया है। हिंसा, बलात्कार, चोरी, डकैती व आतंक की ओर व्यक्ति तभी बढ़ता है, जब उसे सही मार्गदर्शन, उचित शिक्षा व स्वस्थ वातावरण नहीं मिलता। तात्कालिक लाभ व भोगवादी प्रवृत्ति ने मनुष्य को संवेदनशून्य व हिंसक बना दिया है।

ऐसे में विद्यार्थियों को नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों से परिचित करवाना आवश्यक हो जाता है। शिक्षा यदि विद्यार्थियों में प्रेम, दया,

विश्वास, करुणा व त्याग की भावनाएं पैदा नहीं करती, तो ऐसी शिक्षा भविष्य में निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होती है। शिक्षा के माध्यम से केवल भौतिक संपन्नता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता, शिक्षा द्वारा हम एक अच्छे इनसान और बेहतर नागरिक भी बनने चाहिएं। इसके लिए अपनी परंपरा, आदर्शों व जीवन मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। मानसिक विकास के बिना भौतिक विकास सार्थक नहीं हो सकता है। वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में लिंग व जाति–भेद की स्थितियां तथा गैर बराबरी की घटनाएं अकसर देखी जाती हैं। पूंजीवादी सभ्यता के प्रभाव के कारण समाज में गैर बराबरी की स्थितियां व अन्य सामाजिक विकृतियां बढ़ रही हैं। संपन्न व अमीर वर्ग के विद्यार्थी अच्छे शिक्षण संस्थानों से शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और गरीब व वंचित वर्ग का विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इन भेदभाव की स्थितियों के कारण वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में अलगाव, संत्रास व आक्रोश की भावनाएं पनपती हैं, जो स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक होती हैं। व्यवस्था को संवेदनशील होना चाहिए, ताकि शोषित व उत्पीड़ित जनता को समान अवसर मिलें और एक गरीब विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर मुख्यधारा में शामिल हो सके। जातीय व आर्थिक आधार पर शिक्षा का वर्गीकरण उचित नहीं है। समन्वय शिक्षा का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होता है। शिक्षा का व्यापारीकरण भी उचित नहीं है। आजकल ऐसे निजी शिक्षण संस्थान खुल रहे हैं, जिनका लक्ष्य केवल पैसा कमाना है, उन्हें विद्यार्थियों के भविष्य की चिंता नहीं होती। ऐसी संस्थाओं में स्तरीय व गुणवत्तायुक्त शिक्षा न मिलने पर विद्यार्थियों को रोजगार के लिए भटकना पड़ता है। शिक्षण संस्थानों की बागड़ोर शिक्षाविदों के हाथों में होनी चाहिए, तभी विद्यार्थी रोजगारोन्मुख शिक्षा प्राप्त कर समाज के लिए उपयोगी व बेहतर इनसान बन सकते हैं। विद्यार्थियों में मानवीय भावनाएं व संवेदनशीलता पैदा करने के लिए उन्हें भारतीय आदर्शों, मानवीय मूल्यों व संस्कारों से जोड़ना आवश्यक है।

वर्तमान शिक्षा का परिदृश्य

वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप अत्याधुनिक है। विविध विषयों के विशिष्ट अध्ययन की परिपाटी प्रचलन में है। ये विविध विषय प्रायः विज्ञान, चिकित्सा, तकनीकि आदि के होते हैं। इसके अतिरिक्त कला, कम्प्यूटर विज्ञान, व्यवसाय तथा प्रबन्धन परक विषयों का अध्ययन महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से होता है। यद्यपि ये विषय समाज एवं राष्ट्र के लिये अत्यावश्यक हैं तथा समाज एवं राष्ट्र के विकास में इनकी भूमिका अहम है। इतने विविध विषय तथा नैपुण्यता परक ज्ञान के पश्चात् भी जिस

चीज की कमी व्यक्ति तथा समाज में चिन्तकों के द्वारा अनुभूत की जा रही है वह है मानवीय मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य और अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों मानवीय मूल्य, सद्भाव, प्रेम, सौहार्द्र, अहिंसा,नैतिकऔरआध्यात्मिक निःस्वार्थपरकता आदि में कमी

राष्ट्रीय मूल्य

देशभक्ति की भावना, राष्ट्रीय एकता की भावना, राष्ट्रीय अवदानों में गरिमान्विता का भाव, त्याग आदि के प्रति दृढ़ता में कमी।

अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों मानवाधिकार, शान्ति, इको सिस्टम आदि के प्रति कमी महसूस की जा रही है।

इन मूल्यों के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप सामाजिक विघटन, स्वार्थपरकता, हिंसा, घृणा, राष्ट्र के प्रति असम्मान या उदासीनता का भाव जनित होता है। सांस्कृतिक मूल्यों में अनास्था के परिणाम स्वरूप संस्कृति का क्षक्षय, जनरेशन गेप, ओल्ड एज़पीपुल्स प्रोब्लम्स, परिवार का विघटन, विवाह सम्बन्धों का टूटना, मानव को मशीन समझना जिससे उपभोक्तावाद आदि की विषाद जनक स्थिति उत्पन्न होती है। इन्हीं के अत्यधिक बिगड़ने से सामाजिक क्लेश, व्यापक अशान्ति, जीवन में असंतुष्टि, असुरक्षा, अपराध, तथा आतंकवाद, जैसी विभीषिकाएँ जन्म लेती है। इन विभीषिकायों के कारण सामाजिक, राष्ट्रीय असन्तुलन की स्थित उत्पन्न होती है।

शिक्षा और मानवीय मूल्य की समीक्षा

मूल्य परक शिक्षा की अवधारणा प्राचीन है। किंतु वर्तमान में मूल्य परक शिक्षा के नाम पर जो क्रियाएं–प्रतिक्रियाएं देखने को मिल रही हैं। उनसे लगता है कि देश, समाज और व्यक्ति असमेंजस और ड़ांवाड़ोल स्थिति में है। मूल्य विहिनता को समाप्त करने के लिए हमने शिक्षार्थी को एक प्रयोगशाला के रूप में और शिक्षक को प्रयोगकर्ता के रूप में मान लिया। शिक्षा के महत्त्वपूर्ण घटक विद्यार्थी को विभिन्न प्रयोगों द्वारा मूल्यों के विकास का केन्द्र मान लिया। शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षाचार्यों ने भी शिक्षा देने के नाम पर केवल बौद्धिक व्यायाम या कोरा ज्ञान दिया है। जिससे शिक्षार्थी की बुद्धि का विकास तो हुआ पर संस्कार विकसित करने वाली मानसिकता का विकास नहीं हुआ हमारे शिक्षालयों में पढ़ाने वालों की संख्या बहुत है परन्तु विद्या का दान करने वालों की संख्या नगण्य है। पढ़ाने वाले और विद्यादान करने वालों में व्यापक अन्तर है। एक केवल विषय को समझाकर ही रह जाता है और दूसरा उसका प्रयोग भी बतलाता है। जबकि वर्तमान में हमें विद्यार्थी को ऐसी

शिक्षा देना है। जिससे वह कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच अन्तर जानकर नैतिक और अनैतिक कार्यों की समीक्षा कर सकने की योग्यता उत्पन्न कर सके तथा संस्कार के अनुसार आचरण कर भविष्य निर्माण कर सके। किंतु वर्तमान शिक्षा ने विद्यार्थी को शाश्वत मूल्यों से नहीं जोड़ा और उन्हें मानसिक रूप से अपाहिज बना दिया। वर्तमान शिक्षा के नाम पर उन्हें सिर्फ कुछ भाषा, कुछ गणित, कुछ भूगोल, कुछ कैमिस्ट्री, कुछ फिजिक्स, इतिहास सिखाते हैं। किन्तु कभी सोचा है कि क्या हम उन्हें जीवन की कोई शिक्षा देते हैं ? क्या जीवन की कला सिखाते हैं ? क्या वर्तमान शिक्षा मानसिक परिपक्वता देती है। जीवन को विचारपूर्ण और मौलिकता देती है ? जी नहीं बिलकुल भी नहीं। हम आज तक विद्यालयों में जो शब्दों का ज्ञान ग्रहण करते आये हैं। अगर उसे शिक्षा कहते हैं तो उस शिक्षा का परिणाम ये है कि शिक्षार्थी आज अपनी ही समस्याओं से ग्रस्त होकर दिशाविहिन हमारे सामने खड़ा है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली वर्ग विषमता फैला रही है और देश के भावी भविष्य को स्वार्थी, अहंकारी, प्रतिस्पर्धी, महत्त्वाकांक्षी न्याय और अन्याय में सौदेबाजी करने वाला बना रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दायित्व बोध की सोच को प्रमुखता देने की आवश्यकता है। देश का भविष्य जो विद्यालयों में अपने भविष्य का निर्माण कर रहा है, उसका मानवता के प्रति, राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति, अर्थव्यवस्था के प्रति, शिक्षा के प्रति क्या दायित्व है ? ये दायित्व बोध अगर हमने उनमें जगा दिया तो शिक्षा का अर्थ सार्थक हो जायेगा और यही दायित्व बोध मानव मूल्यों की शिक्षा होगी मूल्यपरक शिक्षा का आशय कदापि नहीं है कि नैतिक शिक्षा की तरह पाठ्यपुस्तक तैयार कर कालांश निर्धारित कर शिक्षण अधिगम की व्यवस्था की जाए। जैसा कि हम वर्षो से नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा के लिए उपक्रम करते आए हैं। उसकी आवृत्ति करना मूल्यपरक शिक्षा की संकल्पना को आघात पहुँचना होगा अर्थात मूल्यों का संबंध भावनात्मक परिवर्तन से है, न कि किताबी दृष्टांतों से।

शिक्षा अनुशासन देने को नहीं, आत्म विवेक देने को है। शिक्षा भविष्योन्मुख होनी चाहिए, अतीतोन्मुख नहीं तभी विकास हो सकता है। कोई भी सृजनात्मक प्रक्रिया भविष्योन्मुख ही हो सकती है। शिक्षा को ज्ञान का प्रसार कहा जाता है। निश्चय ही उसे ज्ञान का प्रसारक होना चाहिए। लेकिन वर्तमान शिक्षा भय सिखाती, प्रलोभन सिखाती, प्रतिस्पर्धा सिखाती और तो और शिक्षा महत्त्वकांक्षा के ज्वर में दीक्षा देती अर्थात् यह अज्ञान का प्रसार है। कार्यों के साथ पद और प्रतिष्ठा जोड़ने से सारी दुनिया महत्वाकांक्षा की विक्षिप्तता में पड़ गई। एक शिक्षक राष्ट्रपति होने से बड़ा नहीं हो जाता, हाँ किन्तु एक राष्ट्रपति अपना पद छोड़ शिक्षक हो तब शायद शिक्षक के लिए सम्मान की बात हो सकती है और यही बात शिक्षा में मूल्यों को

स्थापित करेगी।

शिक्षा प्रतिस्पर्धा पर आधारित न हो। प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए शिक्षण की आमूल पद्धति बदलनी होगी और यहाँ पर हमें परीक्षा में प्रथम और अंतिम की कोटियां तोड़नी होगी और इन सबकी जगह भारतीय शिक्षा के दर्शन के अनुसार जीवन के उन मूल्यों की स्थापना करनी होगी इसके लिए शिक्षक को जागना होगा। इसके अतिरिक्त कोई भागीरथी नहीं है जो कि शिक्षा में मूल्यों की गंगा को पृथ्वी पर ला सके। शिक्षक होना बड़ी साधना है। शिक्षक वही है जो प्रसुप्त समस्याओं को जगा देता है और जिज्ञासा को जागृत कर देता है और बच्चों को उनके स्वयं के अनुसंधान के लिए साहस और अभय से भर देता है। शिक्षक ही सभ्यता का दीपक जलाए रखने में सक्षम है। हमारे देश के निर्माण में उनका योगदान बहुमुल्य रहा है और अभी भी रह सकता है यदि वे अतीत की परम्पराओं का पालन कर मनुष्य, समाज और राष्ट्र के उत्थान पर ध्यान दें। यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, यदि शिक्षक इसे पूरा कर सकेगा तो नये जीवन मूल्य और एक नयी मनुष्यता का जन्म हो सकता है।

उपसंहार

शिक्षार्थी के जीवन में नैतिक मूल्य परक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि नैतिक मूल्यों वाली शिक्षा लोगों को एक अवसर प्रदान करती है जिससे वे मानवता के सामने आज शोचनीय रूप से उपस्थित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक मसलों पर सोच–विचार कर सकें। अपने विशिष्ट ज्ञान और कौशल के प्रसार द्वारा शिक्षा राष्ट्रीय विकास में योगदान करती है। इस कारण हमारे अस्तित्व के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में कलुषित प्रवृत्तियों का दमन कर देश को एक सूत्र में बांधना है तो हमें जागना होगा और लोगों को भी जगाना होगा तथा सामाजिक और नैतिक वातावरण में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील होना होगा। तभी हमारी इस शिक्षा यात्रा का प्रयोजन सार्थक हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ

राजेंद्र सिंह ठाकुर, शिक्षा में मानवीय मूल्यों की आवश्यकता, Dec 12] 2018 http%@@bharatvidya-org@Yoga@myweb@value&oriented&education-htm

◆◆◆

मूल्याधारित शिक्षा में सतत् परिवर्तन : एक विमर्ष

डॉ0 सुनीता जायसवाल
विभागाध्यक्षा–संस्कृत, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर–244901 (उ0प्र0)

अस्थिरता, अलगाव, आतंक और अव्यवस्था से जर्जरित मानव सभ्यता न केवल त्रस्त है बल्कि भयग्रस्त एवं सहमी हुई है। उसे आशंका है कि पतन और विनाश कहीं उसे अपने मृत्युपाश में न बाँध ले। यन्त्रीकरण और ओद्योगीकरण की प्रगति में छिपी अवगति स्पष्ट परिलक्षित होने लगी है। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय विधान अपनी असमर्थता का अनुभव कर विवष हैं। इन व्यथापूर्ण क्षणों में विचारशील व्यक्तियों की दृष्टि पुनः धर्म एवं दर्शन की ओर प्रक्षेपित हुई है।

विचार के दो प्रकार हैं, जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। पहला विचार यह है कि जो संवेदना के परिणाम स्वरूप मानव मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। दूसरा विचार वह है जो सजीव सत्तओं की भांति है और मानव मस्तिष्क में बाहर से आते हैं। बाहर के इस वैचारिक स्रोत को आधुनिक अन्वेषकों ने 'बुद्धिमण्डल' नाम दिया है।

मानवीय चेतना के विकास की निम्नता अथवा उच्चता ही वह कारण है, जिसके कारण विचार का स्तर निम्न अथवा उच्च होता है। इसी कारण से पूर्वकाल में अनेक प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं की खोज हुई ताकि जिसका अवलम्बन लेकर मानवीय चेतना को विकसित करके विचारों के उच्चतम प्रवाह को धारण किया जा सके। जो ऐसा करने में समर्थ हुए, जिन्होंने विचारों के उत्कर्ष को प्राप्त किया, उनको 'ऋषि' कहा गया तथा इन्होंने ही वेद–ज्ञान का विस्तार किया। वेद मानव जीवन और सृष्टि के रहस्यों को खोलने वाला व्यापक विश्वकोष है। विचारों की इस बहुमूल्य वैदिक सम्पदा के कारण ही भारत सम्पूर्ण विश्व में सम्मानित राष्ट्र रहा है। अपनी इस ज्ञानगरिमा एवं महिमा के कारण भारत अनादिकाल से समस्त संसार का मार्गदर्शन करता रहा है। विश्व मानव की सर्वतोमुखी प्रगति में वैदिक ज्ञान ने सदैव अजस्र अनुदान दिया है।

ज्ञान और विज्ञान का उदय व अवतरण इस भारतभूमि पर सर्वप्रथम हुआ तो वह सीमित क्षेत्र में अवरुद्ध नहीं रहा। प्रभातकालीन सूर्योदय का श्रेय तो मिला परन्तु वे किरणें समूची जगती को प्रकाशवान्

बनाने के लिए निःसृत होती रहीं। इसी कारण भारत को जगद्गुरू कहा जाता था, क्योंकि उसने विश्व वसुधा के कोने–कोने में ज्ञान–विज्ञान का प्रकाश फैलाया। भारतवर्ष को चक्रवर्ती शासक माना जाता था, क्योंकि इसने समाज व्यवस्था, नैतिक मूल्य और अनगढ़ मानव को व्यवस्था बनाकर रहने का क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया। इसे स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी कहा जाता था, क्योंकि शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प, व्यवसाय, कृषि, पशुपालन आदि को ज्ञान, सुझाव और साधन यहीं से पहुँचाये गए।

मनवीय सभ्यता का विकास उसके द्वारा विचारों के इतिहास में सम्पन्न की गयी क्रमशः धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रान्तियों का परिणाम है। मानव जीवन के आरम्भिक काल से ही क्रान्तिधर्मी रहा।

प्रथम क्रान्ति उस समय घटी, जब मनुष्य अपने आरम्भिक काल में छोटे–छोटे समूह बनाकर रहता था तथा सर्वथा अव्यवस्थित किन्तु उसके पास वे सभी उपकरण थे जिनसे जीव में पहली बार धर्म का उदय हुआ। इसे धार्मिक क्रान्ति भी कहा जा सकता है। धर्म के उदय ने आचार–मर्यादा और कर्त्तव्य की जंजीरों में उन आदिम कालीन क्रूरताओं को जकड़ा और सभ्यता का सृजन करके मनुष्य को शालीनता एवं सामाजिकता की शिक्षा दी।

विचार क्रान्ति के प्रथम सोपान के अन्तर्गत धार्मिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप भारतीय शिक्षाप्राणाली वैदिक काल से प्रारम्भ हुई तथा वैदिक मूल्यों पर आधारित ज्ञान की परम्परा दस हजार वर्षों तक अस्तित्व में रही। भारतवर्ष में सर्वप्रथम **'ऋतम्'** नामक नैतिक जीवनमूल्य ऋषियों के वाक्य में आया जो भारतीय शिक्षा में मूल्यप्रणाली के विकास का प्रथम सोपान था। 'ऋतम्' का अर्थ है– सत्य, सत्ता, नियम, विधान आदि। ऋतम् को आंग्लभाषा में Truth, Rules, Regulation and Laws आदि भी कहा जाता है। ऋतम् ही सम्पूर्ण सृष्टि का संचालक है। यह सत्–असत्, उचित–अनुचित का भी नियामक है। वैदिक युग में सम्पूर्ण ज्ञान के विस्तार को ऋतम् का विस्तार कहा गया। सम्पूर्ण विश्वविद्यालयों में गुरू–शिष्य के मध्य अध्ययन–अध्यापन के कार्य को ऋतम् अर्थात पवित्रता का कार्य एवं विस्तार माना जाता था। सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान को ऋतम् का ही विस्तार कहा जाता था। चरक, चाणक्य, पाणिनि, सुश्रुत आदि आचार्यों का कार्य ऋतम् का ही विस्तार था। मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में तथा चरित्र–निर्माण में ऋतम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऋग्वेद के अनुसार– 'ऋतस्य पथा सरमा विद्दगा'[1] अर्थात् सत्य के मार्ग से सरमा अर्थात् बुद्धि ने ज्ञानतत्त्व को प्राप्त किया। '**ऋतस्य सासाह तहिंचित् पृतन्यतः**'[2] अर्थात् सत्य बड़े शुत्रओं को भी जीत लेता है। '**ऋतधीतयो रूरुचन्त दस्माः**[3] अर्थात् सत्य विचार वाले पराक्रमी जन यशस्वी होते हैं। '**ऋतस्य जिह्व पवते मधुप्रियम्**'[4] अर्थात् सत्य बोलने से माधुर्य और प्रेम की उत्पत्ति होती है। '**ऋतं येमान ऋतमिद् वनोति**'[5] अर्थात् सत्य का अनुरागी सदैव सत्य को ही अपनाता है।

इस प्रकार वैदिक मूल्य प्रणाली के विकास हेतु सर्वप्रथम सत्यनिष्ठा, सत्यव्यवहार, सत्याचरण और सत्यपालन मानवजीवन का प्रमुख कर्तव्य निर्धारित किया गया। क्योंकि सत्य का मार्ग व्यक्ति, परिवार तथा समाज सभी के लिए उपादेय है तथा मानवीय विश्वास का आधार है। सत्य ही मनुष्य की स्थिरता एवं दृढ़ता का आधार है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्यणोर्त्तभता द्यौः।[6,7]
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति, दिवि सोमो अधिश्रितः।।

प्रथम क्रान्ति के पष्चात् शनैः शनैः राज्य बढ़े, समाज विशाल हुआ और जीवन जटिल। संकीर्णताओं की जकड़न और विवशता की सिसकियाँ गूँजी। मनीषियों ने जीवनकाल के नवीन समाधान ढूंढ़े जाने का क्रम आरम्भ किया। परम्पराओं को तक्र ने चुनौती दी। यही विचारों के इतिहास में दूसरी क्रान्ति थी, जिसे 'दार्शनिक क्रान्ति' का नाम दिया गया। दार्शनिक क्रान्ति में इस तथ्य का स्पष्टीकरण हुआ कि मनुष्य के दुःखों के दो कारण है – पहला व्यवस्था का स्वरूप, दूसरा साधनों का अभाव। व्यवस्था जब परम्परा बन जाती है तो वह अपने लौहपाश के द्वारा स्वाभाविक विकास में बाधा बनती है। ये चाहे शासन के शोषक हों अथवा रूढ़ियों कुरीतियों के पृष्ठपोषक। इन दोनों कारणों के पीछे वह अज्ञान है जो व्यक्ति और समाज के बीच असन्तुलन की सृष्टि करता है।

विचारक्रान्ति के द्वितीय सोपान के अन्तर्गत दार्शनिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप भारतीय शिक्षा में मूल्यप्रणाली के विकास में वैदिक युग के पश्चात् उपनिषद् काल में '**ज्ञान**' को ही महत्त्वपूर्ण मूल्य माना गया। उपनिषदों के अनुसार ज्ञान ही मूल्यवान् है सर्वश्रेष्ठ है। शंकराचार्यकृत शारीरक भाष्य के अनुसार –

ज्ञानं तु प्रमाणजन्यम्। प्रमाणं च यथाभूतवस्तु विषयम्।
यतोज्ञानं कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथा वा कर्त्तुम् अथक्यम्,

केवलं वस्तुतन्त्रमेव तत्।8 (शारीरक भाष्य)

विद्या चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्या मुत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।9 (ईशावास्योपनिषद्)

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या च विद्येते ज्ञाता।

विद्याभीप्सिनं नचिकेतस् मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त।।10 कठोपनिषद्)

उपनिषदों के अनुसार मोक्ष, मुक्ति तथा ज्ञान को ही 'आत्मज्ञान' कहते हैं। 'ज्ञान' का अर्थ है जो असत, अज्ञान, अन्धकार तथा मृत्यु का विरोधी और सत्, प्रकाश तथा अमरत्व का समर्थक एवं सर्जक है वही ज्ञान है –

असतो मा सद् गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्माऽमृतं गमय।।[11](वृहदारण्यकोपनिषद्)

महात्मा बुद्ध के काल में '**निर्वाण**' को ही महत्त्वपूर्ण मूल्य माना गया। महात्मा बुद्ध के अनुसार जब तक दुःखों का नाश नहीं होता है मनुष्य इस संसारचक्र में अज्ञानता के कारण भ्रमण करता रहता है, परन्तु दुःखों का क्षय होने पर 'आत्मज्ञान' अर्थात् 'निर्वाण' को प्राप्त करता है। आत्मज्ञान ही निर्वाण का साधन है। इस प्रकार बुद्ध के काल में भी ज्ञान नैतिकमूल्य के रूप में भी अस्तित्व में बना रहा। निर्वाण को महात्मा बुद्ध ने परम सुख का साधन बताते हुए कहा है – **निब्बानं परमें सुखम्**'[12] (धम्मपद)

मध्यकाल में समाज में व्याप्त विसंगतियों, कुरीतियों, कुप्रथाओं, युद्ध एवं वाह्य आक्रमण आदि के कारण भारतीय शिक्षा की मूल्यप्रणाली में व्यवधान आया। इस युग में प्राचीन वैदिक मूल्य ऋतम्, ज्ञान तथा निर्वाण आदि समाप्त हो रहे थे, तभी एक बहुत बड़ा Value System आया जिसे '**भक्ति**' कहा गया। पुराण, महाभारत तथा गीता को भक्ति नामक मूल्य के द्वारा ही उत्कर्ष प्राप्त हुआ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भ परित्यागी यो सद्भक्तः स मे प्रिय।।13 (श्रीमद्भगवद्गीता)

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्सुपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।14 (श्रीमद्भगवद्गीता)

इसके अतिरिक्त महाभारतकाल में '**निष्कामकर्मयोग**' को भी महत्त्वपूर्ण नैतिक मूल्य स्वीकारते हुए गीता में कहा गया है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। (श्रीमद्भगवद्गीता)

इस प्रकार मूल्य हमारी स्थिर अभिवृत्ति है। वैदिक युग में बौद्धिक कार्य धर्म पर आधारित था तथा मूल्याधारित शिक्षा भी धर्म पर आधारित थी। विद्यार्थी जीवन का संचालन एवं नियन्त्रण भी धर्म पर आधारित शिक्षा तथा धार्मिक एवं नैतिक विचारों पर ही निर्भर था।

दार्शनिक क्रान्ति के पष्चात् सत्य को तक्र की कसौटी पर कसने के साथ–साथ प्रायोगिक मानदण्ड़ों पर भी खरा उतरना पड़ा। इसी क्रम में पुनर्जागरण काल में 'वैज्ञानिक क्रान्ति' सम्पन्न हुई जिसने आगे चलकर औद्योगिक क्रान्ति से अपना सहचरत्व निभाया। जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकता का सीधा आघात धर्म पर हुआ और जीवन–षैली के क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति ने उथल–पुथल मचा कर रख दी।

विचारक्रान्ति के तृतीय सोपान के अन्तर्गत वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप आधुनिक शिक्षा प्रणाली में वैदिक मूल्यों का क्षरण होता गया तथा आधुनिक युग में '**दासता**' अर्थात् **गुलामी–नौकरी** (Service) की प्रवृत्ति को ही मूल्य के रूप में स्थापित किया गया।

किन्तु शनैः–षनैः वैदिक एवं उपनिषद् कालीन नैतिक मूल्य पुनः स्थापित हुए। पुनर्जागरण काल में वैदिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने का कार्य 'ब्रह्म समाज' के संस्थापक राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द तथा आर्य समाज के संस्थापक महार्षि दयानन्द सरस्वती जैसे भारतीय समाज सुधारकों एवं महापुरूषों ने किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वैदिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए 'Go to Veda' अर्थात् 'वेदो की ओर लौटो' का उद्घोष किया था।

पाश्चात्य विद्वानों में मैक्समूलर महोदय ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का सम्पादन किया। विल्सन ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। ग्रासमैन ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद किया। लुडविग ने ऋग्वेद का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। ग्रिफिथ ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया। सर विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया, तत्पश्चात् श्रीमद्भगवद्गीता तथा अभिज्ञानषाकुन्तलम् का आंग्लभाषा में अनुवाद किया।

इस प्रकार आधुनिक काल में अंग्रेजों ने '**ज्ञान के प्रति अनुराग**' को

नवीन मूल्य एवं परम्परा प्रदान की तथा वैदिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रणाली को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।

नवयुग में वैदिक विचार शैली तथा वैदिक दृष्टिकोण के पुनरुद्धार का कार्य युगनिर्माण योजनार्थ मार्ग प्रषस्ता, मानव–जीवन व जगत् के भविष्य के विकासार्थ विश्वधर्म, विश्वसंस्कृति, विश्वभाषा तथा विश्व–षासन की परिकल्पना के प्रवर्तक, विचारों के इतिहास में विकासवाद के समग्र व सर्वांगीण स्वरूप के प्रस्तोता, युगसापेक्ष नवयुगीन नवीन दर्शन के प्रणेता आचार्य श्री राम शर्मा जी ने किया तथा उनके अनुयायी अद्यतन इस कार्य की गति को प्रगति प्रदान करने में अग्रसर है।

पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का अन्धानुकरण करने वाले भोगोन्मुखी भौतिकवादी वैश्वीकरण के वर्तमान युग में मानव जीवन के परम्परागत वैदिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। अतः एक आदर्श शिक्षक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह मानव संसाधन को समुचित वैदिक मूल्यों से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति, संस्कार एवं मूल्याधारित सम्यक् समुचित नैतिक शिक्षा प्रदान कर प्रशिक्षित करें। ताकि वैदि संस्कार एवं मूल्याधारित शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों की आदतों, अभिवृत्तियों, रूचि, व्यवहार, व्यक्तित्व, आचरण, चरित्र तथा स्वभाव में परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन एवं संवर्द्धन किया जा सके।

संस्कार एवं मूल्याधारित शिक्षा का होना वर्तमान वैश्वीकरण के युग में अपरिहार्य, अनिवार्य एवं प्रासंगिक है, क्योंकि हमारे वैदिक संस्कार एवं नैतिक जीवनमूल्य व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में, जीवन की यथार्थता को समझने, यथार्थ स्थिति का प्रत्यक्षीकरण करने में सहायता प्रदान करते हैं साथ ही हमारे संस्कार एवं मूल्य स्वयं अपनी तथा दूसरों की अभिवृत्ति, रुचि, व्यक्तित्व, प्रत्यक्षीरकण, प्रेरणा, आचरण, चरित्र, व्यवहार तथा नैतिकता आदि के लिए एक ठोस आधार तथा प्रामाणिक कसौटी प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ सूची

ऋग्वेद –05 / 45 / 18
ऋग्वेद –8 / 86 / 5
ऋग्वेद –4 / 55 / 2
ऋग्वेद –9 / 75 / 2
ऋग्वेद –4 / 23 / 10
ऋग्वेद –10 / 85 / 9

अथर्ववेद – 14/1/1

शंकराचार्यकृत शारीरक भाष्य – 1/1/4

ईषावास्योपनिषद् श्लोक – 11

कठोपनिषद् – 1/24

वृहदारण्यकोपनिषद् – 1/3/28

धम्मपद (सुत्तपिटक का एक अंग) 202–203–IX

श्रीमदभगवद्गीता – 12/16

श्रीमदभगवद्गीता – 12/20

श्रीमदभगवद्गीता – 2/47

◆◆◆

विद्यालीय शिक्षा पाठ्यक्रम में मूल्य–शिक्षा की उपादेयता

डॉ0 शुभ्रा चतुर्वेदी[1] एवं अंशुल[2]

[1]असो0 प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, शोधार्थी, जे0वी0 जैन कॉलेज, सहारनपुर

पृष्ठभूमि

वर्तमान समय में मनुष्य भौतिकवादी जीवन में इतना आगे बढ़ता जा रहा है कि उसका अपना वास्तविक अस्तित्व कहीं न कहीं लुप्त होता जा रहा है। जिसका परिणाम ये हो रहा है कि सम्पूर्ण सामाज की सामाजिक संरचना जो कि मानवीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों पर आधारित थी, अब वह छिन्न–भिन्न होती नजर जा रही है। मनुष्य ने तकनीकी सुविधाओं में अपने आपको इतना लिप्त कर लिया है कि एकांकीपन, अवसाद जैसी समस्याएँ धीरे– धीरे उसके जीवन को दीमक की तरह चाट रही हैं, पर फिर भी मनुष्य उससे चेत नहीं रहा है। वह मात्र इसलिए साक्षर होना चाहता है जिससे अपने जीवन को अधिक आरामदायक, सुविधा सम्पन्न बना सके। भले ही ये ऐषोआराम उसे किसी भी प्रकार का मार्ग अपनाकर मिले। परन्तु इस तरह के चिंतन को हम शिक्षा की श्रेणी में नहीं रख सकते और न ही ऐसे व्यक्ति शिक्षित कहला सकते हैं।

शिक्षित व्यक्ति वह व्यक्ति होता है जो शिक्षा के वास्तविक ध्येय को समझे। जिसमें अच्छे–बुरे, उचित–अनुचित की पहचान करने की क्षमता हो। जो संवदेनशील, सकारात्मक, स्पष्ट दृष्टिकोण, निडर, साहसी हो। जिसमें कार्यकुशलता, निर्णयशक्ति, विचारशक्ति, जीवनोपयोगी शक्ति, व्यावसायिक क्षमता, सुसंवादिता एवं सामजस्य जैसे गुण हो और इससे भी ऊपर उठकर उसमें पूर्णता की प्राप्ति की पिपासा हो। अर्थात् शिक्षा वह है जो मनुष्य को देवता, नर को श्री नारायण और नारी को श्री लक्ष्मी बना देती है, तिरोहित दिव्यता को उभारती है। जो एक व्यक्ति को अपने से पहले दूसरों के हित– अहित के विषय में जानने एवं कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार देखा जाएँ तो शिक्षा एक ऐसा बीज है जो मनुष्य जीवन को फलदार वृक्ष बनाती है। जिससे उसके जीवन के प्रत्येक व्यवहार में सेवा, परोपकार, धैर्य, त्याग, उदारता, पवित्रता, शान्ति, प्रेम, मर्यादा जैसे दिव्यगुणी फल न केवल उसके जीवन को पूर्ण बनाते है अपितु समाज को भी उत्तम बनाने में सहायता करते हैं।

परन्तु ऐसी प्राप्ति वर्तमान शिक्षा प्रणाली से नहीं हो पा रही है। वर्तमान में बालक मात्र साक्षर हो रहे हैं, शिक्षित नहीं। उनमें मानवीय मूल्यों का विकास होने के स्थान पर भौतिकता, स्वार्थ, लोभ, तृश्णा जैसे अवगुण विकसित हो रहे हैं वह मात्र धन संचय, भौतिक संसाधनों को एकत्रित करने के लिए, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हैं ऐसे में मूल्य शिक्षा ना केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अपितु उसके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले विभिन्न पक्षों पर सकारात्मक प्रभाव ड़ाल रही है। उसे एक समाज कल्याणकारी व्यक्ति बनाने में अहम् भूमिका निभा रही है।

विभिन्न दर्शनों में मूल्य शिक्षा का स्थान –

भारत एक ऐसा देश है जहाँ पर विभिन्न संस्कृति, संप्रदाय एवं धर्म के लोग रहते है। जिनके संस्कार, रीति–रिवाज, भाषा, वेषभूषा, रहन–सहन, साहित्य, परम्पराएँ आदि सब भिन्न है। परन्तु जब हम सब धर्मों, सम्प्रदायों के साहित्यों का अध्ययन करके सार निकालते है तो सबमें एक ही बात को महत्व दिया गया है वह है – मानवीय मूल्य।

• वेदान्त दर्शन

इस दर्शन के वेद, पुराण, उपनिषद प्राचीन ग्रन्थ है। इनमें भी बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देते हुए कहा गया है –

एत्तदेशप्रसूतस्य सकाषादग्रणन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

वैदिक कालीन शिक्षा में बालकों में उन सब मानवीय गुणों को विकसित करने की बात कही है जो कि व्यक्ति को गृहस्थाश्रम, वामप्रस्थाश्रम में कुशलतापूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा देते थे।

सत्यं वद। धर्म चर स्वाध्यायान् मा प्रवद।
मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव।
यानि अस्माक सुचरितानि तानि त्वयो पास्यानि, नो इतराणि।
एष उपदेशः। उतिष्ठत्, जाग्रत प्राप्तय वरान निबोधिता।।

ब्रहमचर्याश्रम से ही बालकों में 10–मानवीय मूल्यों का विकास किया जाता था। ये 10–मानवीय मूल्य बालक के जीवन को सहज, सरल, सकारात्मक एवं शान्तिपूर्ण बनाते थे और उसे प्रत्येक दषा में जीने योग्य

बनाते थे। ये 10–मानवीय मूल्य है –

धृतिः क्षमा, दमोस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या, सत्यम्, अक्रोधो दशकं धर्मलषणम्।।

इस प्रकार, मूल्यशिक्षा का उद्देश्य बालक को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, महत्वाकांक्षा जैसे अमानवीय गुणों से दूर रखना है।

• इस्लाम दर्शन

इस्लाम दर्शन में ज्ञान को वह प्रकाश बताया है जिससे व्यक्ति दीन (परलोक) एवं दुनिया (लोक) दोनों जगत में मार्गदर्शन पाता है और जीव के परम उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त करता है। इस संबंध में अल्लामा युसुफ करजावी लिखते है कि ''इल्म (ज्ञान) वह जबरदस्त कुवत (ताकत) है, जिसकी बदौलत इंसान अपनी जिंदगी को फैलाता है और अपने वजूद को वुसअत (विस्तार) से हमकिनार (सँवारता) करता है। फिर वह सिर्फ अपने बारे में ही नहीं सोचता और न ही सिर्फ अपने इर्द–गिर्द ही देखता है बल्कि इन दायरों से आगे–बढ़कर माजी (अतीत) में भी झाँकता है, हाल (वर्तमान) की रोशनी में मुस्तकबिल (भविष्य) को भी समझने की कोशिश करता है और कायनात, (संसार) की सारी वुसअत (विस्तार) के बारे में भी गौरोफिक्र (चिंतन) करता है। (करजावी, 2000 पृ0 29)

इस तरह, इस्लाम धर्म में भी शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास पर बल दिया है। जिससे वह अपना तथा अपने राष्ट्र का कल्याण कर सके और मानवीय मूल्यों की सहायता से प्रत्येक परिस्थिति का दृढ़ता से सामना कर सके।''

• सिक्ख धर्म

15वीं सदी में भारतीय संत परम्परा से निकला एक धर्म है – सिक्ख धर्म। इसकी शुरूआत गुरू नानक देव ने की थी। इनका प्रमुख धार्मिक ग्रंथ श्री आदि ग्रन्थ या गुरू ग्रन्थ साहिब हैं। इसका सम्पादन गुरू अर्जुन देव ने किया है। गुरू ग्रन्थ साहिब कर्मवाद को महत्व देता है। वह आत्मनिरीक्षण, ध्यान को महत्व देता है। सामाजिक उत्तरादायित्वों को निभाने पर बल देता है। लोक कल्याण की भावना, दया, प्रेम, करूणा, मधुर व्यवहार–आचरण, विनम्रता जैसे गुणों को अपनाने पर बल देती है। इस प्रकार, सिक्ख धर्म मूल्यों के द्वारा मानव को मानव के कल्याण के साथ–साथ

प्रत्येक जीवों के कल्याण के लिए तैयार करने पर जोर देता है।

• ईसाई दर्शन

यह धर्म प्राचीन यहूदी परम्परा से निकला एकेश्वरवादी धर्म हैं। यह धर्म ईसामसीह की शिक्षा पर आधारित है। इनका प्रमुख ग्रंथ बाइबिल है। ईसाई धर्म में प्रेम, अहिंसा, सामाजिक न्याय, शांति, क्षमा, दया, समतावादी दृष्टिकोण, सेवा भावना, परोपकारिता जैसे गुणों पर जोर दिया गया है। इस प्रकार, ईसाई धर्म में मानवीय मूल्यों के विकास की शिक्षा पर बल दिया गया है। जिससे लोक कल्याणी व्यक्तियों का विकास होकर समाज का कल्याण हो सके।

• बौद्ध दर्शन

बौद्ध धर्म का उदय भारत में गौतम बुद्ध के द्वारा किया गया। बौद्ध दर्शन में आर्य अष्टांग मार्ग (सम्य्क दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि आदि), त्रिरत्न (शील, समाधि तथा प्रज्ञा) तथा शट्पारामिताओं (दान, वीर्य, शील, शान्ति, ध्यान और प्रज्ञा) का अर्जन आवश्यक हैं। जिससे व्यक्ति नैतिक जीवन का पालन कर निर्वाण को प्राप्त कर सके। इसी कारण से बालक की शिक्षा प्रारम्भ करते समय उन्हें ''दससिक्खा पदानि'' का अनुसरण करना होता था। जिससे उनमें दया, सदाचारी, संयम, शालिनता, सत्यता, अहिंसा, प्रेम जैसे मूल्यों का विकास हो सके। परमार्थिक कार्यों को कर्तव्य के साथ करते हुए लोक कल्याण में अपना योगदान देने में सक्षम हो सके।

• जैन दर्शन

भारत में छठीं शताब्दी में जैन दर्शन का उदय हुआ। इसके संस्थापक ऋषभ देव है। जैन दर्शन ने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने तथा राग–द्वेश पर विजय प्राप्त करने पर बल दिया। जैन दर्शन ने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र का पालन करने पर बल दिया। जिससे व्यक्तियों में सत्य, अहिंसा अस्तेय, ब्रहमचर्य, अपरिग्रह, विनय, संयम, प्रेम, दया, करूणा, त्याग, निश्चलता, सरलता जैसे मूल्यों का विकास हो सके।

इस प्रकार, सभी भारतीय दर्शनों का सार निकालने से स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा में सदा से ही –

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कष्चित् दुख भागभवेत।

की भावना को महत्व दिया गया है। इसलिए शिक्षा में सदैव मूल्य शिक्षा को महत्व दिया गया है।

मूल्यों के अनुसार शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द का अर्थ है सीखना और सिखाना। शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में EDUCATION कहते है। EDUCATION शब्द के नौ अक्षर मूल्य शिक्षा के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हैं। साथ ही शिक्षा के अर्थ को पूर्ण करते हैं। इस दृष्टि से EDUCATION का सूक्ष्मार्थ इस प्रकार हो सकता है –

E - Etiquette (शिष्टाचार)

D - Discipline (अनुशासन)

U - Universal Brother hood (विश्व–बन्धुत्व)

C - Cresativity (रचनात्मकता/सृजनात्मकता)

A - Awareness (जागृति)

T - Transformation (रूपान्तरण)

I - Integrity (एकात्मकता)

O- Optimist (आशावादी)

N - Nobility (सौजन्य–सज्जनता)

इस प्रकार, मूल्य शिक्षा की दृष्टि से वृत्तियों के उर्ध्वीकरण द्वारा मानव का दिव्यीकरण होना ही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा का अर्थ है बालक का सर्वांगीण विकास अर्थात् बालक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं चारित्रिक विकास करना।

मूल्य शिक्षा DEVILISH HUMAN BEING (अर्थात् D = Defective, E = Ego, V = Violent, I = Indiscipline, L = Lazy, I = Ignorant, S = Self - centered, H = Hatred) से एक DIVINE HUMAN BEING (अर्थात् D = Dignity, I = Impartiality, V = Viceless, I = Integrity, N = Non - violent, E = Equality) का निर्माण करने में

सहायता करती है।

विद्यालयी शिक्षा में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान समय में विद्यार्थी बाल्यकाल से ही अनेक समस्याओं से घिरता जा रहा हैं उसका बचपन अनेक दबावों, महत्वाकांक्षाओं, अपेक्षाओं के दलदल से भरा हुआ है, जिसे वह अपने जीवन के प्रत्येक काल में महसूस करता है और आयु के हर पड़ाव के बढ़ने के साथ–साथ उसमें उतनी ही गहराई से धंसता जाता है। ऐसे में मूल्य– शिक्षा उसके जीवन में वरदान का कार्य करती है, जो उसे असुरक्षा, लालसा, भय, हीनता, कल्पना, प्रतिस्पर्धा, तनाव, असहिष्णुता, असंवेदनशीलता, ईर्ष्या, द्वेश, हिंसात्मकता जैसी समस्याओं से बचाती है।

वर्तमान समय में बालक के अन्दर असन्तोष इतना बढ़ गया है कि वह उचित – अनुचित का बोध किये बिना भौतिक सुख– सुविधाओं और धनार्जन के पीछे भाग रहा है और इसे ही अपने जीवन का लक्ष्य मान रहा हैं परन्तु वह नहीं जानता, इन सबका ना कोई अंत है और न होगा, अपितु इससे उसके जीवन में अशान्ति ही आयेगी। इन सब समस्याओं से बचने का एक मात्र रास्ता है स्वयं आत्मा के धर्म – प्रेम, शान्ति, पवित्रता, सुख, आनन्द आदि अर्थात् परमानन्द, आत्मानुभूति को प्राप्त कराने वाली शिक्षा ''मूल्य–शिक्षा' का ज्ञान कराना। जिससे व्यक्ति–परिवर्तन कर विश्व– परिवर्तन किया जा सकें।

आज की शिक्षा– प्रणाली

यह तो सिखाती है	यह भी सिखावें
विश्व (जगत्) का ज्ञान	अखिल ब्रहमाण्ड का ज्ञान
देश की रक्षा	मनोविकारों से स्वयं की रक्षा
शरीर का ज्ञान	मन, बुद्धि, संस्कार, आत्मा का ज्ञान
स्थूल धन की कमाई	जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान अर्थात् अविनाशी धन की कमाई
धर्म का ज्ञान	स्व धर्म का ज्ञान

इस प्रकार, मूल्यशिक्षा हमें सूक्ष्म का ज्ञान कराती है। जो कि आज के तनावपूर्ण वातावरण को सुसंस्कृत, सद्व्यवहार युक्त और सशक्त वातावरण में बदलने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भावी पीढ़ी इसका प्रमुख साधन हैं

क्योंकि आज का बालक ही कल का राष्ट्र एवं समाज निर्माता बनेगा। इसलिए विद्यालयी शिक्षा में मूल्यों की शिक्षा देना उतना ही अनिवार्य है जितना अन्य विषयों के लिए बालक को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करना।

मूल्यशिक्षा के प्रति विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं शैक्षिक संस्थाओं का दृष्टिकोण

हमारे देश में स्वतन्त्रता से पूर्व एवं स्वतन्त्रता के बाद अनेक शिक्षा आयोगों एवं संस्थाओं का निर्माण हुआ है। जिन्होनें किसी न किसी रूप में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मुदालियर आयोग (1952–53) ने बालकों में नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए विद्यालयों में सामूहिक प्रार्थना एवं प्रेरक प्रसंगों को महत्व दिया। इसके बाद कोठारी आयोग (1964–66) ने मूल्य शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने की बात कही। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, ने भी इस बात पर अपनी चिन्ता व्यक्त की है कि विद्यालय बच्चों में उचित मूल्यों का निर्माण करने में अक्षम हैं और इस बात पर बल दिया कि विद्यालयों को अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए।

आचार्य राममूर्ति समिति (1990) ने भी मूल्यपरक शिक्षा पर बल दिया। एस0वी0 चव्हाण समिति (1999) ने सत्य, सदाचरण, शान्ति, प्रेम और अहिंसा को सार्वभौतिक मूल्य माना। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने मूल्य संबंधी दस्तावेज में 83 मूल्यों को प्रकाशित किया है। इसका पुर्ननिरीक्षण करने के बाद एन0सी0ई0आर0टी0 ने पंचमूल्य सूत्र (सफाई, सच्चाई, श्रम, समानता और सहयोग) को विद्यालयी शिक्षा में शामिल करने पर बल दिया। इस प्रकार, सार रूप से देखा जाएँ तो विद्यालयी शिक्षा में निम्न 15–मूल्यों की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए–

प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सांस्कृतिक सहिष्णुता, ईमानदारी, सत्यता, कर्तव्यपरायणता, स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, श्रम गरिमा, राष्ट्र–समर्पण।

मूल्य–शिक्षा के स्रोत

मूल्य शिक्षा के स्रोत वहीं है जहाँ से इनका उद्‌गम होता है। बालक जिनके अधिक सम्पक्र में रहता है ऐसा वातावरण और व्यक्ति बालक के लिए मूल्यशिक्षा को प्राप्त करने के स्त्रोत है। जो निम्न प्रकार से है –

वर्तमान समय में माता–पिता, जन प्रसारण साधन, योग, अध्यापक,

मित्र, विद्यालय, घर, समाज ऐसे मूल्यशिक्षा के प्रमुख स्रोत है, जिनसे बालक सीधे सम्पक्र में आता हैं। यही कारण है कि आज विद्यालयी शिक्षा में भी इनको विशेष स्थान दिया जाने लगा है। विद्यालयी शिक्षा को रूचिपूर्ण, आकर्षक और ग्राहय बनाने के लिए तकनीकी शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। बालकों में आंतरिक शक्तियों जैसे एकाग्रता, ध्यान, चिन्तनशीलता, अंतःप्रेरणा, सकारात्मकता को विकसित करने के लिए योग पर बल दिया जा रहा है। जिससे बालक शारीरिक व मानसिक रूप से सुदृढ़ होकर प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार हो सकें। अध्यापक, माता–पिता से वहीं आचरण करने पर बल दिया जा रहा है जैसा वे बच्चों से अपेक्षा करते हैं। सम्पक्र के द्वारा बालक सरलता से मूल्यों की प्राप्ति कर सकता है।

मूल्य – शिक्षा के लिए विद्यालय में करायी जाने वाली गतिविधियाँ–

विद्यालय में कराये जा सकने वाली गतिविधियों के लिए सुझाव अधोलिखित है –

- विद्यालयों में प्रतिदिन प्रार्थना सभा का आयोजन करना। जिसमें ईषभक्ति के साथ–साथ प्रत्येक धर्म में दिये जाने वाले उपदेशों पर चर्चा करना। स्वधर्म समभाव की भावना का विकास करना।

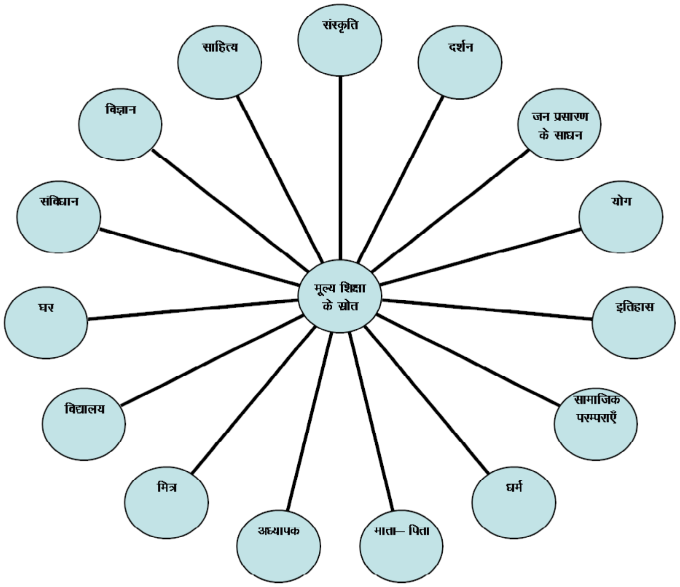

- देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के मूल्यों के विकास के लिए राष्ट्रीय दिवस एवं स्वतंत्रता सेनानियों महापुरूषों के जन्मदिवस मनाना और उनके द्वारा किये गये साहसिक कार्यों से परिचित करना।

- विद्यार्थियों को अपने देश के संविधान, मूल अधिकार एवं कर्तव्यों से परिचत कराना।

- विद्यार्थियों में अंधविश्वास की भावना को दूर करने के लिए, सत्य की खोज करने के लिए तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रेरित करना।

- भूगोल, कृषिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जन्तु विज्ञान साहित्यिक विषयों आदि का इस प्रकार से अध्ययन कराना कि उनमें अपने पर्यावरण एवं जीवों के प्रति प्रेम, दया से मूल्यों का विकास हो सकें।

- एन0सी0सी0, एन0एस0एस0, स्काउट–गाइड आदि के कैम्प लगवाना। जिससे उनमें श्रम के प्रति सम्मान, अनुशासन, षिष्टाचार, अस्पृश्यता का विरोध, समभाव दृष्टिकोण, सद्भाव का विकास हो सकें।

- विद्यालय में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करना। जिससे उनमें स्वस्थ प्रतिस्पर्था की भावना, सहयोग, मित्रता, सामंजस्यता, समूह की भावना का विकास हो सकें।

- विद्यालय में योग षिविर का आयोजन करना। जिससे बालकों में संयम, संतुष्टि, एकाग्रता, आत्मनिरीक्षण की योग्यता का विकास हो सकें।

- विद्यालयी पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को स्थान देना। जिसमें बालक अपने देश की परम्परा, संस्कृति, सभ्यता, पूर्वजों एवं उनके द्वारा किये गये लोककल्याणकारी कार्यों से परिचित हो सकें और उनसे प्रेरित होकर साहसी, निडर, दृढ़प्रतिज्ञ, ईमानदार बनकर राष्ट्र का निर्माण कर सकें।

- विद्यालय में समय–समय पर समाज के विभिन्न वर्गों से विद्यार्थियों का सम्पक्र कराना। जिससे वे उनकी जीवनषैली को प्रत्यक्ष रूप से देख सकें एवं समझ सकें जिससे उनमें दया, करूणा, परिशुद्ध

प्रेम, त्याग, सेवा जैसे मूल्यों का विकास हो सके।

- विद्यालय में वर्तमान में चल रही सामाजिक समस्याओं पर चर्चा, संगोष्ठी, वाद– विवाद आदि का आयोजन करना तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को आमेंत्रित करना। जिससे विद्यार्थी उनके अनुभवों से सीखकर राष्ट्रहित के कार्य करने के लिए प्रेरित हो सकें।
- प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों को अपने आचरण को विद्यार्थियों के लिए आदर्श बनना। जिससे बालक उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार का अनुसरण कर आदर्श व्यक्ति बन सकें।
- विद्यालयी पुस्तकालय में सदाचरण, चारित्रिक गुणों को प्रदान करने वाली मूल्यशिक्षा से सम्बन्धित पुस्तकों को स्थान देना एवं विद्यार्थियों को अध्ययन करने के लिए प्रेरित करना।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बदलते दौर में आधुनिकता की चकाचौंध में जहाँ मनुष्य आपसी प्रेम, सहानुभूति, समपर्णता जैसे भावों को भूलता जा रहा है और अपने आपको अपने में सीमित करते हुए असामाजिक प्राणी के रूप में बदलता जा रहा है। अपने प्राचीन इतिहास, संस्कारों एवं मूल्यों से दूर होकर स्वार्थ के वशीभूत होकर परहित की भावना को भूलता जा रहा है। ऐसे में मूल्यशिक्षा को विद्यालयी शिक्षा में शामिल करना अनिवार्य हो गया है। जिससे फिर से हमारे देश में ऐसे नौजवानों की उत्पत्ति हो जो इस विश्व को एक नई दिशा दिखा सकें और संवेदनशील विश्व में परिवर्तित कर ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का विकास कर सकें।

सन्दर्भ – ग्रन्थ सूची

लाल एवं पलोड़ (2008), शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग, मेरठ, आर0 लाल बुक डिपो।

करजावी अ0यू0 (2000), तालीम की अहमियत, मर्काजी मकतबा इस्लामी पब्लिषर्स, नयी दिल्ली।

समैया, अनूपी (2013), किशोरों में बढ़ती हिंसात्मक प्रवृत्ति–कारण एवं निदान, भारतीय आधुनिक शिक्षा।

◆◆◆

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में मूल्यों की पहचान एवं संवर्द्धन की आवश्यकता

प्रमोद कुमार वर्मा[1] एवं मुकेश कुमार[2]

[1]शोध अध्येता, [2]वरिष्ठ शोध अध्येता, शिक्षा विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०)

शिक्षा का मुख्य उदेश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना जिससे व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, अध्यात्मिक, व्यावसायिक विकास के साथ–साथ समाज एवं राष्ट्र का विकास हो सके। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश ने असाधारण प्रगति की है। आज हम गर्व से कह सकते हैं कि हमने विज्ञान, प्रद्यौगिकी, संचार, उद्योग, चिकित्सा एवं शिक्षा के क्षेंत्र में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की है। शिक्षा के हर स्तर पर विकास हुआ है। देश में प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर, उच्च स्तर की सामान्य शिक्षण संस्थानों के साथ–साथ तकनीकी शिक्षण संस्थानों में भी तीव्रगति से बढ़ोतरी हुयी है। शिक्षण संस्थानों की संख्या में तो तीव्रगति से बढ़ोतरी हुयी है परन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से देखा जाय तो निरन्तर ह्यस ही दृष्टिगोचर हो रहा है। आज की शिक्षा व्यवस्था अपनी मूल उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल नजर नहीं आ रही हैं। आज का विद्यार्थी भारत की संस्कृति तथा उसके मूल्यों में अपनी अस्था खोता जा रहा है। अधीर, उग्र व स्वच्छन्दता में विश्वास रखने वाले विद्यार्थी का ध्यान, साधन एव ंसाध्यों की शुद्धि से हट गया है। देश की भावी प्रगति, सुसंगठित व स्वस्थ भावी समान की स्थापना का दायित्व देश के नागरिकों का ही है। आज के युग में लुप्त हो रहे सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, परोपकार, सहानुभूति, दान, साहस, क्षमा आदि मानवीय मूल्यों को सुनिश्चित करना होगा, आधुनिकता के दौर में व्यक्ति स्वार्थी, बेईमान, अवसरवादी, कृतध्न, हिंसंक एवं कर्तव्य विमुख होता जा रहा है। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में पारस्परिक सहयोग का भावना, ईमानदारी, परिश्रम, अनुशासनहींनता, जबाबदेही, चुनौती, समस्या समाधान यांग्यता की कमी, समयबद्धता आदि व्यक्तिगत मूल्यों में लगातार गिरावट आ रही है। ऐसी स्थिति में किशोरों का प्रभावित होना भी निश्चित है। किशोरावस्था विद्यार्थियों के माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने की अवस्था होती है। वर्तमान भारतीय शैक्षिक जगत की सबसें ज्वलन्त समस्या किशोरों में चारित्रिक दोष का होना है। ''शिक्षा का उद्देश्य एक गतिशील अनुकूलन योग्य मन का विकास करना है जो साधन सम्पन्न तथा साहसयुक्त हो; ऐसा मन जिसमें अज्ञात भविष्य में मूल्यों के निर्माण करने की शक्ति हो'' (डी.वी.)। ''शिक्षा केवल

सूचनायें प्रदान करने या कौषलों के प्रशिक्षण तक ही सीमित नहीं है, इन षिक्षितों को मूल्यों की उचित भावना प्रदान करनी होगी'' (राधाकृश्णन)। ''चरित्रवान बनों'' जगत अपने आप मुग्ध हो जायेगा (रामकृश्ण परमहंस)। उक्त विचारों से शिक्षा का मूल्य के संबंध में उद्देश्य स्पष्ट हो रहा है।

मूल्य वे मानक है जो कार्य करने के विभिन्न विकल्पों में व्यक्ति के चयन को प्रभावित करती है (फिंलक)। मूल्य व्यक्ति के आदर्श, विश्वास या मानक है जो उसके जीवन चक्र को निर्देशित करते हैं। दूसरे शब्दों मे मूल्य व्यक्ति के वे निर्देशित सिद्धान्त है जो उसके सम्पूर्ण जीवन दर्शन व्यवहार शैली का निर्धारण करते हैं।

विद्यालयों में मूल्य शिक्षा अत्यन्त ही आवश्यक हो गयी है। माध्यमिक स्तर पर मूल्य की शिक्षा का अत्यन्त ही महत्व है। कोठारी आयोग (1966) ने मूल्य की महत्ता को समझते हुए माध्यमिक विद्यालयों में नैतिक एवं अध्यात्मिक शिक्षा देने की सिफारिष की थी। किशोर विद्यार्थी सांवेगिक अस्थिरता, तीव्र मानसिक विकास आदि कारणों से मानसिक अन्तर्द्वन्द की स्थिति से गुजरता है, इस अवस्था मे सही मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण युवा भटकाव की स्थिति मे आकर गलत कदम उठाने लगता है, जिससे उसका चरित्र प्रभावित होता है, साथ ही वह समाज में अपने आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, अभिरूचि एवं मूल्य विकसित करने लगाता है (पियाजे, 1969)। किशोरों में दूरदर्षिता की कमी होती है, वह अपनें वर्तमान के बारे में सोचता है उसे अपनी भविष्य की चिन्ता नहीं होती ऐसे में वह उचित निर्णय ले पाने में असमर्थ होता है जिससे वह अपने मूल्यों का निर्धारण सही ढ़ंग से करने में सक्षम नहीं होता है। इरिक्सन (1963) ने किशोरावस्था को ऐसी अवस्था माना है जिसमें किशोरों को विभिन्न तरह की सामाजिक माँगों एवं सामाजिक भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है जिसे पूरा करने में किशोरों में दो तरह के भाव उत्पन्न होते है, उन भावों के आधार पर या तो संतुष्टि प्राप्त होती या तो भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भटकाव की स्थिति में युवाओं में कुंठा, अवसाद एवं निराषा उत्पन्न हो जाती है जिससे सही, गलत का निर्णय ले पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति के लिए आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए विद्यार्थियों के मूल्य की पहचान करें तथा मूल्य संवर्द्धन के लिए आवश्यक कदम उठायें।

विद्यार्थियों के मूल्य के स्तर का पता लगाना वर्तमान में आवश्यक हो गया है। मूल्यों की पहचान करना एक जटिल प्रक्रिया है परन्तु मूल्यों के

मापन के लिए कुछ उपकरण एवं तकनीकी का प्रयोग कर मूल्यों का मापन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। स्प्रेंजर (1928) ने मूल्यों को मुख्यतः छः वर्गो मे विभाजित किया– सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य तथा धार्मिक मूल्य। इन्हीं मूल्य वर्गों को आधार मानकर वर्तमान में भी मूल्यों का मापन किया जाता है। मूल्यों के मापन के लिए प्रयोग में लाए गए उपकरण एवं तकनीकियों का विवरण इस प्रकार हैं– 1. अवलोकन 2. प्रक्षेपण 3. साक्षात्कार 4. निर्धारण मापनी 5कृ प्रश्नावली इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों के मूल्यों के पहचान के लिए समाजमिति एवं संचयी अभिलेखों की भी सहायता ली जा सकती हैं। अवलोकन मूल्यों की पहचान की सरल एवं उपयोगी विधि है। व्यक्ति का वास्तविक, विश्वसनीय एवं यथार्थ मापन संभव है। प्रक्षेपण में व्यक्ति के मूल्यों को परोक्ष रूप से जानने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत कहानी लेखन, वाक्य पुर्ति, चित्र व्याख्या के आधार पर व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त क्रियायों से उसके मूल्यों का निर्धारित करते हैं। साक्षात्कार के द्वारा निर्धारित प्रश्नों को पुछकर मूल्यों का अनुमान लगाया जाता है। निर्धारण मापनी के द्वारा किसी व्यक्ति पसंद, नापसंद की गहनता को जानकर मूल्यों का निर्धारण किया जाता है। मधुलिका वर्मा एवं बिन्देष्वरी पवार तथा कमला वशिष्ट एवं अंजू जयदीप द्वारा निर्मित मूल्य निर्धारण मापनी वर्तमान मे प्रचलित है। प्रश्नावली के अन्तर्गत प्रश्नों का समूह रहता है प्रश्नों के उत्तरों के प्राप्तांकों की व्याख्या कर मूल्य के स्तर का पता लगाया जाता है। कुछ प्रचलित प्रश्नावली है– जी.पी.षेरी एवं आर.पी. वर्मा द्वारा निर्मित जीवन मूल्य प्रश्नावली, तथा अर्चना दूबें एवं महेन्द्र पाटीदार द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली।

मूल्य संवर्द्धन की आवश्यकताः किशोर अपने जीवन दर्शन का निर्माण करना चाहते हैं, पर उचित पथ प्रदर्शन के अभाव में वे ऐसा करने में असमर्थ होते हैं। इन कार्यों का उत्तरदायित्व विद्यालयों पर बढ़ जाता है। किशोरों के मस्तिष्क में हमेशा विरोधाभाषी विचारों का द्वन्द चलता रहता है, फलस्वरूप उचित व्यवहार के संबंध में निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाते। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि उन्हें उदार, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जाय ताकि वह उचित, अनुचित में अन्तर समझ सकें तथा अपनें व्यवहार एवं अभिवृति को समाज के अनुकूल बना सकें। आज का युवा संवेगों की तीव्र अभिव्यक्ति के कारण अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को निश्चित मापदण्ड़ों को पूरा कियें बिना ही तृप्त करना चाहता है जो समाज को स्वीकार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में भावनाओं का नियंत्रण के लिए मूल्यों की पहचान एवं संवर्द्धन आवश्यक हो जाता है। किशोरों में अनुशासनहींनता की

समस्या को दूर करने के लिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान होना आवश्यक है। किशोरों मे आत्मविश्वास की कमी भी देखनें को मिलती है जो उनके सफलता मे बाधक सिद्ध होती है। समायोजन का अभाव भी किशोरों को समाज से दूर कर देती है जिससे उनका सामाजिकरण सही ढ़ग से नहीं हो पाता साथ ही नैतिक मूल्यों के अभाव में अनुशासनहींनता एवं विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है। सांस्कृतिक विकास, उदार दृष्टिकोण, लोक –तान्त्रिक गुणों के विकास, शान्ति पूर्ण जीवन, सहयोगपूर्ण भावना, समाज में समरसता की स्थापना आदि के लिए मूल्यों का संवर्द्धन करने की आवश्यकता है। अनेक शोधों में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मूल्यों में कमी पायी गयी। **चतुर्वेदी (2010)** ने छात्राओं में सौन्दर्यात्मक मूल्य जबकि छात्रों में आर्थिक मूल्य का स्तर उच्च पाया परन्तु सैद्धान्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, धर्मिक मूल्य, शैक्षिक मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्य एवं शारीरिक मूल्य मे कमी पायी। **कुमार (2010)** ने बंचित वर्ग के विद्यार्थियों मे देशभक्ति मूल्य कम पाया है। पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति के छात्रों में सांस्कृतिक मूल्य का स्तर निम्न पाया गया। **पाण्डेय एवं जायसवाल (2006)** ने अपने अध्ययन मे उच्च संवेगाात्मक बुद्धि वाले छात्राध्यापकों में धार्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, शैक्षिक मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, शारीरिक मूल्य का स्तर उच्च जबकि छात्राध्यापिकाओं में धार्मिक मूल्य उच्च जबकि आर्थिक मूल्य का स्तर निम्न पाया। **सिंह एवं कुमार (2012) ने** माध्यमिक स्तर पर अनुकूलित एवं प्रतिकूलित पारिवारिक वातावरण का विद्यार्थियों के मूल्यों पर प्रभाव के अध्ययन में पाया कि अनुकूलित वातावरण वाले विद्यार्थियों में प्रतिकूलित वातावरण वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा सौन्दर्यात्मक, सैद्धान्तिक, धार्मिक, राजनैतिक, सुखवादी एवं आर्थिक मूल्यों में सार्थक अन्तर हैं। अनुकूलित पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियों में आर्थिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य अपेक्षाकृत अधिक है।

मूल्य संवर्द्धन हेतु सुझावः मूल्यों के विकास एवं संवर्द्धन में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों मे मूल्यों के विकास हेतु माध्यमिक शिक्षा के पाठयक्रम में मूल्यों से युक्त कुछ विशिष्ट संप्रत्यय को सम्मिलित करना आवश्यक है साथ ही साथ ऐसे क्रियाकलापों को विद्यालय में कराया जाय जिससे छात्र, छात्राओं में व्यावहारिक रूप से सम्मिलित हो सकें। मूल्यों के संवर्द्धन हेतु विद्यालयों में जिन क्रिया–कलापों को मूर्त रूप दे सकते हैं, वे निम्न हैं:

- विद्यालयों का वातावरण शांत एवं मूल्यों की शिक्षा के अनुकूल बनाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।

- शिक्षक पाठ्यक्रम की शिक्षा के साथ ही विद्यार्थियों को उचित मूल्यों को अपनाने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।
- समय–समय पर विद्याथियों के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए जिनका केन्द्रबिन्दु विद्यार्थियों का रूझान सही दृष्टिकोण की तरफ आकर्षित करने की ओर होना चाहिए।
- समाज में घट रही घटनाओं को आधार बनाते बालक के अन्दर सकारात्मक मूल्यों की ओर अभिवृत्ति जागृत करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- विद्यालयों में खेल एवं मनोरंजन हेतु उचित साधनों की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा इसके द्वारा बालकों में सहयोग व सहानुभूति की भावना को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
- अध्यापकों को विद्यार्थियों के साथ सहयोगात्मक व्यवहार करना चाहिए।
- बालकों की जिज्ञासाओं का दमन न करके, उन्हें प्रोत्साहित व अभिप्रेरित करने के प्रयास किए जाने चाहिए।
- विद्यार्थियों को विविध सामाजिक क्रिया–कलापों में प्रतिभाग करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को स्वयं कें आचरण द्वारा मूल्यों का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए।
- एन.सी.सी., स्काउटिंग/गाइडिंग तथा अन्य कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- आदर्श जीवन एवं नैतिक शिक्षा पर आधारित चलचित्रों की व्यवस्था विद्यालय में की जानी चाहिए।
- धर्म ग्रंथों को पढ़ने एवं उनके मूल्यों को आत्मसात करने तथा व्यवहार में लाने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- विद्यार्थियों में समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का बोध कराया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, एम. (2006). मूल्य संवर्द्धन कैसे? एक यक्ष प्रश्न. *परिप्रेक्ष्य,* 13(2), 98–110.

कुमार, ए. (2010). वंचित विद्यार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन. *इमर्जिंग फ्रेंडस इन एजूकेशन,* 1(1), 80–86.

मेंगल, एस. के. (2010). *शिक्षा मनोविज्ञान.* दिल्लीः पी.एच.आई. लर्निंग प्रा. लिकृ

मिश्रा, ए. (2010). स्नातक स्तर की विज्ञान एव कला वर्ग की छात्राओं के मूल्यों का अध्ययन. *एमर्जिंग ट्रेंडस इन एजुकेशन,* 1(1), 64–68

शर्मा, आर. ए. (2010). *मानव मूल्य एवं शिक्षा.* मेरठः आर. लाल पब्लिकेशन.

सिंह, एस. एवं कुमार, एन. (2012). माध्यमिक स्तर पर अनुकूलित एवं प्रतिकूलित पारिवारिक वातावरण का विद्यार्थियों के मूल्यों पर प्रभाव. *एसियन जर्नल आफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड टेक्नालाजी,* 2(1), 151–154.

Chaturvedi, P. (2010).Value among intermediate Students in relation to their Academic Achivement. *Emerging Trends in Education*, 1(1), 60-63.

Pandey, A. & Jaiswal, A.K. (2006). Value of Emotionally Intelligent Students Tesachers, *Journal of Educational Studies*, 4(1&2), 42-44.

Plati,V. (2013). Sex difference in Value Pattern of Tribals Students, *Golden Resesarch Thoughats*, 5,1-5.

◆◆◆

भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य

दीपक कुमार शर्मा[1] एवं डॉ0 आशुतोष कुमार शुक्ल[2]

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

[2]प्राचार्य, बांके बिहारी इस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन, बहादुरपुर सरधना, मेरठ

प्राचीन काल में भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय में भारत वर्श धन–धान्य से परिपूर्ण था। लोग समृद्धषाली थे। घरो में ताला भी नहीं ड़ाला जाता था। इसका कारण नैतिक मूल्यों का समझना तथा उनको जीवन में अपनाना था, परन्तु पिछले 50–60 वर्शों में तो नैतिक मूल्यों का लगातार पतन होता चला जा रहा है। जिस देश में नैतिक मूल्यों के महत्व को नहीं समझा जायेगा, वह देश पतन के गर्त में चला जायेगा।

भारत अपनी कला, संस्कृति तथा दर्शन आदि की गौरवषाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है, परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा एवं मूल्य धूमिल से हो गये हैं। आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा अस्तित्ववादी जीवन, अनात्मपरक–नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण तथा कुतक्र प्रधान चिन्तन आदि के कारण अतीत में अविश्वास एवं 'स्व' में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य प्रदूशित हो गये हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम है–आत्मन अर्थात् अपने आदर्शों एवं मूल्यों, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिन्तन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी या विदेशी चिन्तन प्रणाली को सम्मिलित करना। इसके फलस्वरूप हमारे मूल्य दब से गये हैं। वस्तुतः वे पूर्णतः नश्ट नहीं हुए हैं, वरन् विघटित हो गये हैं।

अंग्रेजो के आगमन से पूर्व भारतीय शिक्षा मूल्यपरक थी। इस कारण पृथक रूप से मूल्यों की शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकतानुसार भारतीयों के लिए नवीन शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था की। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों को शरीर से भारतीय बनाये रखा, परन्तु उनको मन, मस्तिष्क तथा व्यवहार से अंग्रेज बना दिया। इस परिस्थिति ने भारतीयों में पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण का भूत सवार कर दिया। साथ ही उनमें पार्थिव मूल्यों के प्रति अप्रत्याशित मोह, अनीष्वरवाद तथा आधुनिकता को जन्म दिया। इन तथ्यों ने मानव मूल्यों के हशस के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी और इसके फलस्वरूप मूल्यों की

शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

1929 में हर्टांग समिति ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि भारतीय विद्यालयों में धार्मिक निर्देषों की शिक्षा दी जानी चाहिए। 1937 में महात्मा गाँधी ने वर्धा में प्रथम भारतीय शिक्षा सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन ने शिक्षा में मानवीय मूल्यों की शिक्षा को स्वीकार किया। ड़ॉ0 जाकिर हुसैन समिति ने भी इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाये जो छात्रों में आदर्श नागरिकता, शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान तथा सामुदायिक कार्यों में सहभागिता आदि गुणों को विकसित कर सके।

आज हम जो आचरण कर रहे हैं वह मूल्यहीन है। अतः अन्धकारमय होने की कल्पना की जा सकती है। भविष्य में हमारे समक्ष भयंकर समस्याएँ आ सकती हैं। हमारी आज की पीढ़ी उन समस्याओं की कल्पना नहीं कर सकती हैं। हमें संस्कृति विहीनता अमानवीयता और अलगाव से बचने की आवश्यकता है। आज की पीढ़ी को ऐसी शिक्षा देनी है जो इनको भविष्य के लिए तैयार कर सके। उन्हें ऐसी शिक्षा देनी होगी जो उनमें नैतिक निर्णय की क्षमता का विकास करे और आदर्श मूल्यों को स्वीकार करने तथा तदानुकूल आचरण करने के लिए तैयार कर सके। अतः मूल्यों की रक्षा के लिए मूल्य की शिक्षा आवश्यक है। मूल्यों की शिक्षा पर बल देते हुए 1959 में आजाद स्मृति व्याख्यान देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—

"क्या हम विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति के साथ मानसिक व आध्यात्मिक प्रगति को जोड़ सकते हैं? हम विज्ञान को छोड़ नहीं सकते क्योंकि वह आज के संसार को तथ्यात्मक ज्ञान देता है परन्तु हम मौलिक सिद्धान्तों को भी भूल नहीं सकते। जिसके कारण अनन्त काल से भारत की विशेषता व मजबूरी रही है। औद्योगिक प्रगति की ओर हम पूरी ताकत व निश्ठा के साथ आगे बढ़े पर साथ ही स्मरण रहे कि भौतिक उपलब्धियाँ, बिना करूणा, सहनषीलता एवं विवेक के राख में मिल जायेगी।"

हमारे देश के सभी क्षेत्रों में उन्नति करने में जिनका हाथ है वे सभी मूल्य इस समय संकट की स्थिति में है। हम अपने महत्वपूर्ण मूल्यों को जानते हैं लेकिन उनको ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं है। बहुत से मूल्यों के पालन का हम केवल नाटक करते हैं लेकिन उन्हें स्वीकार नहीं करते। मूल्यों के क्षेत्र में चारों ओर उहापोह की स्थिति है। उसका परिणाम हुआ कि ऊपर से प्रसन्न दिखने वाला आदमी भीतर से टूट चुका है। फलतः वह अब

अपने महत्वपूर्ण मूल्यों की आवश्यकता को समझने के लिए बाध्य है क्योंकि उसे आने वाले नये युग का सामना करना है।

चारो ओर भ्रष्ट आचरण हो रहे हैं। लोग मूल्यों से हट रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र से मूल्य गायब हो गये हैं। इस प्रकार आने वाले समय का सामना करने में मनुष्य असक्षम हो गया है। अतएव समाज की आवश्यकता है कि हम मूल्यों की शिक्षा दे। वर्तमान पीढ़ी को कल के लिए तैयार करने हेतु मूल्यों की शिक्षा को स्वीकार करके इसे अनिवार्य बनाना होगा। इस प्रकार आवश्यकता को ध्यान में रखकर मूल्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

मूल्यपरक शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक परिवर्तन के विविध रूपों को एवं उनके निहींतार्थों को समझने में सक्षम बना रही है तथा उनकी नैतिक निर्णय क्षमता व मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को विकसित कर रही है। हमें शिक्षा को इस प्रकार मूल्यपरक बनाना चाहिए कि विद्यार्थी भविष्य के लिए सुरक्षित तैयारी कर सके।

विदेशों के व्यवहारों की नकल करने की होड़ लग गई है। जो जितना ही नकल में आगे है वह उतना ही सभ्य माना जाता है। हम भूल गये है कि हमारे जिन मूल्यों को विदेशों में आदर दिया जाता रहा है हम अपने उन्हीं आदर्शों को छोड़ दूसरों की नकल में लगे हैं। विदेशी संस्कृति भोगवादी है हमें भोगवादी विचारधारा को छोड़ देना होगा। अपने देश की संस्कृति के आदर्श मूल्यों का आचरण करके ही हम सुखी रह सकते हैं। अतः अपने मूल्यों का लोप न होने पाये इसके लिए मूल्य शिक्षा वर्तमान की एक आवश्यकता है।

संदर्भ

जीवन के लिए शिक्षा, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों हेतु पारिवारिक स्वास्थ्य एवं जीवन–कलाओं की शिक्षा का गाइड, उ0प्र0 शासन

राज्य माध्यमिक शिक्षकों की कार्य–पुस्तिका : विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम, यूनिसेफ, यूनिसेफ भवन 73, लोधी एस्टेट, नई दिल्ली

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

Research in Education, Best J.W., New Delhi

S.V.C. Arya : The Fourth Indian Year Book of Education, New Delhi, Jan. 1972.

Encyclopedia X. Xarris, Chistrew : Encyclopedia of Educational Research, New York, The Macmillan Company, Third Edition, 1960.

मूल्य शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका

डॉ0 विष्णुदत्त त्यागी

असि0प्रोफेसर, एस0एस0वी0 कॉलेज, हापुड़ (उ०प्र०)

सारांश

एक शिक्षक या शिक्षिका को वही ऊर्जा अपने में उत्पन्न करनी है तथा अपने आश्रित बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षित करने की क्रिया में उसी ऊर्जा का संचालन करना है। शिक्षक को केवल शिक्षा–प्रदान ही नहीं करना है बल्कि छात्रों को उत्प्रेरित भी करना है। शिक्षक या शिक्षिका को अपने छात्रों के जीवन और चरित्र को प्रभावित करना चाहिए तथा छात्रों को उन विचारों और मूल्यों से लैस या सज्जित कर देना चाहिए जो उन्हें राष्ट्रीय जीवन की धारा में सुयोग्य नागरिक के रूप में प्रवेश करने के योग्य बना सके। आपको ये सारे कार्य उस अवधि में कर लेने चाहिए जिन वर्षों में छात्र विद्यालय में आपके प्रभाव के अधीन हैं। आपको छात्रों को हमारे लोकतंत्र में पुरूषों और नारियों की समानता को मान्यता (स्वीकृति) प्रदान करने, समस्त जातिगत विशिष्टता या अनन्यता तथा अभियान, अस्पृश्यता तथा साम्प्रदायिक भेदों एवं वैर–विरोधों को समाप्त करने एवं हमारे संविधान द्वारा व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता के सम्बन्ध में मूल्य शिक्षा देनी चाहिए।

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन का गहरा सम्बन्ध है। कोई समाज अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही करता है। सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के समस्त कार्यों को दो वर्गो में अभिव्यक्त किया जा सकता है–एक सामाजिक नियन्त्रण और दूसरा सामाजिक परिवर्तन। सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ है समाज की संरचना, उसके व्यवहार प्रतिमानों और कार्य विधियों की सुरक्षा और शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के निर्माण का मुख्य साधन है, सामाजिक परिवर्तन और आदर्श समाज के निर्माण का भी। संसार का इतिहास बताता है कि जब कभी किसी समाज में बुराइयाँ बढ़ती हैं तो युवा वर्ग में आक्रोश बढ़ता है, समाज में क्रान्ति होती है, सामाजिक बुराइयाँ दूर होती हैं और आदर्श समाज का निर्माण होता है और युवाओं को इसके लिए तैयार करती है शिक्षा। इस प्रकार किसी भी आदर्श समाज के निर्माण में शिक्षा की आधारभूत भूमिका होती है। पर वह यह कार्य

तभी करती है जब उसकी व्यवस्था तद्नुकूल की जाती है। वर्तमान में आदर्श समाज से तात्पर्य एक ऐसे समाज से है जिसका हर व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हो, मानसिक दृष्टि से उन्नत हो, समाज सेवा के लिए तैयार हो, सांस्कृतिक दृष्टि से सहिष्णु हो और चरित्रवान हो। साथ ही वह किसी व्यवसाय में निपुण हो और समाज एवं राष्ट्र के अनुकूल आचार–विचार वाला हो, अपने लोकतंत्र में उसकी आस्था हो और वह अपने संवैधानिक अधिकारों का सही उपयोग करे और कर्तव्यों का निष्ठा से पालन करे। यह एक ऐसा समाज हो जिसमें विभिन्न जातियाँ तो हों पर जातीय आधार पर वर्ग भेद न हों, जिसमें विभिन्न संस्कृतियाँ तो हों पर सांस्कृतिक टकराव न हो जिसमें विभिन्न धर्म तो हों पर धर्म के नाम पर संघर्ष न हो, जिसमें सब अपना आर्थिक विकास तो करें परन्तु कोई किसी का शोषण न करें और जिसमें जागरूकता हो एवं विस्तश्त दृष्टिकोण हो और जो सदैव विकास की ओर अग्रसर हो। ऐसे समाज के निर्माण के लिए हमें मूल्य शिक्षा को एक नई दिशा देनी होगी।

शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन का गहरा सम्बन्ध है। कोई समाज अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही करता है। सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के समस्त कार्यों को दो वर्गों में अभिव्यक्त किया जा सकता है–एक सामाजिक नियन्त्रण और दूसरा सामाजिक परिवर्तन। सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है समाज की संरचना, उसके व्यवहार प्रतिमानों और कार्य–विधियों में परिवर्तन।

मूल्य का शब्दिक अर्थ है–उपयोगिता, वांछनीयता, महत्व। सामान्यतः किसी समाज में जिन आदर्शों का महत्व दिया जाता है और उनसे उस समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है, उन्हें उस समाज के मूल्य कहते हैं। किसी समाज के वे विश्वास, आदर्श सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार मानदण्ड जिन्हें समाज के व्यक्ति महत्व देते हैं और उनका व्यवहार निर्देशित एवं नियन्त्रित होता है, उस समाज एवं उसके व्यक्तियों के मूल्य होते हैं।

मूल्यों के सम्प्रत्यय से मूल्यों के विषय में सर्वप्रमुख दो तथ्य उजागर होते हैं–एक यह कि मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है और दूसरा यह कि ये व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित एवं नियन्त्रित करते हैं। मूल्यों के सम्बन्ध में तीसरा तथ्य यह है कि ये समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं। चौथा तथ्य यह कि किसी समाज के अनेक विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त, नैतिक नियम और व्यवहार मानदण्ड होते हैं, व्यक्ति इनमें से कुछ को अधिक महत्व

देता है और कुछ को अपेक्षाकृत कम, वह जिन्हें जितना अधिक महत्व देता है वे उसके लिए उतने ही अधिक शक्तिशाली मूल्य होते हैं।

सामाजिक परिवर्तन में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता तो सदैव से रही है, आज भी है और कल भी रहेगी। आज तो इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है–

1. बिना मूल्यों के मनुष्य का व्यवहार निश्चित नहीं हो सकता, नियमित नहीं हो सकता। मनुष्य के आचार–विचार को सही दिशा देने के लिए मूल्य शिक्षा आवश्यक होती है।

2. आज हमारे देश में ही नहीं पूरे संसार में मूल्यों में ह्रास हो रहा है। मूल्यों में ह्रास का अर्थ है समाज द्वारा स्वीकृत आदर्श एवं मानदण्ड़ों की अपने अन्तःकरण में न उतारना और उनके अनुसार आचरण न करना। हमारे देश की तो अजीब स्थिति है, हम पुराने मूल्य छोड़ते जा रहे हैं और नए मूल्य निश्चित नहीं कर पा रहे हैं। अतः आज मूल्य शिक्षा अति आवश्यक है।

3. मूल्य शिक्षा के तीन पद होते हैं–संज्ञान, भावात्मक और क्रियात्मक। आज स्थिति यह है कि हमें मूल्यों का ज्ञान तो है परन्तु वे हमारे भावात्मक पक्ष के अंग नहीं है। तब उनके अनुसार आचरण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज आवश्यकता है मूल्यों को भावना में उतारने की, उन्हें आचरण का आधार बनाने की। अब यह कार्य सभी सामाजिक संस्थाओं को मिलकर करना होगा।

4. आज हमारे देश में लोकतंत्र है। विधायक, सांसद और मंत्री सभी गोपनीयता एवं राष्ट्रहित की कसम खाते हैं। किसी भी विभाग में झांक कर देखिए तो काम कम और रिश्वत अधिक दिखाई देगी। सब एक–दूसरे का शोषण करने पर उतारू हैं। तब मूल्य शिक्षा की व्यवस्था होनी ही चाहिए।

5. मूल्यों के अभाव में भाषा अर्थहीन है, सब एक–दूसरे को शंका की दृष्टि से देख रहे हैं, समाज में अराजकता का नंगा नृत्य हो रहा है और मनुष्य तनावपूर्ण जीवन जी रहा है। हमें लगता है कि यदि हम समय रहते नहीं चेते तो वह दिन दूर

नहीं जब हम पुनः बर्बरता के युग में प्रवेश कर जायेंगें।यदि हम मानव सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा चाहते हैं तो हमें मूल्य शिक्षा पर बल देना होगा।

6. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में शिक्षा को समग्र रूप से देखने और उसमें सुधार हेतु सुझाव देने के लिए कोठारी आयोग (81964–66) कस गठन किया गया। इस आयोग के प्रतिवेदन में मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने की बात की गई है।

7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में भी इस बात पर चिन्ता व्यक्त की गई है कि विद्यालय बच्चों में उचित मूल्यों का निर्माण करने में अक्षम है और इस बात पर बल दिया गया है कि विद्यालयों को अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहिए।

किन मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए

एक शिक्षक या छात्रों को, हमारी अनेकताओं में से एकता संघटित एवं अखण्डित राष्ट्र विकसित करने का औजार बनने की शिक्षा निश्चित रूप से देनी जानी चाहिए। उन्हें हमारे संविधान के उदात्त मानवीय भावों से अश्वमेव परिचित कराना तथा उन भावों को सामाजिक–राजनीतिक वास्तविकताओं में परिणत करने का भाव उनके मन में बैठाना या ड़ाल देना चाहिए।

आपके छात्र उस आयु–वर्ग के होते हैं जब चरित्र का निर्माण तथा राष्ट्रीय भावों का विकास किया जा सकता है। आपकों अपने छात्रों में, एक उच्च चरित्र–ऊर्जा, एक शुद्ध राष्ट्रीय बोध, एक दृढ़ लाकतान्त्रिक निष्ठा तथा एक समर्पित सामाजिक दायित्व को विकसित करने वाली हमारी नयी शिक्षा–नीति एवं कार्य–योजना का औजार होना है। यह अन्य पाठ्य विषयों के अध्यापन के प्रसंग में निश्चय ही किया जाना चाहिए। यही एक शिक्षक के राष्ट्रीय दायित्व की अभिव्यक्ति होती है। शिक्षक का कर्तव्य युवा पीढी के मन और मनोभावों को सरूपता प्रदान करना है। वह सरूपता रचनात्मक पद्धति पर गढ़नी होगी; अर्थात वैज्ञानिक एवं मानवीय मनोवृत्ति, आत्म–अनुशासन, दूसरे लोगों के लिए चिन्ता, परिस्थिति की समझदारी तथा उसमें दिलचस्पी, एक दृढ़–धारणा कि लोकतन्त्र सहिष्णुताा की नींव पर ही फलता–फूलता है तथा इस बात की दृढ़ धारणा कि विवेकवान होना चाहिए न कि दूसरों का सिर फोड़ना चाहिए। हमारे लोकतंत्र को मजबूत

करने के लिए शिक्षकों को भिन्न विचारों एवं दृष्टिकोणों को सहन करने के हमारे प्राचीन सांस्कृतिक भाव को निश्चयपूर्वक छात्रों के मन में भरना चाहिए तथा उन्हें प्रसिद्ध फ्रांसीसी चिन्तक वोल्तेयर के इस कथन में व्यक्त आधुनिक विवेक या समझ से परिचित कराना चाहिए कि आप जो कहते हैं उससे मै सहमत नहीं हूँ, परन्तु अपना जीवन देकर भी मै आपके वैसा कहने के अधिकार की रक्षा या समर्थन करूँगा।

आने वाली पीढ़ी में भारत जो भी होगा वह इस बात पर निर्भर करेगा कि आज कक्षाओं में शिक्षक अपने छात्रों को कैसा तैयार करते हैं। विद्यालय में आज के छात्र भविष्य में राष्ट्रीय दायित्वों का संचालन और भारवहन करना शुरू करेंगें। शिक्षकों को उन्हें राष्ट्रीय निष्ठा और दायित्व का भावबोध कराना है। हमारे अतीत में जो कुछ भी नकरात्मक तथा कमजोर करने वाले तत्व हैं उन्हें उनके दिल–दिमाग से हटाने में अवश्य सहायता करनी चाहिए। हमारी विगतकालीन इतिहास हमें कुछ अच्छा और कुछ बुरा प्रदान करता है जो बुरा है उसे हमें दूर करना है तथा जो अच्छा है उसे सुदृढ़ करना है। छात्रों को उनकी राष्ट्रीय विरासत के इन दोनों पक्षों में भेद करना अवश्य सीखना चाहिए। हरेक सांस्कृतिक विरासत के ये दो पक्ष या पहलू होते हैं। यह शिक्षा ही है जो इन दोनों में अन्तर करने की क्षमता तथा जो बुरा एवं अप्रासंगिक तथा कमजोर करने वाला है उसे अस्वीकार करने का साहस प्रदान करती है। शिक्षा के दौरान हमारे युवकों को सकारात्मक या रचनात्मक तत्वों को पहचानने तथा उन्हें सुरक्षित रखने एवं उन्हें अपने योगदानों से सुदृढ़ करने के पश्चात् आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में अवश्य सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

शिक्षक–प्रशिक्षण का महत्व

अपने बच्चों के लिए उस प्रकार की शिक्षा को हमें बहुत ज्यादा प्रोत्साहित करना चाहिए। हम यह नहीं चाहते कि हमारे बच्चे मन मनोवृत्ति की उस पुरानी गतिहीन अवस्था को बनायें रखें। हम अपने बच्चों में रचनात्मक मन–मस्तिष्क चाहते हैं। इसलिए शिक्षकों की भूमिका बहुत बड़ी तथा उनका दायित्व बहुत बड़ा है। शिक्षक या शिक्षिका को एक प्रभावशाली शिक्षक प्रशिक्षण की जरूरत है। ताकि वह अपनी संस्कृति और आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के शैक्षणिक मूल्यों एवं विचारों को आत्मसात करने में असमर्थ हो सकें। देश को ऐसे लाखों शिक्षकों की सेवाओं की आवश्यकता है।

भारत सरकार द्वारा शीघ्र घोषित की जाने वाली नयी शैक्षणिक नीति में, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यकारी योजना है–शिक्षक–प्रशिक्षण का सुधार। आज अपने देश में शिक्षा को फिर से नये साँचे में ढालने के लिए शिक्षक–प्रशिक्षण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। शिक्षक शिक्षण बहुत महत्वपूर्ण है। वैसे व्यक्ति हमारे शिक्षक नहीं हों जो हर अन्य क्षेत्र में असफल हो जाते हैं और तब अन्तिम गति या आश्रय के रूप में शैक्षणिक सेवा में आते हैं। शिक्षा को निश्चय ही उत्कृष्ट बुद्धि वाले लोगों को आकर्षित करना चाहिए। एक बार जब शिक्षा के क्षेत्र में आ गये, तो शिक्षकों को अपने आप में तथा अपने पेशे में श्रद्धा–विश्वास होना चाहिए। सरकार को भी जरूरी कदम उठाने का अपना हिस्सा अदा करना चाहिए तथा उनकी (शिक्षकों की) ऊँची राष्ट्रीय भूमिका के अनुरूप उन्हें वेतन देना चाहिए जिससे श्रेष्ठ एवं उत्कृष्टतम बुद्धि वाले लोग शिक्षा की ओर आकृष्ट हो सकें।

शिक्षण ज्ञान से संयुक्त हो

शिक्षण में दो घटक या अवयव हैं–पहला है ज्ञान के प्रति प्रेम और दूसरा है राष्ट्रीय सेवा के प्रति प्रेमें मात्र सेवा से काम नहीं चलेगा। ज्ञान के प्रति प्रेम परमावश्यक है। एक शिक्षक जो ज्ञान से प्रेम नहीं करता वह बच्चों में ज्ञान के प्रति प्रेम नहीं उत्पन्न कर सकता। शिक्षक को नयी पुस्तकों का अध्ययन कर अपने मस्तिष्क को अवश्य ताजा या अद्यतन रखना चाहिए। शिक्षक को अपने ज्ञान–भण्ड़ार को निश्चय ही निरन्तर ताजा करते रहना चाहिए। हमारी प्राचीन तैत्तिरीय उपनिषद् में, एक प्रकार से परम प्रेरक दीक्षान्त भाषण में, जो सभी छात्रों के लिए सदैव प्रासंगिक है, छात्रों को यह सुन्दर उपदेश दिया गया है–

स्वाध्याय–प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्–

अर्थात् अध्ययन और अध्यापन का कभी परित्याग नहीं करो।

उन्हें साथ–साथ चलना है। एक शिक्षक नयी पुस्तकें पढ़ता है, ज्ञान के नये आयाम अर्जित करता है तथा विचारों के नये भण्ड़ार से वह समृद्ध सम्पन्न होता है। मस्तिष्क को तरोताजा तथा रचनात्मक रखने का यही तरीका है और ज्ञान की यह क्षमता दूसरों को ज्ञान सम्प्रेशित करने की क्षमता से संयुक्त होनी चाहिए और सम्प्रेषित ज्ञान के पीछे शिक्षक का व्यक्तित्व चमकता–दमकता है। अपने ज्ञान के द्वारा एक शिक्षक या शिक्षिका केवल शिक्षा दे सकता/सकती है, परन्तु प्रेरणा का संचार तो केवल उसके व्यक्तितव से होता है। हम पुरानी पुस्तकों से पढ़ाते जाते हैं, हम किंचित् भी

ताजा या अद्यतन नहीं हैं। फिर हम कैसे अच्छे शिक्षक हो सकते हैं? शिक्षकों को अवश्य ही अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अपने मस्तिष्क को तरोताजा कर लेना चाहिए। आधुनिक भारत के पुनर्निनिर्माण में हमारे शिक्षकों का कर्तव्य एवं दायित्व पर जोर देना आवश्यक है कि शिक्षक समाज में परिवर्तन के लिए मूल्यपरक शिक्षा दें। बच्चों के मन पर ऊँचें मानवीय मूल्यों की छाप छोड़ने का दायित्व शिक्षकों का है, और जब शिक्षक उस दायित्व को निभाते हैं तब शिक्षक की पद–प्रतिष्ठा और गरिमा भी बढ़ जाती है। आपने को मात्र एक कर्मचारी या नौकर मानने की अपेक्षा, स्वयं अपने को एक उच्च राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह करने वाला नागरिक समझें। यह एक महान परिवर्तन है।

सन्दर्भित पुस्तक ग्रन्थ

आर0, स्वामी (2007)

आधुनिक भारत के निर्माण में शिक्षकों का कर्तव्य और दायित्व, रामकृष्ण मठ, (प्रकाशन विभाग) रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर

एन0 स्वामी (2001), हमारी शिक्षा रामकृष्ण मठ, (प्रकाशन विभाग), रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर

◆◆◆

जीवन में मूल्य आधारित शिक्षा का महत्व

मनु सिंह एवं डॉ० अंकुर त्यागी
[1]शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र), [2]शोध निर्देषिका (शिक्षाशास्त्र), ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो सामान्य अर्थो में यह समझा जाता है कि इसमें हमें वस्तुगत ज्ञान प्राप्त होता है तथा जिसके बल पर कोई रोजगार प्राप्त किया जा सकता है । ऐसी शिक्षा से व्यक्ति समाज में आदरणीय बनता है । समाज और देश के लिए इस ज्ञान का महत्व भी है क्योंकि शिक्षित राष्ट्र ही अपने भविष्य को सँवारने में सक्षम हो सकता है । आज कोई भी राष्ट्र विज्ञान और तकनीक की महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकता, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका उपयोग है । वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कृषि और पशुपालन के क्षेत्र में करके ही हमारे देश में हरित क्रांति और श्वेत क्रांति लाई जा सकी है ।अतः वस्तुपरक शिक्षा हर क्षेत्र में उपयोगी है ।परंतु जीवन में केवल पदार्थ ही महत्वपूर्ण नहीं हैं । पदार्थो का अध्ययन आवश्यक है। राष्ट्र की भौतिक दषा सुधारने के लिए तो जीवन मूल्यों का उपयोग कर हम उन्नति की सही राह चुन सकते हैं । हम जानते हैं कि भारत में लोगों के बीच फैला भ्रष्टाचार किस तरह से विकास की धार को मोथरा किए हुए है । आज की शिक्षा का मुख्य उद्‌देश्य है – पढ़–लिखकर धन कमाना । चाहे धन कैसे भी आता हो, इसकी परवाह न की जाए । यही कारण है कि शिक्षित वर्ग भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में सबसे आगे हैं । शिक्षा प्राप्ति की एक सुविचारित नीति होनी चाहिए । छात्रों को शुरू से ही यह जानकारी देनी चाहिए कि जीवन में आगे चलकर तुम्हें किन समस्याओं से जूझना होगा । छात्रों को पता होना चाहिए कि जीने के मार्ग अनेक हैं तथा उस मार्ग को ही चुनना श्रेयस्कर है जो व्यक्ति विशेष के स्वभाव के अनुकूल हो । नैतिक शिक्षा की बातों में सत्य, क्षमा, दया, ईमानदारी, अहिंसा आदि बताने से कुछ खास हासिल नहीं होता यदि हम इन ऊँची–ऊँची बातों को जीवन में उतारने का बालकों को अवसर न प्रदान करें । बालकों की सहज बुदधि में प्रयोगात्मक सचाइयाँ अधिक सहजता से प्रवेश करती हैं । कोरे उपदेश उन्हें प्रभावित कर सकते तो आज समाज में इतनी बेईमानी और इतना भ्रष्टाचार न फैला होता शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों को संबद्ध करने का अर्थ यह नहीं है कि बालकों के निरंतर भारी होते

हुए बस्ते में एक और किताब का बोझ ड़ाल दिया जाए । इससे उनके जीवन में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आ सकता क्योंकि बच्चे समझते हैं कि यह भी एक विषय है जिसमें अच्छे अंक लाने होंगे ।

1. मूल्य आधारित शिक्षा

किसी भी सभ्य समाज के लिए शिक्षा प्राण हैं तथा जीवन मूल्य उसकी आत्मा, मूल्यों का सम्बन्ध जीवन के दृष्टिकोण से है यदि मूल्यों को जीवन कहा जाय तो अतिष्योक्ति नहीं होगी। व्यक्ति के जीवन में मूल्य का विकास सामाजिकरण की प्रक्रिया के साथ–2 होता है। व्यक्ति समाज के बिना जीवित नहीं रह सकता। **रेमन्ट ने कहा है कि** ''समाज विहीन व्यक्ति एक कोरी कल्पना है।'' व्यक्ति स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है वह समाज से अलग रहकर ऐसे जीवित नहीं रह सकती, जैसे मछली जल के बिना। अतः व्यक्ति और समाज को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि इन दोंनों का अस्तित्व एक दूसरे में निहींत है। मूल्यों की अवधारणा से तात्पर्य सिद्धान्त, आदर्श तथा नैतिकता से है। सामाजिक सम्पक्र द्वारा नैतिक विकास होता है। हम कुछ मूल्यों को प्राथमिकता देते है कुछ को त्यागते हैं मानव व्यवहार केवल विचारों द्वारा ही नहीं अपितु भावों के द्वारा भी होता है। स्थायी भावों के आधार पर ही मूल्यों का चयन होता है। मूल्य का अपना महत्व इसके अन्दर छिपा होता है। मूल्य अभिवृतियां एवं आदर्श हमारे व्यवहार को निर्देशित करते हैं। शिक्षा व्यक्ति के मानसिक व बौद्धिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन होता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को कुसंस्कारों व मानसिक गुलामी से बचाया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नई चेतना व जोश पैदा कर सामाजिक विकृतियों, अंधविश्वासों, गैर बराबरी की स्थितियों, क्रूरता व शोषण के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है। आज नई पीढ़ी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नित नई उपलब्धियां प्राप्त कर रही है। अनेक भौतिक उपलब्धियां प्राप्त कर अंतरिक्ष में मनुष्य भेजने की तैयारियां चल रही हैं। मनुष्य ने शिक्षा से असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं, लेकिन आज हम शिक्षा में ऐसी कमी अनुभव करते हैं, जिसका निदान आवश्यक है।

2- मूल्य शिक्षा का जीवन में महत्व व आवश्यकता

मूल्य वह सिद्धांत है जो किसी सभ्य संस्कृति वाले समाज की आधार नींव ड़ालते है। हमारे जीवन को आनन्दमय, सुखदायी बनानें में मूल्यों का महत्व अतुलनीय है। वर्तमान में यह एक ज्वलंत एवं चिन्ता का

विषय बन गया है कि हमारे मूल्यों का ह्रास दिन–प्रतिदिन हमारे कार्यो में साफ दिखाई दे रहा है समाज मूल्यहीन दिखाई पड़ रहा है। ''राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2000) में भी विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्यों के विकास की बात कही गयी है।'' प्रष्न उठता है कि मूल्यों के विकास हेतु पाठ्यक्रम का कौन निर्माण करे? कैसे हो? उसका क्रियान्वयन कौन करे? निःसन्देह यह सारे कार्य अध्यापकों द्वारा ही किये जा सकते हैं परन्तु इसके लिये अध्यापकों में स्वयं के लिये वांछित मूल्यों की स्थापना होनी आवश्यक है तभी वे अपने विद्यार्थियों में इन मूल्यों के विकास के प्रति तत्पर हो सकेंगे। जब तक उनके जीवन में मूल्यों का कोई स्थान नहीं होगा, मूल्यों के प्रति अनुभूति नहीं होगी तब तक वे मूल्यों की समुचित शिक्षा विद्यार्थियों को नहीं दे सकेंगे और उन्हें कुसंगति, भ्रष्टाचार, लक्ष्य विहीनता आदि बुराइयों से नहीं बचा सकेंगे। आज भारत के युवा वर्ग को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उनमें सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को अपने जीवन में अपनाने को प्रेरित करें तथा वे मानवता पर खरे सिद्ध हो सकें, निःसन्देह विद्यार्थियों में इस प्रकार के मूल्यों को स्थापित करने के लिये शिक्षकों को तैयार करना पड़ेगा यदि हमारे शिक्षक ऐसे मूल्यों से युक्त होंगे तभी वे सशक्त हो सकेंगे और अपने विद्यार्थियों में मूल्यों का प्रस्फुटन कर सकेंगे।

आज भारतीय समाज में लोगों द्वारा जिस प्रकार के व्यवहार का प्रकटीकरण किया जा रहा है उससे ऐसा आभास हो रहा है कि नैतिक मूल्य विलुप्त होते जा रहे हैं समाज मूल्यहीन दिखाई पड़ रहा है। यही कारण है कि आज भौतिक प्रकृति के बावजूद भी देश को अराजकता की स्थिति से गुजरना पड़ रहा है क्षेत्रवाद, भाषावाद, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद, आंतकवाद जैसे विवादों को बढावा देकर क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु राष्ट्रीयता के भाव को कुण्ठित किया जा रहा है। मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की बुराई, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आधार प्रदान करती है ।प्राचीन काल के महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र, सांन्दीपन एवं चाणक्य जैसे मूल्यों से युक्त अध्यापकों ने ही श्री राम, श्री कृष्ण एवं सम्राट चन्द्रगुप्त जैसे विद्यार्थियों को उत्पन्न किया अध्यापकों को अपने व्यवहार से जन सामान्य के जीवन में मूल्यों के सम्प्रेषण हेतु एक प्रेरक का कार्य करता है इस कारण से अध्यापकों का जीवन मूल्यों से युक्त होना अति आवश्यक हैएक गुणवान गुरू अपने षिष्य में अच्छे जीवन मूल्यों को विकसित कर लेता है और अवांछित बुराइयों को उसमें से निकाल देता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा के माध्याम से छात्र–छात्राओं को मूल्यों की

शिक्षा दी जाय और यह आवश्यक रूप से सिखाया जाय कि शिक्षा प्राप्त करके वही व्यक्ति समाज में स्थान पा सकता है जो मूल्यों के प्रति अपनी आस्था तथा विश्वास कायम करें। सन् 1950 में जब भारतीय संविधान का गणतंत्रीय रूप आया तो उसमें मूल्यों की चर्चा की गई। भारतीय गणराज्य को मूल्यों पर आधारित धर्मनिरपेक्ष स्थिति के साथ में भी प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास आवश्यक बताया गया। 1948–49 में ड़ॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया उसमें निम्न प्रकार अनुषंसा की गई–(1) सभी शिक्षण संस्थाओं में दो मिनट शांत अवस्था में रहने के बाद प्रार्थना सभाओं का आयोजन किया जाय। (2) स्नातक स्तर पर छात्र–छात्राओं को भारतीय साहित्य, धर्म व दर्शन का ज्ञान कराया जाय। उक्त सुझाव मूल्य शिक्षा से ही सम्बन्धित हैं–1959 में ड़ॉ0 श्री प्रकाश की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ जिसकी संस्तुति धार्मिक व नैतिक शिक्षा पर ही रही। इन्होंने छात्र–छात्राओं में उचित आचरण के विकास पर बल दिया। इसके साथ ही शिक्षक के कार्यक्रम में परिवार को स्थान दिया गया, प्रार्थना से कक्षा कार्य का प्रारम्भ हो, धार्मिक मूल्यों का ज्ञान कराया जाय, पाठ्यक्रम में समाज सेवा को सम्मिलित किया जाय, स्वतन्त्र चिन्तन, वाद–विवाद तथा आलोचनात्मक व्याख्या के गुणों का विकास किया जाय तथा आयोजन के कार्यक्रमों से छात्राओं को अवगत कराया जाय। 1964–66 में ड़ॉ0 डी0 एस0 कोठरी की अध्यक्षता में एक और कमीषन का गठन हुआ। इस कमीषन की अनुषंसा यह रही कि छात्रों में शिक्षा के द्वारा सामाजिक वातावरण की भावना का विकास, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति निष्ठा, विशिष्ट साहित्य के अध्ययन की भावना का विकास, विभिन्न धर्मों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन जैसे गम्भीर अध्ययन विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाएँ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की गई कि ''जीवन के लिये आवश्यक मूल्यों का हास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके।'' मूल्यों का विकास केवल बच्चों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि व्यस्को को भी मूल्य विकसित करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। परिवार एवं स्कूल के अतिरिक्त मूल्यों के विकास के सन्दर्भ में हमें व्यक्तिगत प्रयास भी करने चाहिए जो कि वर्तमान समय की आवश्यकता है। इस प्रकार मूल्यों के विकास में एक रणनीति बनायी जाय। जिससे हमारे समाज को दिशा, दषा एवं आदर्शता प्रदान हो सकें। एन.सी.ई.आर.टी ने 1988 में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जिसे प्राथमिक

तथा माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कहा जाता है। पाठ्यक्रम को 1997 में राष्ट्रीय शिक्षा ने स्वीकृती दी तथा उक्त पाठ्यक्रम को विद्यालय स्तर का अनिवार्य अंग बनाने पर बल दिया तथा इसमें मूल्यों के विकास जैसे ईमानदारी, सत्यता, सहनशीलता आदि पर तथा शिक्षकों को अन्धविश्वासों से दूर रहने पर बल दिया गया है। इसी की सहायता से व्यक्ति तथा समाज का संतुलित विकास किया जा सकता है। यह आशा की जाती है कि ये क्रियाऐं व्यक्तियों में मूल्यों के विकास में सहायक होगी अतः कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करने के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं में अच्छी शिक्षण अधिगम परिस्थितियों का विकास किया जाय।

3. वर्तमान शिक्षा में मूल्यों का आभाव

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान शिक्षा से हमने असंख्य भौतिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं, लेकिन वर्तमान संदर्भ में शिक्षा मानवीय मूल्यों, परंपरा व आदर्शों की उपेक्षा कर एकांगी व संवेदनहींन होती जा रही है। संवेदनहींनता की स्थितियां पूरे परिवेश में देखी जा सकती हैं। मूल्यों व आदर्शों के अभाव में दिशाहीन विद्यार्थी हिंसक, क्रूर व अमानवीय वृत्तियों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अपने महापुरुषों के संदेशों, अपनी परंपरा व आदर्शों से अनजान नई पीढ़ी बेलगाम हो रही है। आधुनिकता की चकाचौंध व प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उन्हें घोर अवसरवादी व अनैतिक बना दिया है। हिंसा, बलात्कार, चोरी, डकैती व आतंक की ओर व्यक्ति तभी बढ़ता है, जब उसे सही मार्गदर्शन, उचित शिक्षा व स्वस्थ वातावरण नहीं मिलता। तात्कालिक लाभ व भोगवादी प्रवृत्ति ने मनुष्य को संवेदनषून्य व हिंसक बना दिया है। ऐसे में विद्यार्थियों को नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों से परिचित करवाना आवश्यक हो जाता है। शिक्षा यदि विद्यार्थियों में प्रेम, दया, विश्वास, करुणा व त्याग की भावनाएं पैदा नहीं करती, तो ऐसी शिक्षा भविष्य में निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होती है। शिक्षा के माध्यम से केवल भौतिक संपन्नता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता, शिक्षा द्वारा हम एक अच्छे इनसान और बेहतर नागरिक भी बनने चाहिएं। इसके लिए अपनी परंपरा, आदर्शों व जीवन मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। मानसिक विकास के बिना भौतिक विकास सार्थक नहीं हो सकता है। वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में लिंग व जाति–भेद की स्थितियां तथा गैर बराबरी की घटनाएं अकसर देखी जाती हैं। पूंजीवादी सभ्यता के प्रभाव के कारण समाज में गैर बराबरी की स्थितियां व अन्य सामाजिक विकृतियां बढ़ रही हैं। संपन्न व अमीर वर्ग के विद्यार्थी अच्छे शिक्षण संस्थानों से शिक्षा

प्राप्त कर लेते हैं और गरीब व वंचित वर्ग का विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इन भेदभाव की स्थितियों के कारण वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में अलगाव, संत्रास व आक्रोष की भावनाएं पनपती हैं, जो स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक होती हैं। व्यवस्था को संवेदनशील होना चाहिए, ताकि शोषित व उत्पीडित जनता को समान अवसर मिलें और एक गरीब विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर मुख्यधारा में शामिल हो सके। जातीय व आर्थिक आधार पर शिक्षा का वर्गीकरण उचित नहीं है। समन्वय शिक्षा का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होता है। शिक्षा का व्यापारीकरण भी उचित नहीं है। आजकल ऐसे निजी शिक्षण संस्थान खुल रहे हैं, जिनका लक्ष्य केवल पैसा कमाना है, उन्हें विद्यार्थियों के भविष्य की चिंता नहीं होती। ऐसी संस्थाओं में स्तरीय व गुणवत्तायुक्त शिक्षा न मिलने पर विद्यार्थियों को रोजगार के लिए भटकना पड़ता है। शिक्षण संस्थानों की बागड़ोर शिक्षाविदों के हाथों में होनी चाहिए, तभी विद्यार्थी रोजगारोन्मुख शिक्षा प्राप्त कर समाज के लिए उपयोगी व बेहतर इनसान बन सकते हैं। विद्यार्थियों में मानवीय भावनाएं व संवेदनशीलता पैदा करने के लिए उन्हें भारतीय आदर्शों, मानवीय मूल्यों व संस्कारों से जोड़ना आवश्यक है।

4. मूल्य आधारित शिक्षा हेतु सुझाव व निष्कर्ष

वर्तमान शिक्षा पद्धति और मूल्यों में कोई समन्वय नहीं है। यह सर्वविदित है कि आज विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने के लिए भाषण, नोटस तथा बने बनाये उत्तरों को दोहराने का कौशल ही विद्यार्थी की परीक्षा का मापदण्ड है विद्यार्थी न तो अपने अस्तित्व को पहचान पाता है, न हीं पुस्तकीय ज्ञान उसकी सहायता करता है। ये गिरते हुए मूल्य हमारी शिक्षा के लिए चुनौती है। इस लिए विद्यार्थियों को अपनी रूचि, योग्यता, क्षमता, स्वःअध्ययन के लिए पूर्ण स्वतन्त्रा दी जाये। जिससे विद्यार्थी का सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, चारित्रिक तथा नैतिक विकास हो सके। शिक्षा में सुधार करके ही विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होता है। श्रेष्ठ मूल्यों व नैतिक आदर्शों से जुड़कर भूख, शोषण व भय से मनुष्य को मुक्त करवा सकते हैं। खेलों व अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों से जोड़कर विद्यार्थियों को सही दिशा दी जा सकती है। परंपरागत मूल्यों को आवश्यक संशोधन के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। परंपरा के साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान का समावेश शिक्षा को अधिक प्रभावपूर्ण बना सकता है। शिक्षा को अधिक से अधिक रोजगारपरक बनाया जाए, तभी विद्यार्थी अपने भविष्य को सुरक्षित बनाकर बेहतर इनसान बन सकते हैं। शिक्षक हमारी शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ होते हैं। योग्य समर्पित,

ईमानदार, सहृदय व निष्ठावान शिक्षक वर्तमान शिक्षा के स्वरूप में बदलाव ला सकते हैं। इस संदर्भ में शिक्षक का उत्तरदायित्व महत्त्वपूर्ण है, उसे पूर्ण करने के लिए उसे निरंतर अध्ययन, मनन व कार्यान्वयन की आवश्यकता होती है। वर्तमान संदर्भ में शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियां प्राप्त करने का साधन ही नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के बौद्धिक व मानसिक विकास का भी सषक्त माध्यम होनी चाहिए। वह विद्यार्थियों में नई चेतना, नई उमेंगों को जगाते हुए उन्हें मानवीय मूल्यों व आदर्शों से भी जोड़े। शिक्षा में भौतिकवादी दृष्टिकोण विद्यार्थी को अराजक वृत्तियों की ओर ले जाता है। समाज में फैली विकृतियों को मानवीय मूल्यों, आदर्शों व संवेदनशीलता से जोड़ना होगा। टीवी व सोषल मीडिया के माध्यम से फैल रही अपसंस्कृति पर अंकुष लगाना भी आवश्यक है। शिक्षा का लक्ष्य बेहतर इनसान तैयार करना होना चाहिए। संवेदनशील व उदार व्यक्ति वर्तमान परिदृष्य को बदलने में सक्षम होता है। शिक्षा के माध्यम से समाज में सामेंजस्य, समन्वय, सद्भाव, सेवा, समर्पण व त्याग की भावनाएं विकसित होनी चाहिए। इसके लिए व्यवस्था, शिक्षकों की सक्रिय भागीदारी व सद्भावनाएं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

सन्दर्भ

शर्मा, एस.एस, शर्मा, अन्जना, (2011):''शिक्षा के दार्शनिक एव समाजषास्त्रीय आधार,'' एच, पी, भार्गव बुक हाऊस 4/230 कचहरी घाट आगरा,पृ0 159–162

सिंह. आर. पी., (1997): ''ए स्टडी आफ वैल्यूज आफ अरबन एंड रूरल एड़ोलसेंट स्टूडेंट'', इडियन एजूकेशनअब्स्ट्रेक्स,, अंक–2, जनवरी 1997

शुक्ला, सी• एस•, (2009):''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजषास्त्रीय आधार,'' अनुभव पब्लिषिग हाउस इलाहाबाद पृ0–19

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,सारांष (2000), नई दिल्ली, एन•सी•ई•आर•टी• पृ0–2

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986):''मानव संसाधन विकास मेंन्त्रालय, भारत सरकार (शिक्षा विभाग), नई दिल्ली पृ0–19

सक्सेना, सरोज,(2000): ''शिक्षा के दार्शनिक एव समाज शास्त्रीय आधार'', साहित्य प्रकाशन आगरा पृ0–257

मैनी, डी0. (2005) : ''मानव मूल्य – परक शब्दावली का विश्वकोष,,'' खण्ड (पंचम), प्रकाशक प्रभात कुमार शर्मा द्वारा सरूप एण्ड सन्स, नई

दिल्ली।

पाण्डेय आर. ,(2000): ''मूल्य शिक्षा के परिपेक्ष्य'', आर. लाल बुक डिपो मेरठ, पृ0–153

पेरी एवं सक्सेना, एन.आर. स्वरूप,(2005):''शिक्षा के सिद्धान्त'', आर. लाल. बुक डिपो मेरठ, पृ0–643

◆◆◆

मूल्याश्रित शिक्षण में प्रभावी पाठ्यक्रम की उपयोगिता

डॉ0 विक्रान्त उपाध्याय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,(बी0एड0), एन0एम0एस0एन0दास पी0जी0 कालेज, बदायूं

प्रस्तावना

मूल्य से तात्पर्य उन सभी विचारों से है जिन्हें हम पसन्द करते हैं एवं समाज सम्मत होते हैं,एवं जो हमारे व्यवहार की व्याख्या करते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति के मूल्य उसके व्यवहार के पूर्व निर्धारक कहे जा सकते हैं। मूल्य मानव इच्छा की की तृप्ति के साथ ही मानव जाति के संरक्षण में सहायक होते हैं।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मूल्य संस्थापन के बिना अप्रासंगिक एवं उद्देश्यविहीन है।

प्रशिक्षण प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का महत्व सर्वाधिक होता है। शिक्षक और छात्र पाठ्यक्रम के माध्यम से आपस में जुड़े होते हैं। जॉन ड्यूवी के अनुसार ''शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है'' जिसके तीन ध्रुव शिक्षक, छात्र एवं पाठ्यक्रम होते हैं। जब हम शिक्षण, प्रशिक्षण में मूल्यप्रद शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय पाठ्यक्रम में एक और नया विषय जोड़ने का नहीं होता है अपितु पाठ्यक्रम में निहित विषय वस्तु को मूल्यपरक बनाना होता है। अतः मूल्य शिक्षा को कार्यक्रम की एक अलग इकाई नहीं समझनी चाहिये नहीं तो बच्चे को ऐसा अनुभव हो सकता है कि अन्य विषय में मूल्य शिक्षा नहीं दी जा रही है। शिक्षा निर्वाण के लिये होनी चाहिये न केवल जानकारी और तथ्यों की सूचना के लिये स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, ''शिक्षा का सार मन की एकाग्रता है तथ्यों का संकलन नहीं।'' मूल्यपरक शिक्षा बालक की मनोवैज्ञानिक तैयारी और अनुभव से जुड़ी होनी चाहिये। मूल्यों के सन्दर्भ में कोठारी आयोग 1964—66 ने कहा है कि ''पाठ्यचर्या में एक गम्भीर प्रक्रिया है इसमें सामाजिक, नैतिक, और अध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गयी है।

मूल्य शिक्षा के स्रोत

पूर्व निर्धारित विषयों के पाठ्यक्रम में हमारे महत्वपूर्ण जीवन मूल्यों का वृहत भण्ड़ार छिपा रहता है केवल उन विषयों को पढ़ाते समय अथवा

पाठ्य सहगामी क्रिया–कलाप कराते समय उन मूल्यों की और ध्यान आकर्षित करने उनकी पहचान कराने, तथा उन्हें शिक्षण प्रक्रिया का अभिन्न अंग मानकर उनका सम्बोध प्रदान करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये विज्ञान में स्वतंत्र खोज, गणित में ताक्रिक प्रयास, भाषा से अभिव्यक्ति, सामाजिक विषयों में समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा के ज्ञान, से सम्बन्धित मूल्यों का ज्ञान होता है।

पाठ्यक्रम की औपचारिकता

आजादी के बाद हमारी कार्यप्रणाली यह रही है कि जहाँ–जहाँ हम असफल रहे हैं वहाँ–वहाँ हमने अपनी असफलता को छिपाने के लिए उक्त विषय को बालकों के पाठ्यक्रम में सम्मलित करने की बात करके छुट्टी पा ली है और भी गम्भीर बात यह है कि जितनी भी मूल्य व्यवस्थाऐं हमारे देश में बनी हुई हैं, उनका मूलाच्छेदन करना प्रगतिवादी विचारधारा के अन्तर्गत लेकर शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख अभिकरण बनाने पर जोर दिया जा रहा है। इसके स्थान पर कोई एक ऐसी बात देखने में नहीं आई जिसको अच्छे प्रतिफल का उत्पादक माना जा सके। केवल परिवर्तन का ही एक नारा बन गया है बिना यह समझे कि परिवर्तन का फल अच्छा है या बुरा। नतीजा यह है कि युवा शक्ति की अगाध धारा दिशा–विहीनता में बिखर कर उपजाऊ क्षेत्रों की खड़ी फसलों को भी वहा जाती हैं।

पाठ्यक्रम निर्माण से पहले मूल्य

मूल्य, शिक्षा ही नहीं, सम्पूर्ण समाज की मूलधारा है। जिसके अन्तर्गत परिवार, मुहल्ला, बाजार, सरकारी दफ्तर, खेत–खलिहान आदि सब आते हैं। शिक्षा मूलधारा की एक ''नहर'' मात्र है जिसके पानी में कुछ विशेष संस्कार इसलिये दिये जाते हैं कि खेतों में जाने के पहले पानी के दूशित पदार्थ अलग कर दिये जाएं और उसमें कुछ पोषक पदार्थ मिला दिये जाऐं। हमारे कुछ 'विद्या–बावले शिक्षाशास्त्री' ज्ञान के विस्फोट की चकाचौंध में चकित हो उठे हैं, और शिक्षा के ज्ञान के गट्ठर बालके के सिर पर लादते हैं। फल यह है कि आदतों और अभिवृत्तियों के रचनात्मक कार्यक्रमों के लिये अवकाश नहीं रहता । दूसरी बात यह है कि इस कार्य को करने के लिये किसी को नौकर नहीं रखा जा सकता।

यद्यपि मूल्यपरक शिक्षा का श्रोत समाज है तथापि विद्यालय मूल्यपरक शिक्षा का सर्वोत्तम साधन है, यदि विद्यालय में शिक्षण अधिगम

प्रक्रिया को मूल्यपरक बनाया जा सके तो छात्रों में अपेक्षित मूल्यों का विकास हो सकता है।

यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि केवल विद्यार्थियों के लिये मूल्य शिक्षा निश्चित करने से बहुत लाभ होने वाला नहीं है। वयस्क समाज द्वारा संचालित क्रिया–कलापों में नवयुवकों को साथ लेकर चलना ही हितकर होगा।

आज समाज और सरकार बिफरे हुए लोगों को फुसलाने के लिये समझौते करती रहती है जैसे–अवैध रूप से धरती पर अतिक्रमण करने वालों से कुछ जुर्माना लेकर उनके कब्जों को वैध बना देना और भले लोग 'क्यू' में खड़े रहेगें और रेलगाड़ी छूट जायेगी।

इस समय शिक्षा की मूल धारा में शोषण प्रधान, और होड़ में आगे निकलने वाले तत्व हैं और वाद–विवाद प्रतियोगिता के द्वारा बालकों को सत्य के प्रति आदर के स्थान पर कुतक्र से अपने पक्ष को पुष्ट करने की ट्रेनिंग दी जाती है। ऐसे में मूल्य शिक्षा सफल नहीं हो सकती। हैजे को फैलाने के कारणों को कायम रखकर और उनको मजबूत बनाकर अस्पताल खोलना देश के साथ खिलवाड़ करना ही है।

शिक्षा देश की रीढ़ है। जिस प्रकार विकृत रीढ़ से एक व्यक्ति स्वस्थ नहीं कहला सकता, उसी प्रकार विकृत शिक्षा व्यवस्था से देश निर्माण नहीं हो सकता। वर्तमान विश्व–समाज की दशा को देखकर यह कहना गलत नहीं है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में कहीं न कहीं, कोई न कोई कमी अवष्य है। अपने ही देश की ओर अगर हम दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि राष्ट्रीय नैतिक चरित्र का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। इसका मूल कारण है–शिक्षा में मूल्य शिक्षा का अभाव। शिक्षा में मूल्य का पुट होने से मनुष्य को संसार का वास्तविक ज्ञान होता है। उसे अपने जीवन के अन्तिम उद्‌देश्य की जानकारी होती है। उसमें समुचित आदतों का निर्माण होता है। समाज से अनुशासनहींनता, भ्रष्टाचार, शोषण पापाचार, और पक्षपातिता जैसी बुराईयां दूर होती हैं। समाज में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित होता है। व्यक्ति में वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का विकास होता है। शिक्षा में नैतिकता का पुट ही उसे मनुष्य से देवत्व की ओर बढ़ावा देता है। शिक्षा में नैतिकता को लेकर प्रश्न उठाया जाता है कि नैतिकता का कोई मापदण्ड नहीं होता। जो कार्य एक स्थान पर नैतिक माना जाता है, वहीं दूसरे स्थान पर है। समझा जाता है। मूल्यविहीन मनुष्य, पषु के समान हैं। इस समस्या पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि

शिक्षा में मूल्य को स्थान अवष्य दिया जाना चाहिये। अब प्रश्न है–पाठ्यक्रम में इसे कैसे स्थान दिया जाये? इस सम्बन्ध में दो प्रश्न उठते हैं– (1) मूल्य का अध्ययन एक विषय के रूप में, (2) मूल्यपरक आचरण का विकास। भले ही इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान की तरह हम मूल्य का अध्ययन एक विषय के रूप में न भी करा सकें, पर शिक्षा द्वारा मूल्यपरक आचरण का विकास अवष्य किया जाना चाहिये। शिक्षा के प्रमुख तीन स्तर हैं, उसमें मूल्य शिक्षा को व्यवस्थित किया जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा

वास्तव में, मूल्य शिक्षा का बीजारोपण प्राथमिक स्तर से ही होना चाहिये। मूल्य का विकास कोरे उपदेश देकर नहीं किया जा सकता इसके लिये हमें परिवार विद्यालय व समाज में एक वातावरण उत्पन्न करना चाहिये। बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। माता–पिता, अध्यापक को विचार–विमर्ष कर उन्हें एक सही नैतिक वातावरण देना चाहिये। इसी अवस्था में बालक में निम्न गुणों का विकास करना चाहिये।

परमसत्ता में आस्था

परमसत्ता का ज्ञान हमें, उन्हें छोटी–छोटी कहानियां सुनाकर, साधु–सन्तों का जीवन चरित्र पढ़ाकर, नैतिकता से ओत–प्रोत गाने प्रार्थना सभा में गाकर करना चाहिये।

निर्भीकता

अध्यापकों के प्रश्नों का निर्भीकतापूर्वक उत्तर देने के लिये प्रोत्साहित करना। बाह्य पाठ्यान्तर, सांस्कृतिक क्रियाओं में भाग लेकर। किसी के भी गलती करने पर उसे आदरपूर्वक इंगित करने का अभ्यास करवाकर। अन्धकार, भूत–प्रेत, कीड़े–मकोड़े, जानवरों से डर उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

स्वच्छता

स्वच्छ रहने की आदत ड़ालें। अच्छी और बुरी आदतों का क्या प्रभाव पड़ता है–इससे सम्बन्धित कहानियां सुनायें। समय–समय पर उनकी पोषाक और व्यक्तिगत वस्तुओं का निरीक्षण कर मूल्यांकन करना चाहिये। कक्षा और उसके बाहर के स्थानों को साफ रखने में उनकी मदद लीजिये। भ्रमण में ले जाकर वहां के वातावरण में सफाई का पाठ–पढ़ाना और गन्दगी

के प्रभावों से परिचित कराना।

नियमितता

पंक्तिबद्ध होकर प्रार्थना स्थल पर आएं और वहां से कक्षा में जाएं। कक्षा में चीजें क्रम से रखें। समय से कक्षा में आएं।

बड़ों का आदर

बड़ों के आने पर खड़े हों। उनके साथ नम्रता से बातचीत करें। बड़ों को नमस्कार करें। माता–पिता व गुरूजनों के काम में सहायता दें।

समाज की आवश्यकताओं के प्रति जागरूकता

स्कूल के सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लें। समय–समय पर सामाजिक, राष्ट्रीय कार्यों में धन या श्रम का दान दें। जनस्थलों की सफाई रखें।

न्याय

विद्यार्थियों के ही न्यायालय हों। आपसी मतभेद होने पर उन्हें ही फैसला करने का मौका दिया जाए। न्याय पर आधारित कहानियां पढ़ें।

सत्यता से प्रेम

बात को बढ़ा–चढ़ा कर नहीं, वास्तविक रूप में ही रखें। अपनी भूल का एहसास करें। अपने पैसे का हिंसाब रखें। मुसीबत में भी सत्य से मुंह न मोड़ें। सत्यवादी महापुरूषों की जीवनियाँ पढ़ें; जैसे–राजा हरिश्चन्द्र की कहानी आदि। पीठ पीछे किसी की बुराई न करें। माता–पिता, अध्यापक को स्वयं सत्य बोलकर अपना उदाहरण रखना चाहिए।

ईमानदारी

दूसरों की चीज बिना आज्ञा के न लें, न उसका प्रयोग करें। किसी का सामान पड़ा मिले, तो उसे सम्बन्धित संस्था में जमा कर दें। ऐसा करने वाले विद्यार्थी को सम्मान दिया जाय।

दूसरों का अहित न करें

पशु–पक्षी, जानवर किसी भी प्राणी मात्र को नुकसान न पहुंचाएं। जीव–जन्तु–प्राणियों के प्रति दया दिखाने वालों की कहानी पढ़े। प्राणीमात्र

के प्रति अहिंसा का व्यवहार करने के लिए उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए।

प्रेम

मित्रों, सम्बन्धियों, अध्यापकों, समस्त प्राणीमात्र के प्रति प्रेमपूर्वक व्यवहार एवं गरीब, अपाहिज, जरूरतमन्द की सहायता करने वालों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिये पाठ्यक्रम बनाते समय इन क्रियाओं पर विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। अतः मूल्य संस्थापन हेतु अध्यापकों और अभिभावकों को प्रयत्नशील होना चाहिए, क्योंकि इस स्तर पर नैतिकता का बीज आसानी से बोया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा

नैतिकता के विकास के लिए यहाँ पाठ्यक्रम में दो पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न प्रकार के क्रिया–कलापों में भाग लेना जैसे– प्रार्थना–सभा का आयोजन करना, नियमित रूप से कक्षा में उपस्थित होना, स्कूल में एक कक्षा से दूसरी कक्षा में पंक्तिबद्ध जाना, स्कूल की समाप्ति पर पंक्तिबद्ध होकर कक्षा छोड़ना, दो चक्रों के बीच के समय कक्षा में अनुशासन बनाए रखना, कक्षा और उसके आसपास का वातावरण साफ रखना, पानी पीने का स्थान, शौचालय साफ रखना, माता–पिता, अभिभावक के आने पर उन्हें आदर देना।

इसके लिए हमें ड्रिल, खेलकूद, संगीत, नाटक, चित्रकारी, स्काउटिंग, रेडक्रॉस, एन0सी0सी0, विभिन्न विषयों के क्लबों का संगठन, विश्व–इतिहास के मुख्य–मुख्य दिवसों को मनाना चाहिए।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा से सम्बधित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्राचीन गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में निहित शारीरिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेष होना अपेक्षित है। प्रायः विश्वविद्यालयी स्नातक पाठ्यक्रम में पर्यावरणीय मूल्य सम्बन्धी विषयवस्तु का समावेष तो है परन्तु समस्त मूल्यों का समावेष स्पष्ट रूप से नहीं है। यदि स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में अतिरिक्त और अनिवार्य विषयवस्तु के रूप में भारतीय दर्शन का समावेष किया जाये तो निश्चित रूप से व्यस्क छात्रों में विभिन्न नैतिक

एवं आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना/पुर्नस्थापना हो सकेगी।

प्रत्येक स्तर पर प्रचलित पाठ्यक्रम तथा तत्सम्बधित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य शिक्षा का समावेष होना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन है तो ज्ञान, समझ, अभिव्यक्ति के साथ विभिन्न अवस्थाओं में अपेक्षित मूल्यों की स्थापना ही परमावश्यक है। यदि व्यापक और गहन चिन्तन के आधार पर व्यक्तित्व विकास एवं सामाजिक एवं वैषविक विकास के मानदण्ड निर्धारित किये जाये ंतो मूल्यपरक व्यवहार प्रथम स्थान पर रखा जाना समीचीन होगा। यदि शिक्षा के माध्यम से सम्पूर्ण मानव समाज को मूल्यवान बना दिया जाये तो वर्तमान में आतंकवाद, अषान्ति, मानवता का ह्रास जैसी समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो जायेगा। अस्तु मूल्यपरक शिक्षा से युक्त पाठ्यक्रम तथा मूल्यपरक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सर्वथा उचित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मिश्र एच0एन0, अवस्थी जे0पी0, नीतिशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ (2003)।

ड़ागर बी0एस0, शिक्षा तथा मानव मूल्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला (2007)।

दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (2009)।

वर्मा जी0एस0, मूल्य शिक्षा,पर्यावरण एवं मानवाधिकार, इन्टरनेषनल पब्लिषिग हाऊस, मेरठ(2012)।

जोषी एस0, राधाकृष्णन का विश्वदर्शन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली (1966)।

राधाकृष्णन एस0, सत्य की खोज, राजपाल एण्ड संस दिल्ली (1996)।

◆◆◆

अशोक के धम्म के नैतिक मूल्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० विजय कुमार राय

प्रवक्ता इतिहास, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ0प्र0)

अतीत से हमारा तात्पर्य बीते हुए कल से है जिसे हम इतिहास कहते हैं। ''इतिहास'' इति–ह–आस से बना है जिसका तात्पर्य है कि वह जो पूर्व में निश्चित ही घटा है। इस आधार पर इतिहास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि मानव समाज से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनाएँ जो पूर्व में निश्चित ही घटित हुयी है का तथ्यों के आधार पर विवेचन ही इतिहास है। इस प्रकार इतिहास (अतीत) का महत्व मानवीय समाज के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वर्तमान की अनेक समस्याओं का समाधान अतीत के गर्भ में ही छिपा हुआ है। अतः वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं के समाधान हेतु अतीत के दो महान शासको में 'अशोक' का उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है, जिसने अपनी नीतियों एवं कार्यो के द्वारा न केवल भारत बल्कि विश्व के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। हम राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में राजा का मूल्यांकन उसके द्वारा युद्धों में प्राप्त विजयों के आधार पर करने का प्रयास करते हैं, किन्तु जैसा कि नैपोलियन बोनापार्ट ने स्वयं कहा है–''मेरा वास्तविक गौरव मेरे चालिस युद्धों के विजयों में नहीं है बल्कि मेरी विधि संहिता ही ऐसी है जो कभी न मिट सकेगी और चिरस्थायी सिद्ध होगी'' ।(1) नैपोलियन के इस कथन को अशोक ने अपने शासनकाल में सभी धर्मो के लोगो के मध्य एक सहिष्णुतापूर्ण उदार धार्मिक नीति अपनाकर आगे आने वाली पीढ़ियों के समक्ष एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिससे कि भविष्य में उठ खड़ी होने वाली सामाजिक समस्याओं का उचित समाधान मिल सके।

यद्यपि अशोक के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में हमें जानकारी दिव्यावदान और सिंहली अनुश्रुतियों से मिलती है जिसमें सत्ता प्राप्ति के क्रम में उसे अपने 99 भाईयों का हत्यारा बताया गया है किन्तु इनमें दी गयी बातें पूर्णतया प्रमाणित नहीं हैं। उसके पांचवे शिलालेख में उसके जीवित भाइयों का उल्लेख है जो उसके शासन के 13वें या 14वें वर्ष तक उत्कीर्ण हो चुका था।(2) सत्ता प्राप्ति के इस विवादग्रस्त बातों को छोड़ दिया जाये तो अशोक भी राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का मूल यानि साम्राज्यवादी नीति की ओर अग्रसर हुआ और अपने शासन काल के 8वें वर्ष (261 ई0पू0)

के लगभग उसने कलिंग जो व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण राज्य था के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया।(3) कलिंग के इस युद्ध का परिणाम यद्यपि अशोक के पक्ष में रहा किन्तु इसकी भयानकता ने जैसा कि के0सी0 श्री ने लिखा है'' इसमें 1 लाख 50 हजार लोग बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिये गये, एक लाख लोगों का कत्ल कर दिया गया तथा इससे भी कई गुना मर गये।(4) अशोक के मन को उद्वेलित कर दिया। कलिंग का यह युद्ध भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना बन गयी जिसने मौर्य कालीन साम्राज्यवादी विस्तार रथ के पहियों को रोक दिया और ऐसे युग को जन्म दिया जिसका उद्देश्य शान्ति, सामाजिक प्रगति और प्रजा का कल्याण था। हेमचन्द्र राय चौधरी ने भी इस सम्बन्ध में लिखा ''इस युद्ध के पश्चात् मौर्यो के सैन्य विजय तथा दिग्विजय का युग समाप्त हुआ तथा इसके स्थान पर आध्यात्मिक और धम्म विजय का युग प्रारम्भ हुआ।''(5) अपने धार्मिक नीति के अन्तर्गत अशोक का उद्देश्य सभी धर्मो के प्रति आदर व्यक्त करना था। सातवें स्तम्भ लेख में अपनी यह इच्छा इस रूप में व्यक्त करता है ''सब मतों के व्यक्ति सब स्थानों पर रह सकें क्योंकि वे सभी आत्म संयम एवं ह्रदय की पवित्रता चाहते हैं।''(6) इससे स्पष्ट होता है कि अशोक ने विभिन्न धर्मो के रहस्य को भली प्रकार परखा था और समझ चुका था कि सभी में सत्य का अंश विद्यमान है। इसकी यह परख उसके बारहवें शिला लेख में इस विचारों से प्रकट होता है कि ''मनुष्य को अपने धर्म का आदर और दूसरे धर्म की अकारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने पर मनुष्य दूसरे सम्प्रदाय का अपकार तो करता ही है, अपने सम्प्रदाय को भी क्षीण करता है।''(7)

अपनी धार्मिक सहिष्णुता के क्रम में उसने जिस धम्म नीति का अनुशरण किया उसका उद्देश्य प्रजा का नैतिक उत्थान करना था अपने दूसरे स्तम्भ लेख में वह स्वयं से प्रश्न करता है–कियं चु धम्मे?

(धम्म क्या है ?) इसका उत्तर उसके दूसरे एवं सातवें स्तम्भ लेख में इस प्रकार मिलता है 'अपासिनवेबहुकयाने दया दाने सचे सोचये मादवे साधवे च' जिसका अर्थ है–

अपासिनवे (अल्प पाप)

बहुकयाने (अत्याधिक कल्याण)

दया

दान

सचे (सत्यवादिता)

सोचये (पवित्रता)

मादवे (मृदुता)

साधवे (साधुता)

अशोक द्वारा धर्म की यह व्यक्त परिभाषा न केवल मौर्यमुगीन परिस्थितियों बल्कि आने वाले युगों के लिए भी एक अमूल्य निधि है क्योंकि इसके आभाव में कभी भी व्यक्ति में मनुष्यता का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता। मानव आज विकास के उस युग में आ गया है जहॉ उसके अन्दर अनेक विकृतियॉ समा चुकी हैं और वह इन विकृतियों को दूर करने हेतु अपने आत्म निरीक्षण को तैयार नहीं है। अतः इसके लिए अशोक ने कुछ गुणों को व्यवहार में लाने की बात कही है जो इस प्रकार है–

1. अनारम्भो प्राणानाम् (प्राणियों की हत्या न करना)
2. अविहिन्सा भूतानाम (प्राणियों को क्षति न पहुॅचाना)
3. मातरि–पितरि सुस्रूसा (वृद्धों की सेवा करना)
4. थेर सुस्रूसा (वृद्धों की सेवा करना)
5. गुरूणाम् अपचिति (गुरूजनों का सम्मान करना)
6. मित संस्तुत नाटिकाना ब्राह्मण–समणानां दानं संपटिपति (मित्रों परिचितो ब्राह्मणो तथा श्रमणों के साथ अच्छा व्यवहार करना)
7. दास–भतकम्हि सभ्य प्रतिपति (दासों एवं नौकरों के साथ अच्छा बर्ताव करना)
8. अपव्यता (कम खर्च करना)
9. अपभाण्डता (कम संचय करना)

अशोक के धम्म का यह व्यावहारिक पक्ष निश्चय ही प्रेणास्त्रोत की तरह है क्योंकि इसमें केवल मानवीय नैतिकता की बात कही गयी है। इन गुणों को व्यवहार में न लाने के कारणों पर भी वह प्रकाश ड़ालता है। उन दुर्गुणों के लिए वह 'आसिनव'' (पाप) शब्द का प्रयोग करता है। अपने तृतीय

स्तम्भ लेख में व्यक्त करता है कि ''मनुष्य अपनी सुकृतों को ही देखता है और सोचता है कि यह सुकृत मैने किया है किन्तु वह अपने आसिनव (पाप) पर विचार नहीं करता है।'' इस आसिनव के लिए ही अशोक बार–बार आत्म परीक्षण की बात कहता है। ये आसिनव (पाप) है–

चण्डिय (उग्रता)

निठुलिए (निष्ठरता)

क्रोधे (क्रोध)

माने (घमण्ड)

इस्सा (ईर्ष्या)

प्रचण्डता या उग्रता एक ऐसा अवगुण है जो समाज में भय का वातावरण उत्पन्न कर देता है और इसके कारण सत्य का मार्ग असम्भव सा प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार निष्ठुरता का भाव आ जाने के कारण मनुष्य में प्राणी के प्रति प्रेम सद्भाव अहिंसा ये सभी खत्म होने लगते हैं और वह मानवतावादी समाज की रचना से अपने को दूर करता जाता है। क्रोध वह दुर्गण है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य परिस्थितियों की गम्भीरता को नहीं समझ पाता है और सत्य असत्य का निर्णय कर पाने में असमर्थ हो जाता है। घमण्ड और ईर्ष्या वे आसिनव हैं जो वर्तमान समाज में दृढ़तर होते जा रहें है। घमण्ड के कारण दिखावे की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और मनुष्य भाई, मित्र, परिचित, गुरू आदि के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूलता जा रहा है।

अशोक के तश्तीय स्तम्भ लेख में उल्लेखित यह दुर्गण निश्चय ही मनुष्य को समाज कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ने से रोकते हैं। जब तक मनुष्य इन दुर्गणों को अपने से दूर नहीं करेगा तब तक अशोक द्वारा व्यक्त सद्गुणों को अपने व्यवहार में नहीं ला सकता।

भौतिक विकास के इस वर्तमान युग में मनुष्य का स्वार्थ उसे प्राचीन धरोहरो से दूर करता जा रहा है। आज जिस प्रकार से सामाजिक विघटन के फलस्वरूप समाज में जाति–पात, ऊँच–नीच और विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य भेदभाव बढ़ता जा रहा है। एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण पारिवारिक मूल्य सिमटते जा रहे हैं। माता–पिता और बुजुर्गों के प्रति अनादर का भाव बढ़ता जा रहा है। गुरू शिष्य परम्परा जो

भारतीय शिक्षा पद्धति का मुख्य आधार था वह टूट रहा है जिससे गुरू शिष्य के प्रति व्यवहार में अनादर का भाव बढ़ गया है। सर्वत्र समाज में हिंसा बढ़ती जा रही है। कन्या भ्रूण हत्या, स्त्रियों के प्रति दिन पर दिन अत्याचार की बढ़ती घटनाओं ने मानव मन को झकझोर कर रख दिया है। स्वार्थ के वशीभूत होकर व्यक्ति केवल अपने और अपने हित के बारे में ही सोच रहा है। समाज और राष्ट्र के प्रति उसकी संवेदनाएं सीमित होती जा रही है। धन संचय की प्रवृत्ति में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। धन अर्जन के तरीके बदलते चले जा रहे हैं। नित नये कानूनों के निर्माण द्वारा भी इस पर अंकुश नहीं लग पा रहा है। अतः इन समस्याओं के समाधान के लिए निश्चित ही अपने अतीत के आदर्शो को व्यवहार में उतारने की आवश्यकता है। यह आदर्श अशोक के शिलालेखों मे उल्लिखित उसके धम्म सम्बन्धित आचारों की संहिता के द्वारा पूर्ण हो सकता है। अतः अशोक का अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए व्यक्त किये गये विचार वर्तमान में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितना कि उस युग में।

सन्दर्भ ग्रंथ

जैन एवं माथुर, विश्व इतिहास नवम संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या–301, जैन प्रकाशन मेंदिर जयपुर।

वी0सी0 पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास भाग–1, पृष्ठ संख्या–411, सेन्ट्रल पब्लिशिंग मन्दिर, इलाहाबाद।

के0सी0 श्री प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, पृष्ठ संख्या–180

वी0सी0 पाण्डेय वही पृष्ठ संख्या 181

हेमचन्द्र राय चौधरी, पो0हि0 आफ ऐन्शेन्ट इण्डिया, पृष्ठ 306–307

के0सी0 श्री, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं0–184

वही, पृष्ठ संख्या–185

◆◆◆

शिक्षा का विकास एवं भारतीय संविधान

डॉ० संजीव कुमार[1] एवं शिल्की सिंह[2]

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कु0 मायावती राजकीय महिला महाविद्यालय, बादलपुर,

[2]प्रवक्ता (शिक्षाशास्त्र), आर्य कन्या पाठशाला इंटर कॉलिज, हापुड़ (उ०प्र०)

प्रस्तावना

षिक्षा मानव के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। षिक्षा से व्यक्ति सभ्य नागरिक बनता है व सभ्य नागरिक सभ्य समाज का निर्माण करता है। षिक्षा मानव को आत्म–साक्षात्कार कराकर उसे एक जिम्मेदार नागरिक बनाती है जिसकी जिम्मेदारी अपने घर–परिवार के साथ–साथ देष की रक्षा करने की भी होती है। १९४७ के बाद भारत में प्रारंभिक षिक्षा से लेकर उच्च षिक्षा तक तकनीकी षिक्षा से लेकर व्यावसायिक षिक्षा तक षिक्षा के क्षेत्र में कई अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं जिससे षिक्षा का क्षेत्र व्यापक होने के साथ बहुआयामी भी हो गया है। कौन कहता है आजादी के बाद हमने बहुत कुछ खोया है। हमारे इंजीनियरों व डॉक्टरों की विदेषों में भी माँग है। गुरुकुल षिक्षा पद्धति से प्रभावित होकर कई विदेषी भारत का रुख कर रहे हैं। वैसे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही षिक्षा के क्षेत्र में तीव्र विकास हेतु अनेक प्रयास किए जा रहे हैं किंतु इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ से ही इन प्रयासों की गति और भी अधिक तीव्र हो गई है। इसी तारतम्य में माह नवंबर २००० से केंद्र सरकार द्वारा सर्व षिक्षा अभियानष का श्रीगणेष किया गया, जिसमें ६ से १४ वर्श तक के सभी बच्चों को प्राथमिक षिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था। इसमें काफी हद तक सरकार को सफलता मिली है। इनके अलावा उच्च षिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार ने अपनी रुचि दिखाते हुए कई नए भारतीय प्रबंध संस्थान कॉलेजों को स्वीकृति प्रदान की है। षिक्षा प्रणाली में सुधार करते हुए कई कॉलेजों में इस वर्श सेमिस्टर प्रणाली षुरू की गई है। देष के नौनिहालों को षिक्षित करने के लिए हर गाँव के गली–मोहल्लों में आँगनवाड़ियों की स्थापना की गई है, जहाँ षिक्षा के साथ–साथ बच्चों को संतुलित भोजन भी उपलब्ध कराया जाता है। यहीं नहीं गाँव के सरकारी स्कूलों में भी बच्चों के लिए मध्याह्न भोजन की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई है। इसके अलावा प्रबंधन एवं तकनीकी उच्च षिक्षा के क्षेत्र में देष के ६ भारतीय प्रबंध संस्थान व ६ भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान देष–विदेष में अपनी पैठ जमा चुके हैं। इन संस्थानों से निकले छात्र पूरी दुनिया में अपनी प्रतिभा का

लोहा मनवा रहे हैं। आज हमारा देष तकनीकी षिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर प्रगति कर रहा है। भारत के इंजीनियरों व डॉक्टरों की विदेषों में भी माँग है। भारत की गुरुकुल षिक्षा पद्धति से प्रभावित होकर कई विदेषी षिक्षा प्राप्ति हेतु भारत की ओर पलायन कर रहे हैं। कौन कहता है आजादी के बाद हमने बहुत कुछ खोया है। सच तो यह है कि आजादी के बाद भारत ने बहुत सारी उपलब्धियाँ हासिल की है। कल तक पिछड़ा माने जाने वाला हमारा देष आज षिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी बन रहा है। आज साल–दर–साल बालिका षिक्षा में बढ़ोतरी होना भारतीय छात्रों को विदेषी कंपनियों द्वारा हाथोहाथ लेना तथा और भी कई उदाहरण हमारे षिक्षित होने के द्योतक हैं।

भारत के संविधान में थिक्षा से सम्बंधित प्रावधान

१. अनुच्छेद १३– मौलिक अधिकारों के असंगत या अवमानना का कानून।

२. अनुच्छेद १५– धर्म, नस्ल , जाति, लिंग या जन्म स्थामन के आधार पर विभेद का निशेध।

३. अनुच्छेद २१ अ– षिक्षा का अधिकार दिसम्बार, २००२ में ८६वें संषोध ान द्वारा षामिल और जुलाई, २००९ में संसद द्वारा पारित। अधिनियम के प्रावधान १ अप्रैल, २०१० से प्रवर्तित हुए,

४. अनुच्छेद २८– कुछ षैक्षिक संस्थानों में धार्मिक अनुदेष या धार्मिक पूजा में उपस्थिति की आजादी।

५. अनुच्छेद ३०– षैक्षिक संस्थांनों की स्थाधपना और प्रषासन के लिए अल्पशसंख्याकों का अधिकार।

६. अनुच्छेद ४५–बच्चों हेतु निरूषुल्कि एवं अनिवार्य षिक्षा का प्रावधान

८६वें संषोधनों द्वारा दिसंबर, २००२ में सम्मिलित तथा संसद द्वारा जुलाई, २००९ में पारित। इस अधिनियम के प्रावधान दिनांक १ अप्रैल, २०१० से लागू हुए,

६ वर्श से कम आयु के बच्चों की पूर्व बाल्यावस्था देखरेख एवं षिक्षा का प्रावधान।

७. अनुच्छेद ४६–अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्यर कमजोर वर्गों के षैक्षिक एवं आर्थिक हितो का संवर्धन।

८. अनुच्छेद ३५०अ–प्राथमिक स्तर पर मातष्भाशा में षिक्षण सुविधाएं।

9. अनुच्छेद 351–हिन्दी भाषा के विकास हेतु निर्देष

आजादी के बाद राधाकृश्ण आयोग (१६४८–४६), माध्यमिक षिक्षा आयोग ध्मुदालियर आयोग(१६५२–५३) , विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (१६५३), कोठारी षिक्षा आयोग (१६६४), राष्ट्रीय षिक्षा नीति (१६६८) एवं नवीन षिक्षा नीति (१६८६) आदि के द्वारा भारतीय षिक्षा व्यवस्था को समय–समय पर सही दिषा देनें की गंभीर कोषिष की गयी।

राधाकृष्णन आयोग (1948–49)

नवंबर १६४८ में राधाकृश्णन आयोग का गठन देष में विश्वविद्यालय षिक्षा के संबंध में रिपोर्ट देने हेतु किया गया था। स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालय षिक्षा के क्षेत्र में इस आयोग की रिपोर्ट का अत्यंत महत्व है। इस आयोग ने निम्न सिफारिषें की थीं–

१. विश्वविद्यालय पूर्व १२ वर्श का अध्ययन होना चाहिये।

२. उच्च षिक्षा के मुख्य तीन उद्देष्य होने चाहिये।

(१) सामान्य षिक्षा (२) सरकारी षिक्षा, एवं (३) व्यवसायिक षिक्षा

३. प्रषासनिक सेवाओं के लिये विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि आवष्यक नहीं होनी चाहिये।

४. षांति निकेतन एवं जामिया मिलिया की तर्ज पर ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिये।

५. महाविद्यालयों में छात्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं होनी चाहिये। एक महाविद्यालय में १ हजार से ज्यादा छात्रों को प्रवेष न दिया जाये।

६. विश्वविद्यालयों के द्वारा आयोजित की जाने वाली परीक्षा के स्तर में सुध ाार लाया जाये तथा विश्वविद्यालय षिक्षा को 'समवर्ती सूची में सम्मिलित किया जाये।

७. देष में विश्वविद्यालय षिक्षा की देख–रेख के लिये एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया जाए।

८. उच्च षिक्षा में अंग्रेजी माध्यम को जल्दबाजी में न हटाया जाये।

६. विश्वविद्यालयों में कम से कम १८० दिनों का अध्ययन अनिवार्य किया जाये। यह ११–११ सप्ताहों के तीन सत्र में विभाजित हो।

१०. जहां राज्यों की भाशा एवं मातष (स्थानीय) भाशा का माध्यम समान न हो वहां संघीय भाशा अर्थात राज्यों की भाशा में षिक्षा देने को प्राथमिकता दी जाये। जहां राज्यों की भाशा एवं स्थानीय भाशा समान हो वहां छात्रों को परंपरागत या आधुनिक भारतीय भाशाओं का चयन करना चाहिये।

इन्हीं सिफारिषों के आधार पर १९५३ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया गया तथा १९५६ में संसद द्वारा कानून बनाकर इसे स्वायत्तषासी निकाय का दर्जा दे दिया गया। इस आयोग का कार्य विश्वविद्यालय षिक्षा की देखरेख करना, विश्वविद्यालयों में षिक्षा एवं शोध संबंधी सुविधाओं के स्तर की जांच करना तथा उनमें समन्वय स्थापित करना है। सरकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिये पर्याप्त धन की व्यवस्था करती है। तदुपरांत आयोग देष के विभिन्न विश्वविद्यालयों को धन आवंटित करने का सुझाव देता है तथा विश्वविद्यालय षिक्षा से संबंधित विभिन्न विकास योजनाओं को क्रियान्वित करता है।

माध्यमिक थिक्षा आयोग (1952–53)

माध्यमिक षिक्षा के ढाँचे में सुधार के लिए डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में सन् १९५२ में "माध्यमिक षिक्षा आयोग" की स्थापना की गयी.

१. पाठ्यचर्चा में विविधता लाने, एक मध्यवर्ती स्तर जोड़ने, त्रिस्तरीय स्नातक पाठ्यक्रम षुरू करने इत्यादि की सिफारिष की।

२. वस्तुनिश्ठ परीक्षण–पद्धति को अपनाया जाए।

३. संख्यात्मक अंक देने के बजाय सांकेतिक अंक दिया जाए।

४. उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर की षिक्षा के पाठ्यक्रम में एक कोर विशय रहे जो अनिवार्य रहे जैसे गणित, सामान्य ज्ञान, कला, संगीत आदि।

कोठारी थिक्षा आयोग (1964–66)

जुलाई १९६४ में डाक्टर डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय आयोग का गठन किया गया। इसका कार्य षिक्षा के सभी पक्षों तथा चरणों के विशय में साधारण सिद्धांत, नीतियों एवं राष्ट्रीय नमूने की रुपरेखा तैयार कर उनसे सरकार को अवगत कराना था। आयोग की

अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड एवं यूनेस्को के षिक्षा–षास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों की सेवायें भी उपलब्ध करायीं गयीं थी। आयोग ने वर्तमान षिक्षा पद्धति की कठोरता की आलोचना की तथा षिक्षा नीति को इस प्रकार लचीला बनाये जाने की आवश्यकता पर बल दिया जो बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुकूल हो। आयोग की सिफारिषों के आधार पर १९६८ में राष्ट्रीय षिक्षा नीति की घोशणा की गयी। जिसमें निम्नलिखित तथ्यों पर बल दिया गया–

१. १४ वर्श की आयु तक निःषुल्क तथा अनिवार्य षिक्षा।

२. षिक्षा के लिये तीन भाशाई फार्मूला–मातष्भाशा, हिन्दी एवं अंग्रेजी तथा क्षेत्रीय भाशाओं का विकास।

३. राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिषत षिक्षा पर व्यय करना।

४. अध्यापकों के प्रषिक्षण की व्यवस्था तथा उनके लिये मानक तय करना।

५. कृशि तथा औद्योगिक षिक्षा का विकास।

६. विज्ञान तथा अनुसंधान षिक्षा का समानीकरण।

७. सस्ती पुस्तकें उपलब्ध कराना तथा पाठ्य–पुस्तकों को उत्तम बनाना।

राष्ट्रीय थिक्षा नीति (1968)

काठोरी आयोग (षिक्षा आयोग) की सिफारिषों के सम्बन्ध में लोकसभा में व्यापक चर्चा हुई. कालांतर में वर्श १९६८ में राष्ट्रीय षिक्षा नीति के क्रियान्वयन की केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने स्वीकृति दे दी. राष्ट्रीय षिक्षा नीति की प्रमुख बातेंरूदृ

१. सामान्य रूप से देष के सभी भागों में षिक्षा का समान ढाँचा अपनाना लाभप्रद होगा जो कि १०़२३ पर आधारित होगा।

२. षिक्षा में निवेष को धीरे–धीरे बढ़ाया जाना चाहिए।

३. कमजोर वर्ग के छात्रों को पढ़ाई के लिए प्रेरित करने के लिए छात्रवष्त्ति योजनायें बढ़ायी जाएँ।

४. विद्यालयी षिक्षा में विज्ञान, तकनीकी तथा व्यावसायिक षिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाए।

नई राष्ट्रीय शिक्षा–नीति (1986)

१६८० का दषक भारत में राजनीतिक रूप से उथल–पुथल का दौर तो रहा ही, सामाजिक आर्थिक–वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में भी देष को नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा. षिक्षा के पुनरीक्षण तथा पुनर्निध ारिण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी. इस सन्दर्भ में "षिक्षा की चुनौती–नीतिगत परिप्रेक्ष्य" नाम से एक वस्तुस्थिति प्रपत्र भारत सरकार द्वारा बनाया गया। १६८६ में यह "राष्ट्रीय–षिक्षा–नीति" के रूप में परिणत हुआ जिसकी प्रमुख विशेषताएँ थीं–

१. २१वीँ सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप बच्चों में आवष्यक कौषलों तथा योग्यताओं का विकास करना।

२. एक गतिहीन समाज को ऐसा स्पन्दनषील समाज बनाना जो प्रतिबद्ध हो, विकासषील हो तथा परिवर्तनषील हो।

३. राष्ट्रीय षिक्षा नीति के अनुसार ही सारे देष में षिक्षा का समान ढाँचा लागू हो, जो १०़२३ पर आधारित हो. इसके अलावा राष्ट्रीय षिक्षा व्यवस्था में एक जैसी केन्द्रिक पाठ्यक्रम पर बल दिया जाए।

आचार्य राममूर्ति समिति (1990)

वर्श १६८६ में केंद्र में संयुक्त मोर्चा सरकार ने सत्ता में आते ही राष्ट्रीय षिक्षा नीति १६८६ में संसोधन की कवायद षुरू कर दी–

१. इसके अध्यक्ष राममूर्ति थे।

२. षिक्षा को सामाजिक आर्थिक, क्षेत्रीय और लिंगभेद के कारण पैदा विशमताओं के व्यापक संदर्भ में देखा जाए ताकि समानता तथा सामाजिक न्याय की सम्प्राप्ति हो सके।

३. षिक्षा में मौड्यूल और सेमेस्टर पद्धति अपनायी जाए।

४. कौषल विकास पर जोर।

संथोधित राष्ट्रीय थिक्षा–नीति (1992)

वर्श १६६१ में कांग्रेस के पुनः सत्ता में आने पर पिछली सरकार द्वारा षिक्षा–नीति में किए गए परिवर्तनों का पुनरीक्षण किया गया.

१. इसके अध्यक्ष श्री जनार्दन रेड्डी थे।

२. प्रत्येक विद्यालय में कम से कम तीन षिक्षकों का प्रावधान।

३. ऑपरेषन ब्लैक बोर्ड और विद्यालय संकुल जैसी योजनाओं को जारी रखा जाए।

४. प्रौढ़ षिक्षा पर जोर और उसी के लिए "जिला साक्षरता अभियान" की सिफारिष।

यशपाल समिति (1992)

१. इसके अध्यक्ष प्रोफेसर यषपाल थे।

२. वर्श १९९२ में षिक्षा–प्रणाली में सुधार, प्राथमिक षिक्षा को अधिक सुरुचिपूर्ण तथा गुणवत्तापूर्ण बनाने, छात्रों की समझ में वषद्धि, पाठ्यक्रम को व्यवस्थित करना उद्देष्य।

३. उबाऊ और गुणवत्ताहीन परीक्षा–प्रणाली को रुचिकर बनाना।

४. षिक्षा को तकनीकी से जोड़ा जाए।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग(2005)

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की स्थापना १३ जून २००५ को हुई थी। यह भारत के प्रधानमन्त्री की सलाह के लिए स्थापित उच्च–स्तरीय सलाहकार संस्था है। इसका काम नीति निर्देषन तथा सुधारों की दिषा तय करना है। षिक्षा, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, कृशि, उद्योग, ई–प्रषासन जैसे कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों आदि पर ध्यान केन्द्रित करना भी इसके कार्य का हिस्सा है। ज्ञान को सुलभ बनाना, ज्ञान व्यवस्थाओं की रचना और उनका संरक्षण, ज्ञान तथा बेहतर ज्ञान सेवाओं का फैलाव इस आयोग के लिए मुख्य चिन्ता के विशय हैं।

निःथुल्क एवं अनिवार्य थिक्षा विधेयक (2009)

निःषुल्क एवं अनिवार्य षिक्षा विधेयक, २००९ भारतीय संसद द्वारा सन् २००९ में पारित षिक्षा सम्बन्धी एक विधेयक है। इस विधेयक के पास होने से बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य षिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। संबिधान के अनुच्छेद ४५ में ६ से १४ बर्श तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निरूषुल्क षिक्षा की व्यवस्था की गयी है तथा ८६ वें संषोधन द्वारा २१ (क) में प्राथमिक षिक्षा को सब नागरिको का मूलाधिकार बना दिया गया है। यह १ अप्रैल २०१० को जुम्म–कष्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागु हुआ।

मुख्य प्रावधान

१. ६ से १४ साल के बच्चों को मुफ्त षिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी.

२. निजी स्कूलों को ६ से १४ साल तक के २५ प्रतिषत गरीब बच्चे मुफ्त पढ़ाने होंगे। इन बच्चों से फीस वसूलने पर दस गुना जुर्माना होगा। षर्त नहीं मानने पर मान्यता रद्द हो सकती है। मान्यता निरस्त होने पर स्कूल चलाया तो एक लाख और इसके बाद रोजाना १० हजार जुर्माना लगाया जायेगा।

३. विकलांग बच्चों के लिए मुफ्त षिक्षा के लिए उम्र बढ़ाकर १८ साल रखी गई है।

४. बच्चों को मुफ्त षिक्षा मुहैया कराना राज्य और केंद्र सरकार की जिम्मेदारी होगी.

५. इस विधेयक में दस अहम लक्ष्यों को पूरा करने की बात कही गई है। इसमें मुफ्त और अनिवार्य षिक्षा उपलब्ध कराने, षिक्षा मुहैया कराने का दायित्व राज्य सरकार पर होने, स्कूल पाठ्यक्रम देष के संविधान की दिषानिर्देषों के अनुरूप और सामाजिक जिम्मेदारी पर केंद्रित होने और एडमिषन प्रक्रिया में लालफीताषाही कम करना षामिल है।

६. प्रवेष के समय कई स्कूल केपिटेषन फीस की मांग करते हैं और बच्चों और माता–पिता को इंटरव्यू की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। एडमिषन की इस प्रक्रिया को बदलने का वादा भी इस विधेयक में किया गया है। बच्चों की स्क्रीनिंग और अभिभावकों की परीक्षा लेने पर २५ हजार का जुर्माना। दोहराने पर जुर्माना ५० हजार।

७. षिक्षक ट्यूषन नहीं पढ़ाएंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थावली

1 अग्रवाल, उमेष चन्द्र (2011), उच्च षिक्षा–उच्च क्षमता व गुणवत्ता के नए प्रयास एवं संभावनाएं, प्रतियोगिता दर्पण।

2 आलम, सैय्यद इमरान (2009), षिक्षा की गुणवत्ता में प्रो0 यषपाल, ऐतिहासिक साक्ष्य, हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका

3 ओबराय, एम. (2010), भारत संक्षिप्त विवरण, नई दिल्ली : न्यू विषाल पब्लिकेषन्स।

4 कौल, लोकेष (2004), षैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास

पब्लिसिंग हाऊस प्रा0 लि0।
5 गुप्ता, विशेष, षिक्षा के स्तर पर बढ़ते सवाल, दैनिक जागरण, 20 अक्टूबर 2011, p.10
6 गिरी, कुसुम (1997), षिक्षा का समाजषास्त्र, नई दिल्ली : रावत पब्लिकेषन्स।
7 चतुर्वेदी, उमेष, उच्च षिक्षा में ब्राजील से भी नीचे, अमर उजाला, 19 मार्च 2012, p. 12
8 चतुर्वेदी, बादल (2011), उत्तर प्रदेष 2011, लखनऊ : भारत बुक सेन्टर।
9 दोसी, प्रवीण (2005), षिक्षा संकाय में शोध अध्ययन पर प्रकाष व गुणवत्ता का रास्ता, भारतीय आधुनिक षिक्षा, 23 (3) जनवरी 2005।
10 पाण्डेय, के.पी. (1991), षैक्षिक अनुसंधान की रूपरेखा, मेरठ : अमिताभ प्रकाशन।
11 पंडित, कुसुम (2004), उच्च षिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के षैक्षिक उन्मुखीकरण पर दूर–संचार माध्यमों के प्रभावों का अध्ययन, अप्रकाषित पी–एच.डी. शोध प्रबन्ध, षिक्षा विभाग, महात्मा गांधी काषी विद्यापीठ।
12 भटनागर, ए.बी. तथा भटनागर, अनुराग (2011), षैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, मेरठ : आर. लाल बुक डिपो।
13 मुखर्जी, सुब्रत, कौषल के बिना विश्व रैंकिग में फिसड्डी हैं देष के विश्वविद्यालय, अमर उजाला, बुधवार 2 नवम्बर, 2011, p. 8
14 राय, पारसनाथ (2008), अनुसंधान परिचय, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।
15 विलानिलम, जे.बी. (2012), भारत में षिक्षा व्यवस्था : 1947–2012, योजना, p.12
16 सुखिया, एस.बी. (1966), षैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व, कोलकाता : कलकत्ता प्रकाशन।
17 सिन्हा, प्रभात कुमार (2006), ब्रिटिष भारत में षिक्षा का विकास, प्रतियोगिता दर्पण, 33 (6)

◆◆◆

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

डॉ0 राजीव पाल
असि0 प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ0प्र0)

सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य के जीवन में समाज का बड़ा महत्त्व है। समाज से पृथक मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। वह समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही विकास करता है। जन्म लेने के पश्चात् अनेक प्रकार की परिस्थितियों का मनुष्य सामना करता है। अपने जीवन में अनेक अनुभवों का संचय कर लेता है। ये अनुभव ही उसे कुछ न कुछ सिखाते व शिक्षित करते जाते हैं तथा अपने आस–पास के परिवेश से सामंजस्य स्थापित करता जाता है। यह कहा जा सकता है कि मनुष्य व समाज पूर्ण रूप से एक–दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। मनुष्य समाज का निर्माता व संरक्षक होता है और शिक्षा द्वारा ही मनुष्य व समाज दोनों का विकास सम्भव है। शिक्षा मनुष्य के जीवन में परिवर्तन लाती है और उसका व्यवहार परिश्कृत होता जाता है। शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपना सामाजिक विकास करता है, सभ्यता व संस्कृति की ओर निरन्तर उन्मुख होता है और जीवन की पूर्णता को उपलब्ध होता है। ''शिक्षा जीवन है और जीवन शिक्षा है। शिक्षा को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता, शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया कहा गया, जिसका अर्थ है कि शिक्षा समाज में, समाज के लिए तथा समाज द्वारा संचालित एक प्रक्रिया है। समाज के अस्तित्व पर ही शिक्षा का अस्तित्व निर्भर करता है। शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा की प्रकृति, शिक्षा के उद्देष्य, समाज के स्वरूप, समाज की प्रकृति और समाज के उद्देष्य पर निर्भर करते हैं और इसीलिए यह कहा जा सकता है शिक्षा और समाज को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। माग्रेट मीड ने कहा है कि शिक्षा वह सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक नवषिषु मानव समाज का पूर्ण सदस्य बनता है।''[1]

मनुष्य शिक्षा द्वारा ही अपने आन्तरिक गुणों का विकास करता है व अपने ज्ञान व कला–कौषल में वृद्धि करता हुआ समाज का उपयोगी सदस्य बनता है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की षिक्ष् धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना व सिखाना। इस प्रकार शिक्षा ग्रहण करना ही शिक्षा है। शिक्षा को अंग्रेजी में एजूकेशन अथ एडुकेशन शब्द से मानी जाती है जो दो शब्दों से मिलकर बना है। ''यह दो शब्द हैं ए (म) तथा डूको (क्नबव)। इसमें

ए का अर्थ है अन्दर से (वनज वि) तथा (क्नबव) का अर्थ है आगे बढ़ाना (ज्व स्मेंकवितजी)। अतः एडुकेशन का अर्थ हुआ अन्तर्निहित शक्तियों का बाहर की ओर विकास करना अर्थात् जो आन्तरिक है उसे बाहर की ओर प्रस्फुटित करने की प्रक्रिया ही एडुकेशन अथवा शिक्षा है। एडुकेशन शब्द का जन्म एडुसीयर शब्द से भी माना जाता है। जिसका शाब्दिक अर्थ टु एडुकेट अर्थात् शिक्षित करना, पढ़ाना शिक्षण–प्रशिक्षण देना इत्यादि है।''[2]

संसार के विभिन्न विद्वानों, विचारकों तथा शिक्षाषास्त्रियों ने 'शिक्षा' के अर्थ पर अलग–अलग मत प्रकट किये हैं। कुछ विद्वान 'शिक्षा' का अर्थ अन्तःशक्तियों को बाहर लाने की प्रक्रिया के रूप में ग्रहण करते हैं, कुछ 'शिक्षा' का अर्थ है बालक के व्यक्तित्व के विकास के रूप में ग्रहण करते हैं, कुछ शिक्षा का अर्थ वातावरण से अनुकूलन मात्र मानते हैं और कुछ शिक्षा को मुक्ति नैतिक उत्थान एवं भौतिक उन्नति का साधन मानते हैं।

सुकरात कहते हैं कि – ''शिक्षा का अर्थ है संसार के उन सर्वमान्य विचारों को प्रकाष में लाना जो व्यक्ति के मस्तिष्क में स्वभावतः निहित होते हैं।'' प्लेटों का कहना है कि – ''शिक्षा एक शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक विकास की प्रक्रिया है।'' अरस्तू का यह स्पष्ट कहना है कि 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना।'' जॉन लॉक कहते हैं कि ''पौधे कृशि द्वारा विकसित होते हैं और मनुष्य शिक्षा से।'' रूसो बड़ी संक्षिप्त परिभाषा देते हैं कि ''जीवन ही शिक्षा है।''

हरबर्ट कहते हैं कि ''अच्छे नैतिक चरित्र का विकास ही शिक्षा है।''

कमेनियस कहते हैं कि – ''शिक्षा सम्पूर्ण मानव का विकास है।'' सम्पूर्ण परिभाषाओं को देखने के बाद जब हम मिल्टन की परिभाषा पर विचार करते हैं तो शिक्षा का वास्तविक अर्थ निकल कर आता है, वह बड़े ही सार्थक शब्दों में कहते हैं कि – ''सम्पूर्ण एवं उदार शिक्षा वह है जो व्यक्ति को अपने निजी एवं सार्वजनिक कर्त्तव्यों को शान्ति एवं संकटकालीन, दोनों ही परिस्थितियों में न्याय एवं उदारतापूर्वक कार्य करने का कौषल प्रदान करें।''[3]

इस दृश्टिकोण को ध्यान में रखते हुये यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि शिक्षा वह विकासषील पक्ष है जो सभी विचारधाराओं एवं दृश्टिकोण को सामान्य और व्यावहारिक मूल्यों की खोज कर व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को उसके अनुरूप अग्रसर करती है। मानव का सम्पूर्ण जीवन जी

शिक्षा–काल है। वह जीवन में जिन व्यक्तियों और प्राणियों के सम्पक्र में आता है, उनसे कुछ न कुछ सीखता रहता है।

डम्बिल लिखते हैं कि – ''शिक्षा के विस्तश्त अर्थ के अन्तर्गत वे सभी प्रभाव आते हैं जो व्यक्ति पर उसकी उत्पत्ति होने से मृत्यु तक की यात्रा के बीच में प्रभाव ड़ालते हैं।''[4]

यदि हम देखें तो सम्पूर्ण संसार शिक्षा का केन्द्र है। संसार में रहकर हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं। वह सब शिक्षा है। शिक्षा के लिए कोई निश्चित स्थान व क्षेत्र नहीं होता, संसार ही शिक्षा का क्षेत्र है। जड़, प्रकृति और जीव–जन्तु भी मानव को शिक्षा प्रदान करते हैं। राजा ब्रूस को अपने जीवन की महानतम् शिक्षा एक मकड़ी से प्राप्त हुयी, चीटियाँ हमें निरन्तर कार्यरत होने की शिक्षा प्रदान करती हैं। मधुमक्खी गुण–संचय की ओर ध्यान आकृश्ट कराती हैं। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य संसार की परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है और अपने को वातावरण के अनुकूल बनाता है। शिक्षा अन्तर्निहित शक्तियों के विकास को प्रोत्साहित करके व्यक्ति को उन्नति के मार्ग पर ले जाती है।

शिक्षा के विभिन्न अर्थ व अनेक परिभाषाओं के अध्ययन के उपरान्त शिक्षा की जो अवधारणा निर्मित होती है, वह प्रक्रिया के रूप में प्राप्त होती है। शिक्षा एक प्रक्रिया है जो वैयक्तिक व सामाजिक विकास करती है जो आन्तरिक को बाहर लाती है।

''प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जॉन ड्यूवी अपनी पुस्तक 'जनतंत्र और शिक्षा' में शिक्षा को जीवन का ही एक रूप मानते हैं। उनके अनुसार ''शिक्षा जीवन के लिए एक आवश्यकता है, शिक्षा एक सामाजिक कार्य है, शिक्षा एक निदेशक है, शिक्षा वृद्धि है, शिक्षा एक तैयारी है, शिक्षा शक्तियों का प्रकटीकरण है, शिक्षा शक्तियों का पुनर्निर्माण है।''[5]

अतः शिक्षा को एक प्रक्रिया एक साधन के रूप में स्वीकार किया गया, जो किसी न किसी उद्देष्य को ध्यान में रखकर की जाती है। सम्पूर्ण या व्यापक अर्थ में शिक्षा ही जीवन है व जीवन ही शिक्षा है। अतः यह एक अनवरत् चलने वाली प्रक्रिया है जो जीवन के उद्देश्यों की उपलब्धि का मार्ग प्रषस्त करती हैं। यह वह प्रक्रिया है जो शैषवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक चलती रहती है अर्थात् शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे मानव अपने आप को आवश्यकतानुसार भौतिक, रासायनिक और आध्यात्मिक वातावरण

के अनुकूल बना लेता है।

मानवाधिकारों से अभिप्राय ऐसे अधिकारों से है जिन्हें पाने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति का है। ऐसे अधिकार विश्व के सभी देशों की संस्कृतियों और समाजों में किसी न किसी रूप में हमेशा से विद्यमान रहे हैं। ये अधिकार हैं – बीमारी और बेरोजगारी, संरक्षा, शोषण से मुक्ति, सामाजिक पारिवारिक सुरक्षा, विचारों की अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता, स्वास्थ्य की देखभाल का अधिकार अन्याय के विपरीत न्याय पाने का अधिकार आदि। मानवाधिकारों की संकल्पना की पृश्ठभूमि में यह मूल धारणा है कि सभी व्यक्ति समान हैं और इसीलिये धर्म, मूल वंश, रंग और लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। सभी के साथ समान व्यवहार आपेक्षित हैं। मानवाधिकारों का मूल आधार व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा की रक्षा करना है। पृथ्वी पर मानव के जन्म एवं विकास के साथ ही मानव अधिकारों का जन्म भी प्रारम्भ हो गया क्योंकि इन अधिकारों के अभाव में न तो मानव गरिमामय जीवन–यापन कर सकता है और न ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हो सकता है। मनुष्य समाज में व्यक्तियों के समूह के साथ निवास करता है। अतः मानव अस्तित्व के लिये समाज में सहयोग से रहना आवश्यक है। मानवाधिकार एवं कर्त्तव्य का जन्म इसी तथ्य से होता है।

''व्यक्ति का स्वाभाविक विकास तभी सम्भव है जब उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जैसे – रोटी, कपड़ा, मकान आदि। समाज में सभी नर–नारी समान रूप से भागीदार हैं और एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। सभी को अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता और दैहिक सुरक्षा का अधिकारी होना चाहिए। अतः बिना किसी भेदभाव के व्यक्ति के अधिकारों को कानून द्वारा संरक्षित और सुनिश्चित किये जाने चाहिए।''[6]

आवश्यकता है कि अधिकारों को सही एवं स्पष्ट रूप से परिभाशित किया जाय। 25 सितम्बर, 1926 ई0 के पूर्व तक मानव के इन अधिकारों की बात राष्ट्रीय विषय तक ही सीमित थी किन्तु आज यह अन्तर्राष्ट्रीय विषय हो गया है।

''अपने मूल रूप में मानवाधिकार प्रत्येक मानव को जन्म के साथ प्राप्त होने वाले वे अधिकार हैं जिनका मनुष्य उपयोग करके समाज में रहते हुए अपने व्यक्तित्व का समपूर्ण विकास करने में सफल होता है। उनकी इन अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व समाज और राज्यों पर होता है। अतः

मानवाधिकार प्रत्येक मानव को प्रदत्त की जाने वाली वे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा मनुष्य मानवोचित जीवन जी सके।

''सर्व भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पष्यन्तु, मा कष्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।''

अर्थात् सब सुखी हों किसी को भी दुःख न हो, का उद्घोश करने वाले मानवाधिकार की अवधारणा वास्तव में विदेशों की देन है। इंग्लैण्ड में इसे मेग्नाकार्य, अमेरिका में 'बिल ऑफ राइट्स' तथा फ्रांस में मानवाधिकार घोषणा–पत्र के नाम से जाना जाता है। ''मानवाधिकार की विश्वव्यापी घोषणा में कहा गया है कि – ''मानवाधिकार तथा मानवीय गरिमा का सम्मान विश्व में स्वतंत्रता न्याय एवं शान्ति का अधिकार है।''[7]

मानवाधिकार वे मांगे हैं जो हमें अपनी पूर्ण क्षमता के अनुरूप विकास करने तथा अपनी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य बनाती हैं। ये वे आदर्श हैं जो अच्छे मानव अस्तित्व के लिए मानवता का सम्मान, आदर, न्याय, सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिए बढ़ती हुयी मांग पर आधारित है। सभी मानवाधिकारों का आवश्यक तथ्य यह है कि उनका सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति के साथ है और वे मानव परिवारों के सभी सदस्यों के जन्म–सिद्ध अधिकार हैं जिनका हनन नहीं किया जा सकता। इसी मानवाधिकार के संरक्षण की आवधारणा के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक मानव को देश, धर्म, लिंग जाति के भेदभाव के बिना मूलभूत अधिकार प्राप्त करने के लिए मानवाधिकारों की घोषणा का एक वृहत प्रयास किया गया।

अगर हम मानव अधिकारों की पृष्ठभूमि की बात करें तो यह कोई नई अवधारणा नहीं है। इसकी अतीत की गहराइयों में छिपी है। वैदिक युग में मानवाधिकार का अस्तित्व था। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही मानवाधिकार का वर्णन मिलता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे वाक्यों में मिलता है। ये वाक्य ही मानवाधिकार के प्रमाण हैं।

मानवाधिकार के घोषणा–पत्र के अनुच्छेद–26 में कहा गया है कि 'प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को निर्धारित किया गया –

(1) शिक्षा प्रारम्भिक तथा मूल स्तरों पर निःशुल्क होगी तथा अनिवार्य होगी।

(2) प्राविधिक तथा वृत्तिक शिक्षा को सामान्यतः उपलब्ध कराया जायेगा और उच्च शिक्षा को योग्यता के आधार पर सभी के लिए उपलब्ध कराने के लिए समृद्ध बनाया जायेगा।

(3) शिक्षा को मानव व्यक्तित्त्व के समग्र विकास के लिए निर्देशित किया जायेगा।

(4) शिक्षा को मानवाधिकारों तथा शैक्षिक स्वतंत्रताओं के सम्मान के लिए समृद्ध बनाया जायेगा।

(5) शिक्षा सभी राष्ट्रों, प्रजातियों या धार्मिक समूहों में साझेदारी, सहिश्णुता तथा मित्रता को बढ़ाने के लिये कार्य करेगी।

(6) शिक्षा शान्ति स्थापना के लिए विभिन्न क्रियाकलापों का संगठन करेगी।

(7) अभिभावकों को अपने बच्चों के लिए उपयुक्त शिक्षा का चयन करने का अधिकार होगा।

''मानव–अधिकार सार्वजनिक घोषणा में प्रस्तावना के साथ 30 अनुच्छेद हैं। प्रस्तावना में ''मौलिक मानवाधिकारों, मानव की महत्ता तथा मनुष्य एवं स्त्री के समान अधिकारों की समानता में निश्ठा व्यक्त की गयी है।'' इस घोषणा–पत्र के अनुच्छेद–1 व 2 सामान्य हैं और अनुच्छेद 3 से 21 नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों तथा अनुच्छेद 22 से 27 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित है। अनुच्छेद 28 से 30 उपसंहारात्मक है।''[8]

मानवाधिकार एक विशेष सुविधा है जो समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसलिए जिन लोगों को शैक्षिक अवसरों का अभाव रहा है, उनको विषिश्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करके समान स्तर पर लाने के प्रयासों पर जोर दिया गया है।

प्रारम्भिक स्तर से ही मानवाधिकारों का ज्ञान दिया जाना आवश्यक है क्योंकि बाल्यावस्था में अच्छे संस्कारों का प्रभाव अधिक गहराई से पड़ता है। बालक को अच्छा व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे अच्छा ज्ञान दिया जाये। विद्यालय का वातावरण अच्छा और आकर्शण होना चाहिए। शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए। बच्चों को विद्यालय जाना तब अच्छा लगता है जब वहाँ का वातावरण प्यार, अपनत्व और प्रोत्साहन से भरा हो और विद्यालय के सभी लोग बच्चों की आवश्यकता पर ध्यान दें। अधिगम प्रक्रिया को समृद्ध और सफल बनाने की दृश्टि से पाठ्यचर्या में

लोक कला, लोक गीत, गायन, क्ले–मॉडलिंग तथा खेलों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा की विषय–वस्तु और प्रक्रिया को विभिन्न विषयों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है, जैसे – विज्ञान, विज्ञान शिक्षण के द्वारा बालक में उन योग्यताओं और मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए। जैसे – अन्वेशण की भावना, सश्जनात्मकता, वस्तुनिश्ठता, प्रश्न पूछने का साहस और सौन्दर्यबोध की संवेदनषीलता आदि।

उच्च स्तर पर छात्रों में मानसिक परिपक्वता आ जाती है। अच्छे एवं बुरे की परख, समाज की परिस्थितियों एवं उसकी समस्यों आदि से मानव परिचित हो जाता है।

''भारत में शिक्षा मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्यों के राज्य मानवाधिकार आयोग और मानवाधिकारों के न्यायालयों के गठन के लिये भारत की संसद ने सन् 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया।''[9]

उच्चतम न्यायालय में मानवाधिकरों के आयाम को और अधिक बढ़ा दिया – जैसे मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध अधिकार, जीविकोपार्जन का अधिकार, आश्रय प्राप्त करने का अधिकार, निःशुल्क विविध सहायता प्राप्त करने का आधिकार अवैध गिरफ्तार तथा मृत्यु के विरुद्ध सुरक्षा आदि।

मानवाधिकारों की रक्षा व्यक्ति की विचारधारा, मनोवृत्तियों और नियमों के पालन में निहित है। मानवाधिकारों की रक्षा के लिये कानून आवश्यक है और कानूनों का पालन प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। दूसरों के विचारों को समझना और उन पर विचार करना आवश्यक है। धार्मिक सहिश्णुता, बंधुत्व की भावना सामाजिक दृढ़ता के प्रति वफादारी आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा बालक के मस्तिष्क का प्रशिक्षण होता है, उसकी क्षमताओं का विकास होता है। उसमें दूसरे लोगों के साथ सम्पक्र और क्रिया करने की क्षमता का विकास होता है। शिक्षा इसीलिए आवश्यक है। शिक्षा से ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव है।

हम वियना सम्मेलन के शब्दों में कह सकते हैं कि ''राष्ट्रों को निरक्षरता को दूर करने के लिए कार्य करना चाहिए और शिक्षा को मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए निर्देशित करना चाहिए और मानवाधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के लिए सम्मान विकसित करना चाहिए।''[10]

आज देश में जो साम्प्रदायिक और जातीय भेदभाव पनप रहा है, उसे शिक्षा का ह्रास, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए एक गम्भीर चुनौती है। यदि व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है, समाज में सत्य, प्रेम सहकार, सहयोग, सहानुभूति, सहिश्णुता, बन्धुत्व का वातावरण पैदा करना है और राष्ट्र की रक्षा करनी है, उसकी एकता और अखण्डता बनाये रखनी है व आर्थिक समृद्धि लानी है तो मूल्यों के महत्त्व को प्रत्येक व्यक्ति को न केवल समझना होगा वरन् उन्हें अपने जीवन में उतारना भी होगा। मूल्यों के महत्त्व को समझने और उन्हें आत्मसात करने में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है।

देश का प्रत्येक नागरिक मानव अधिकारों और अपने कर्त्तव्यों को भली–भाँति समझे और उचित शिक्षा प्राप्त कर सके तो इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि भारत विश्व के विकसित देशों के मध्य अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लेगा। मानव अधिकार शिक्षा के साथ ही मानवीय कर्त्तव्यों की जानकारी शिक्षा के माध्यम से सम्यक् रूप से प्रदान की जानी चाहिए, जिससे कि हम देश को प्रगति के पथ पर और अधिक तेजी से अग्रसर करने में सफल हो सकें। यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी तरह के अधिकार कर्त्तव्यों के बिना अपना महत्व खो देते हैं, इसलिए भारतीय परिस्थितियों में मानव अधिकार शिक्षा प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। मानवाधिकार भारतीय संस्कृति साहित्य, शिक्षा व जीवन में रचे–बसे हैं। वास्तव में ये हमारी संस्कृति का एक अपृथकरणीय हिस्सा है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सम्यक् रूप से मानव अधिकार प्राप्त होने चाहिए और इसके हेतु शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि मानव जाति विध्वंसकारी प्रवृत्ति से मुक्त होकर रचनात्मक कार्यों में लग सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

शिक्षा के सामाजिक आधार, ड़ॉ0 गिरीश पचौरी, पृष्ठ सं0 1

शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, ड़ॉ0 निधि बाला, डॉ0 अमिता बाजपेयी, ड़ॉ0 सावित्री शुक्ला, पृ0सं0 2

शिक्षा : अर्थ आवश्यकता, क्षेत्र एवं कार्य, डॉ0 सीताराम जायसवाल, पृष्ठ सं0 4, 5

शिक्षा : अर्थ, आवश्यकता क्षेत्र एवं कार्य, ड़ॉ0 सीताराम जायसवाल, पृष्ठ सं0 6

शिक्षा के दार्षनिक एवं सामाजिक आधार, ड़ॉ0 निधि बाला, ड़ॉ0 अमिता बाजपेयी, ड़ॉ0 सावित्री शुक्ला, पृश्ठ सं0 6

◆◆◆

शिक्षक एवं व्यावसायिक नैतिकता

बृजनिवास[1] एवं डॉ0 के0 के0 चौधरी[2]
[1]शोधार्थी, [2]प्रोफेसर, शिक्षा एवं सहबद्ध विज्ञान संकाय, एम0जे0पी0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

व्यवसायिक नैतिकता

शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षकों को प्रमुख स्थान दिया गया है। आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार बच्चों को पषुत्व से मनुष्यत्व और मनुष्यत्व से देवत्व की ओर की ले जाने का कार्य शिक्षक द्वारा किया जाता है। बालकों के लिये चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक विकास के लिये योग्य सच्चरित्र एवं अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। फ्रोबेल के अनुसार, विद्यालय रूपी बाग में शिक्षक रूपी माली विद्यार्थी रूपी पौंधों के विकास विकास में सहयोग देते है। मानवता की दृष्टि से शिक्षकों को शिक्षण किये जाने वाले बिषयों और अपने विद्यार्थियों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए शंकराचार्य की दृष्टि से गुरू के दो कार्य है शिष्य को व्यवसायिक जीवन के लिये तैयार करना और उसे आध्यत्मिक जीवन की प्राप्ति करने योग्य बनाना।

कार सैण्डर्स (सक्सेस, निभ्रा, मोहन्ती 2016) अब व्यवसाय के लिये विशिष्ट बौद्धिक अध्ययन तथा प्रशिक्षण आवश्यक है इसका मुख्य उद्देश्य कौषल तथा दक्षता प्राप्त करना है। आज वैष्वीकरण एवं प्रतिस्पर्धा के युग में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत से परिर्वतन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्यों में शिक्षार्थियों की रूचि और आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन हो रहे हैं। अतः शिक्षा और शिक्षक की धारणओं में नित्य परिवर्तन हो रहा है अतः शिक्षक के रूप में योग्य एवं व्यवसायिक परिपक्व नैतिक रूप से सुदृढ़ एवं मूल्यों से मुक्त जो गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हो यह समस्त गुण शिक्षक को व्यवसायिक रूप सुद्रढ बनाते है शिक्षकों में दृढ़ विश्वास आत्मनिर्भरता विद्यार्थियों के प्रति स्नेह और सदैव अपना सहयोग प्रदान करने की क्षमता से युक्त व्यक्तित्व ही अच्छा शिक्षक हो सकता है।

प्रस्तावना

आधुनिक समाज मे अनेक व्यवसायों का विकास हो चुका है जैसे इंजीनियरिग, पत्रकारिता, चिकित्सा ,एकाउन्टेसी आदि शिक्षण को भी एक

व्यवसाय के रूप में स्वीकार किया जाता है। टी0एम0 स्टोनेट के अनुसार शिक्षण न केवल एक व्यवसाय है बल्कि यह सभी व्यवसायों की जननी है अतः शिक्षण व्यवसाय को सभी व्यवसायो से श्रेष्ठ माना जाता है। शिक्षण को सामाजिक एवं नैतिक कार्य माना जाता है एक व्यवसाय के रूप में शिक्षक सामाजिक प्रतिबद्धता समाज की आवश्यताओं दीर्घकालीन प्रशिक्षण ,समयबद्धता शिक्षा संगठन, संप्रेषण कौशल व्यवसायिक प्रतिबद्धता एवं उत्साह से परिपूर्णता शिक्षक में आवश्यक है।

विद्यालय के सभी औपचारिक एवं अनौपचारिक साधन तब तक व्यर्थ है जब तक विद्यालय के शिक्षकों के गुण उच्चतम विचारधारा वाले न हो शिक्षक प्रक्रिया के विभिन्न तत्वों पाठय–वस्तु द्रष्य श्रव्य सामाग्री सीखने के नियम मूल्यांकन आदि को तत्व तक प्रभावशाली सिद्ध नहीं किया जा सकता।

जब तक इनका प्रयोग करने वाला शिक्षक अनेक गुणों से परिपूर्ण न हो।

A poor teacher tells
An Average teacher explains
A good teacher demonstrates
And a great Teacher Inspires

अध्यापक के गुण– अध्यापकों में निम्नलिखित गुण अपेक्षित है

व्यक्तिगत गुण व्यावसायिक गुण सामाजिक गुण

एक कुशल अध्यापक में जिन व्यक्तिगत गुणों की अपेक्षा की जाती है वे निम्नलिखित है–

1. स्पष्टवादिता– शिक्षक का प्रमुख उद्देश्य शाष्वत सत्य को प्राप्त करना है वैज्ञानिक किसी भी सिद्धान्त को तब तक सत्य नहीं मानता जब तक वस्तुनिष्ठ तरीके से उसको सत्यापित नहीं कर लेता।

2. आत्म विश्वास एवं धैर्यवान– शिक्षक को आत्मविश्वास से पूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है अध्यापको को परिस्थितियों के साथ समायोजन आत्म विश्वास का प्रदर्शन करते हुये करना चाहिये कभी–कभी अध्यापक के सामने ऐसी समस्याएं आ जाती है जिसका हल उसने पहले नहीं खोजा होता है ऐसी स्थिति में धैर्य के साथ कार्य करना चाहिए।

3. सकारात्मक दृष्टिकोण– अध्यापक को अपने विषय के प्रति सकारात्मक एवं रचनात्मक दृष्टि कोण अपना ना चाहिये अध्यापक के दृष्टिकोण का सीधा प्रभाव बालकों के सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष विशेषज्ञों के योगदान का परिचय देकर उनमें सही दृष्टिकोण का विकास करता है ।

4. साधन सम्पन्नता– जिन अध्यापको में साधन सम्पन्नता का गुण होता है वे अवश्यकतानुसार सही समय पर विभिन्न साधनों व अन्य सहायक सामग्री की व्यवस्था कर अपने शिक्षण को सफल व प्रभावषाली बना सकता है साथ ही आध्यापक में सृजनात्मकता व कल्पना शक्ति भी शक्ति भी होनी चाहिये।

5. धैर्यवान एवं सहिष्णु– अध्यापक को विद्यार्थियों को कोई तथ्य या सूत्र समझाते समय बहुत ही धैर्यपूर्वक काम लेना चाहिये विद्यार्थियों को अनावश्यक रूप से ड़ाटना नहीं चाहिये, बल्कि सहिष्णुता युक्त व्यवहार दृष्टिगत होना चाहिये।

व्यावसायिक गुण

1. ज्ञान संचय की इच्छा– प्रोफेसर यंग के अनुसार अध्यापक को यह अनुभव करना चाहिये कि शिक्षण एक विकासशील कार्य है प्रसिद्ध वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविद के लेख एवं आख्या भी प्रोत्साहन एवं सीख देने वाले होते है अध्यापक को सदैव अध्यपनशील होना चाहिये।

2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण – शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण हो आज वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र में किया जा रहा है शिक्षा का क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं है अतः प्रभावी शिक्षण हेतु शिक्षक का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिये।

3. प्रभावशाली नेतृत्व– हर व्यवसाय का नेतृत्व उस व्यवसाय का मुख्य व्यक्ति करता है समूह के सदस्यों को समझकर उन्हे प्रभाव में लेकर उनका मार्ग दर्शन करता है प्रभावषाली नेतृत्वकर्ता होने पर उस व्यवसाय तथा उस व्यवसाय के सदस्यों का बहुत विकास हो जाता है।

4. प्रतिस्पर्धा– प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण समूह के सदस्यों को अत्यधिक प्रभावित करता है स्वस्थ प्रतिस्पर्धा समूह के सदस्यों में कार्य क्षमता कार्य शक्ति आत्मविश्वास में बृद्धि करने के साथ साथ उत्पादन में बृद्धि करती है।

5. व्यवसाय की संस्कृति– हर व्यवसाय कीअपनी संस्कृति होती है तथा अपनी अपनी परम्पराए होती है जिसके अनुसार उस व्यवसाय की कार्यविधियां परिवर्तित होती रहती है व्यवसायिक संस्कृति सदस्यों के व्यक्तिगत अथवा सामूहिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है।

6. समाजिक दबाब एवं समरूपता– किसी भी व्यवसाय की सदस्यता सामाजिक समरूपता को विकसित करती है सामाजिक दबाब उसके सदस्यों को एक निश्चित दिशा तथा निश्चित ढंग से चलने कार्य करने के लिये प्रेरित करते हैं जिससे समूह के सदस्यों के व्यवहारों में समरूपता आती है और व्यवसायिक समरूपता समूह के सभी सदस्यों को निश्चित व्यवहार करने हेतु प्रेरित करती है।

7. मैत्री एवं सहयोग का प्रसार एक ही व्यवसाय में रहकर उस व्यवसाय के सदस्य सहयोग तथा मैत्री का प्रसार भी करते हैं उसमें आपस में सहयोग व भावनात्मक लगव भी हो जाता हैतथा एक दूसरे के निकट आने लगते है।

8. विद्यार्थियों के साथ अध्यापक के सम्बन्ध– सभी आध्यापको को विद्यार्थियों के साथ प्रेम और स्नेहपूर्ण व्यवहार बिना किसी लिंग, जाति, स्तर, धर्म, भाषा और जन्म स्थान के आधार पर करना होगा। विद्यार्थियों को उनके सामाजिक नैतिक ,धार्मिक भावनात्मक,शारीरिक व मानसिक विकास एवं चरित्र में सहयोग देना होगा।

अपनी सम्पन्नता संस्कृति व अनेकता में एकता के लिये विद्यार्थियों में प्रशंसा व गौरव की भावना का विकास करना।

सम्मान के साथ सभी विद्यार्थियों के साथ बोलना व व्यवहार करना होगा तथा उनसे सम्बन्धित गोपनीय जानकरी को अपने तक सीमित रखना बोलचाल वेशभूषा और व्यवहार के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के सम्मुख आदर्श उदाहरण बनना होगा।

9. माता–पिता के साथ अध्यापकों के सम्बन्ध– अध्यापक को माता पिता के साथ सहयोगी व मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने होगें, घर और स्कूल में सहज सम्बन्ध बालकों की शैक्षणिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में विभिन्न विचार धाराओं पर अमल करना।

माता पिता द्वारा प्रदान की गई घरेलू या व्यक्तिगत जानकारियों को गोपनीय रखना माता पिता पर स्थापित विश्वास में कमी लाने वाले

व्यवहार न करना स्कूल सुधार कार्यक्रम में माता पिता को भागीदार बनाना और शिक्षक अभिभावक संघों के निर्माण हेतु प्रयत्न करना।

10. समाज और राष्ट्र के साथ अध्यापक के सम्बन्ध– सामाजिक ढांचे का अहम भाग होने के कारण शिक्षक को धर्म क्षेत्र भाषा विभिन्न विचारों को एकीकृत करने के लिये कार्य करना होगा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार हेतु सामुदायिक साधनों का प्रयोग करते हुये राजनैतिक प्रवेष से वचना होगा। विद्यालय नामाकंन बालिकाओं कमजोर वर्गो में शिक्षा की सुलभता हेतु भावनात्मक विकास करना होगा।

11. अपने सहयोगियो व व्यावसायिक संगठनो से सम्बन्ध– शिक्षको को शैक्षिक व व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने हेतु सेवा कालीन शिक्षा सेमीनार, कार्यषालाओं, कान्फ्रेस में सक्रिय भाग लेना चाहिये, विद्यालय में विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन सामुदायिक सहयोग के आधार पर करना चाहिये। विद्यार्थियों अध्यापकों व अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में अपने सहयोगियों से सदैव मधुर व्यवहार करना चाहिये।

12. साथी अध्यापकों एवं प्रधानाचार्य के साथ सम्बन्ध– शिक्षण एक सामूहिक गतिविधि आधारित कार्य है अतः महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय साथी शिक्षको की राय लेनी चाहिये शिक्षकों के साथ कार्य में मैत्रीपूर्ण व्यवहार मार्गदर्शन और कर्तव्य अनुशासन में स्वयं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना मूल्यांकन व निरीक्षण पर अध्यापको द्वारा पुर्नविचार हेतु सहमति प्रस्तुत करना प्रधानाचार्य एवं साथी शिक्षकों का विश्वास प्राप्त करने के पश्चात् ही अच्छे शिक्षक के रूप में कार्य सम्भव है

13. अन्य व्यावसायिक संगठनों के साथ सम्बन्ध– प्रत्येक अध्यापक को शिक्षकों संध का सक्रिय सदस्य रहने के साथ–साथ सदस्यता शुल्क भी नियमित रूप से जमा करना चाहिये व्यवसायिक संघ की सेवाओं को अपना कर्तव्य समझकर करनाएवं संघ की एकता व दृढ़ता हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये शिक्षक संघ का उद्देश्य शिक्षकों की समस्याओं का समाधान होना चाहिये।

14. शिक्षण व्यवसाय सम्बन्धी नैतिकता व प्रतिबद्धता– शिक्षक को शिक्षण कार्य के दौरान नियमित समय की पाबंदी उचित शिक्षण विधियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करते हुये पूर्ण तैयारी के साथ तथा नियमित कार्यो की जांच करना चाहिये।

निष्कर्ष

शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षकों का ध्यान गुणवत्ता युक्त शिक्षण पर होना चाहिये शिक्षकों का परम कर्तव्य है कि वे अपने शिक्षार्थियों के सर्वोत्तम विकास पर ध्यान केन्द्रित करें शिक्षकों को अपने व्यवसाय संस्थान,सहकर्मियों अधीनस्थों बालक बालिकाओं अभिभावकों व समाज एवं व्यवसायिक संगठनों के साथ उचित व्यवहार करना चाहिये शिक्षकों में जिन व्यवसायिक गुणों की अपेक्षा की जाती है वे स्पष्टवादिता धैर्यशीलता सकारात्मक दृष्टिकोण साधन सम्पन्नता ज्ञान संचय की इच्छा,प्रभव शाली नेतृत्व सामाजिक समरूपता मैत्री भावना सहयोगी प्रवृत्ति विद्यार्थियों अभिभावकों के साथ अच्छे सम्बन्ध राष्ट्रवादिता नैतिकता व्यवसायिक परिपक्वता एवं प्रतिबद्धता की प्रबल भावना हो शिक्षकों को अपने कार्य की जबाबदेही के साथ गम्भीरता पूर्वक अपने उत्तदायित्वों का निर्वहन करना चाहिये अतः सफल शिक्षण हेतु व्यवसायिक नैतिकता और उसका सही ढंग से प्रयोग करना शिक्षक की प्राथमिकता हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

सक्सेना, एम0 (2004) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार आगराः साहित्य प्रकाशन

सिन्हा जे0 एस0 (2012) नीतिशास्त्र, मेरठः जय प्रकाशनाथ पब्लिकेशन

भटनागर, ए0वी0 एवं मीनाक्षी , अनुराग (2014) शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन, मेरठः आर0 लाल0 पब्लिकेशन

लाल आर0बी0 एवं फलोड (2015) शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग, मेरठः आर0 लाल0 पब्लिकेशन

सक्सेना, आर0एन0एवं मिश्रा, मोहन्ती (2016) अध्यापक शिक्षा, मेरठः आर0 लाल0 पब्लिकेशन

विष्नोई ,उन्नति (2016) गणित शिक्षण, मेरठः आर0 लाल0 पब्लिकेशन

जौहरी डी0, (2016) शिक्षा में नवाचार, मेरठः आर0 लाल0 पब्लिकेशन

श्रीवास्तव रोमा (2018) सामाजिक अध्ययन शिक्षण मेरठ आर0 लाल0 पब्लिकेशन

https:medium.com/workethics / 5 professional ethics sunday dsauze 28 aug 2017

karma shrepa importance of professional ethics for tesachers desesan Paper e issn no 25549916 volume 4 issue 3 march 2018

◆◆◆

भारतीय संविधान एवं मानव मूल्य

मोहम्मद नासिर
असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर–244901 (उ०प्र०)

साराँश

संविधान किसी राष्ट्र की शासन व्यवस्था के संचालन हेतु नियमों और कानूनों का संग्रह होता है। बिना संविधान के शासन प्रणाली के न्याय संगत होने की कल्पना नहीं की जा सकती, संविधान नागरिकों के अधिकारों, उनकी स्वतंत्रता एवं सरकार की सत्ता के मध्य संतुलन स्थापित करता है। प्रत्येक संविधान का अपना एक दर्शन होता है जिसमें उस देश की शासन प्रणाली के लक्ष्यों, उद्देश्यों आदि का वर्णन होता है। संविधानिक शासन का अर्थ सीमित शासन से है जिसमें मानव मूल्यों, व्यक्ति की गरिमा एवं जनसम्प्रभुता को प्रमुख स्थान दिया जाता है।

भारतीय संविधान का भी अपना एक दर्शन है और यह दर्शन प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल्यों से प्रेरित है। इसमें न केवल मानव स्वतंत्रता, भाईचारा, पर्यावरण संरक्षण, विविधता में एकता, जैसे मूल्यों का वर्णन है बल्कि "बसुधैव कुटुम्बकम" की महत्तवूर्ण अवधारणा भी है।

संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य, नीति निदेशक तत्व एवं अन्य प्रावधानों में व्यापक रूप से मानवीय मूल्यों का वर्णन है। मूल्यों के संरक्षण हेतु मौलिक अधिकारों की व्यवस्था है। संविधान के मूल्यों की रक्षा एवं उन्हे अक्षुण्य बनाए रखने हेतु शक्तिषाली न्यायपालिका को व्यापक अधिकार दिये गए हैं। यदि संसद का कोई कानून या कार्यपालिका का कोई आदेश मौलिक अधिकारों एवं संविधान की मूलभूत संरचना को चोट पहुँचाता है तो न्यायपालिका उस कानून या आदेश को रद्द कर सकता है। संविधान के लागू होने के बाद से उसमें 103 संषोधन किये जा चुके हैं जो बदलते समय की आवश्यकतानुसार जरूरी थे। संविधान में प्राचीन भारतीय मूल्यों के साथ सार्वभौमिक वैष्विक मूल्यों जैसे न्याय, करूणा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यशीलता, ईमानदारी आदि को भी पर्याप्त महत्व दिया गया है। भारतीय संविधान में दिये गए पर्याप्त मूल्यों एवं उनके संरक्षण के उपायो के कारण संविधान को सामाजिक न्याय का दस्तावेज भी कहा

जाता है।

भारतीय संविधान एवं मानवीय मूल्य

संविधान : किसी देश के शासन को चलाने के लिए कुछ नियमों, कानूनों, सिद्धान्तों आदि की आवश्यकता पड़ती है, उन सब के एक स्थान पर संग्रह को संविधान कहते हैं। संविधान देश की सर्वोच्च विधि होता है। देश में प्रचलित अन्य सभी विधियों का संविधान के अनुरूप होना आवश्यक है। संविधान न केवल देश की शासन व्यवस्था को चलाने का माध्यम है वरन इसके द्वारा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा एवं मानव गरिमा का संवर्द्धन किया जाता है। संविधान देश के सत्ताधारियों को अनुशासन में रखकर लोकतांत्रिक प्रणाली को शक्तिषाली बनाता है। इससे राजव्यवस्था एवं लोगो के अधिकारों के मध्य सामंजस्य स्थापित होता है। संविधान राष्ट्र के शासन के आधार के साथ उसका चरित्र भी होता है।

मानवीय मूल्य : मूल्य वे कसौटियाँ हैं जिनके आधार पर किसी भी व्यवहार, नियम अथवा कार्य के सही या गलत का फैसला किया जाता है। मूल्य समाज सापेक्ष होते हैं अर्थात अलग–अलग समाज मूल्यों की कसौटियों का निर्धारण अपनी जरूरतों एवं परिस्थितियों के अनुसार करता है। किंतु कुछ मूल्य सर्वव्यापक एवं शाष्वत हैं जैसे न्याय, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, करूणा आदि।

मानवीय मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं एवं लक्ष्य हैं जिन्हे मानव सामामजिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सीखता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अभिलाषाएं बन जाती है। मानवीय मूल्य व्यक्ति व समाज के व्यवहारों को नियंत्रित व सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानवीय मूल्यों की परंपरा आदि समाजो एवं धर्मो में भी देखी जा सकती है तथा मूल्यों की यह परंपरा तदन्तर आज भी जारी है।[1]

भारतीय संविधान : भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ के कुछ समय बाद ही संविधान सभा स्थापित करने की माँग उठने लगी थी। लोग चाहते थे कि वह अपने राजनीतिक भविष्य का निर्माण स्वयं करें। 1895 में बाल गंगाधर तिलक द्वारा “स्वराज्य विधेयक” तैयार किया गया जिसमें संविधान के दर्शन की झलक मिलती है। एम. एन. राय ने संविधान सभा के विचार का प्रतिपादन औपचारिक रूप से किया। 1922 में गांधी जी ने कहा कि “भारतीय संविधान भारतीयों की इच्छानुसार ही होगा।”[2] इसके बाद कांग्रेस अधिवेशनो में अनेक बार संविधान सभा के गठन की माँग रखी गयी।

अन्ततः कैबिनेट मिशन योजना के तहत भारत का संविधान बनाने हेतु संविधान सभा का गठन जुलाई 1946 में हुआ। इसमें कुल 389 सदस्य थे। संविधान सभी की अनेक समितियों के 2 वर्ष 11 माह 18 दिन के कठोर परिश्रम के बाद भारत का संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया एवं 26 जनवरी 1950 को लागू कर दिया गया। इस दिन भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया।

भारतीय संविधान एवं मानवीय मूल्य : हर संविधान की तरह भारतीय संविधन का भी अपना दर्शन एवं मानवीय मूल्य है। भारतीय संविधान के दर्शन की पहली झलक पण्डित जवाहर लाल नहरू द्वारा 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा में प्रस्तुत "उद्देश्य प्रस्ताव" में मिलती है।[3] इस उद्देश्य प्रस्ताव मे भावी भारतीय सरकार के कार्यों एवं उद्देश्यों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। लम्बी गुलामी के बाद भारत स्वतंत्र हुआ था एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अंग्रेज सरकार द्वारा लोगो पर जो अत्याचार हुए उससे शिक्षा लेकर संविधान में नागरिकों के अधिकारों एवं मानवीय मूल्यों को पर्याप्त संरक्षण दिया गया।

भारतीय संविधान में मानवीय मूल्य प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों नीति निर्देषक तत्वों एवं संविधान के अन्य उपबन्धों में देखे जा सकते हैं जो भारत की प्राचीन संस्कृति एवं "बसुधैव कुटुम्बकम"के सिद्धान्त के अनुकूल हैं। साथ ही इसमें गांधीवादी मूल्यों एवं मानव अधिकारों के विश्व व्यापी सिद्धान्तों का भी समावेष है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में निहित मानवीय मूल्य : संविधान की प्रस्तावना का प्रारम्भ हम भारत के लोग से होता है जिसका अर्थ है कि सत्ता का स्रोत देश के नागरिक हैं अर्थात संप्रभुता आम जनता में निहित है। प्रस्तावना में वर्णित "समाजवाद" शब्द अपने आप में एक बढ़ा मानवीय मूल्य है। जिसका अर्थ है कि उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण किसी वर्ग विशेष के प्रति न हो और न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं तक सबकी पहुँच सुनिश्चित हो। प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द को सम्मिलित कर भारत को ऐसा राष्ट्र बनाने की संकल्पना है जो सभी धर्मों को समान समझता है और राष्ट्र का अपना कोई धर्म नहीं है। विविधता में एकता भारत पंथनिरपेक्षता के मूल्य द्वारा ही स्थापित कर पाया है जो राष्ट्र की महत्वपूर्ण शक्ति है।

प्रस्तावना में भारत को "लोकतांत्रिक गणराज्य" घोषित किया गया है जिसका अर्थ है। कि सभी सत्ता अन्ततः जनता के हाथ में है। साथ ही राष्ट्राध्यक्ष आनुवांशिक न होकर जनता द्वारा ही अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित

होगा एवं भारत का कोई भी नागरिक राष्ट्रपति बन सकता है। न्याय को यूरोपीय परम्परा के अन्तर्गत उच्चतम मानवीय मूल्यों में रखा गया है। सुकरात एवं प्लेटो ने न्याय को सर्वोच्च मानवीय मूल्य बताया है। प्रस्तावना में भी सर्वोच्च मानवीय मूल्य न्याय का वर्णन है। न्याय को व्यापक रूप से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय में बताया गया है और धर्म, जाति, वर्ग, लिंग आदि के भेदभाव का निषेध किया गया है।

स्वतंत्रता अत्यंत महत्तवपूर्ण मानवीय मूल्य है जो प्रस्तावना में वर्णित है। इसमें विचार, अभिव्यक्तिः, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का वर्णन है जो सभ्य समाज एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए अति महत्वपूर्ण है।

मानव समानता एवं व्यक्ति की उन्नति हेतु प्रतिष्ठा एवं अवसर की समान्ता जैसे मूल्य भी प्रस्तावना का भाग है।

मानवीय सम्बंधो हेतु "भाईचारा" एक अत्यंत महत्वपूर्ण मूल्य है जिसका वर्णन प्रस्तावना में राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता सुनिश्चित करने वाले महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में किया गया है।

इस प्रकार भारतीय संविधान की प्रस्तावना अत्यंत महत्वपूर्ण मूल्यों को समेटे हुए है।

भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार में मानवीय मूल्य : मौलिक अधिकार मूल्य भी है और मानव मूल्यों के रक्षक भी। भारतीय संविधान के भाग–3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों का वर्णन है। मूल संविधान में 7 मौलिक अधिकार थे किन्तु 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को समाप्त कर दिया गया।[4] वर्तमान में भारतीय नागरिकों के 6 मौलिक अधिकार हैं। जिनमें विभिन मूल्य समाहित हैं।

समानता के अधिकार के तहत विधि के समक्ष समानता का वर्णन है जिसमे नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त भी निहित है। समानता महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य है और इस मूल्य का विस्तार से वर्णन अनुच्छेद 14 से 18 तक है। इसमें धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर किसी भी विभेद का प्रतिषेध किया गया है। सभी नागरिकों को अवसर की समानता दी गई है। साथ ही छुआछूत जैसी बुराई को अपराध घोषित किया गया है।

स्वतंत्रता मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए परम आवश्यक है। संविधान प्रत्येक नागरिक को विचार अभिव्यक्ति, सभा करने, व्यापार करने, भ्रमण एवं निवास की स्वतंत्रता देता है। संविधान मानव स्वतंत्रता एवं राष्ट्र सुरक्षा में सामंजस्य स्थापित करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं के अनुसार व्यतीत करने का अधिकार है। संविधान बच्चों एवं महिलाओं को शोषण से बचाने की भी व्यवस्था करता है।[5] बालश्रम पर रोक लगाकर संविधान बच्चो के लिए मूल्यपरक शिक्षा की व्यवस्था करता है।

धर्म की स्वतंत्रता आज के समय का महत्वपूर्ण मूल्य है। संविधान देश के प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने एवं प्रचार करने की स्वतंत्रता देता है। संविधान अल्पसंख्यकों की शिक्षा एवं संस्कृति को संरक्षित करने की भी व्यवस्था करता है जो की देश विविधता का सम्मान करने जैसे मूल्य का उदाहरण है। सभी नागरिको के लिए न्याय पाने हेतु संविधानिक उपचारो के अधिकार की भी व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार मौलिक अधिकार महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों को संरक्षण प्रदान करते हैं।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों में निहित मानवीय मूल्य संविधान के नीति निदेशक तत्वों में उच्च स्तरीय मानवीय मूल्यों को समाहित किया गया है। लोक कल्याण की अभिवृद्धि, समाज के दुर्बल वर्गो के हितों की रक्षा, बच्चों एवं स्त्रियों की गरिमा, निषुल्क विधिक सहायता, काम की न्यायसंगत एवं मानवोचित दशाओं का निर्माण, लोक स्वास्थ्य में सुधार, पर्यावरण संरक्षण, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों को नागरिकों को उपलब्ध कराना राज्य का कर्तव्य बताया गया है जो कि मानव कल्याण एवं बसुधैव कुटुम्बकम की प्राचीन भारतीय संस्कृति के ही अनुकूल है।

मौलिक कर्तव्यों में निहित मानवीय मूल्य मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था नहीं थी, किन्तु 1976 में 42 वें संविधान संषोधन द्वारा मौलिक कर्तव्यों को अनुच्छेद "51क" में शामिल किया गया। मूल कर्तव्य वास्तव में भारतीय नागरिकों में विभिन्न मानवीय मूल्यों को समाहित कराने का प्रयास है। मूल कर्तव्यों में नागरिकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे उच्च आदर्शो को ह्दय में सजोएं। भ्रातृत्व की भावना। स्त्रियों का सम्मान, पर्यावरण संवर्द्धन, मानववाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, प्राणिमात्र के प्रति दया भाव जैसे उच्च स्तरीय मानव मूल्यों की नागरिकों के लिए व्यवस्था की गई है।

इन सब के अतिरिक्त संविधान के अन्य उपबन्धो में भी मानवीय मूल्यों की व्यवस्था की गई है। संविधान ने सामाजिक न्याय हेतु आरक्षण, सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं लोगो की वास्तविक स्वराज्य देने हेतु पंचायती राज, निष्पक्ष न्याय हेतु शक्तिषाली न्यायपालिका बिना किसी भेदभाव के व्यस्क मताधिकार तथा लोक कल्याण एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु संविधान संषोधन की व्यवस्था की है। इस प्रकार भारतीय संविधान अपने में उच्चतम मानवीय मूल्यों को समेटे हुए है।

संदर्भ

The Laxicon नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिरूचि : एन. एन. ओझा पेज नम्बर – 48

भारतीय शासन एवं राजनीति– पुखराज जैन एवं बी. एल. फाड़िया पेज नम्बर – 01

Inroduction to the constitution of India – Dr. Durga Das Basu : Page No - 20

भारतीय राजव्यवस्था : ड़ॉ0 लक्ष्मीकांत पेज नम्बर – 56

Drishti Current Affairs today February 2020-page No 157

◆◆◆

मूल्य–शिक्षा और राजनीति

ड़ा0 सुनीता गुप्ता[1] एवं संदीप कुमार[2]

असि0 प्रोफेसर, [2]शाोधार्थी, आर0एस0के0डी0 महाविद्यालय, जौनपुर (उ०प्र०)

''मेरा उद्देश्य पूर्णतः धार्मिक रहा है। मैं यदि अपने को मानव–जीवन से न मिला देता, तो मैं धार्मिक व्यतीत नहीं कर सकता था और ऐसा मैं तब तक नहीं कर सकता था, जब तक मैं राजनीति में भाग नहीं लेता।– (महात्मा गाँधी)

गाँधी जी के इस कथन से स्पष्ट है कि राजनीति में भाग लेना एक पवित्र कर्त्तव्य है। यदि कोई धर्म से भी जुड़ा रहना चाहता है तो उसके लिये राजनीति एक अच्छा माध्यम है वर्तमान में स्वार्थपूर्ण राजनीति के कारण राजनीति शब्द में एक व्यंग का पुट रहता है। राजनीति का वास्तविक अर्थ है– देश का कल्याण, मानव का कल्याण, सभी लोग सुखी हों, सब एक दूसरे के बारे में सोचें। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को देश और समाज के प्रति जागरूक होना चाहिये। यह बात भारत के संदर्भ में एकदम उचित है क्योंकि भारत में शासन की लोकतन्त्रात्मक पद्धति अपनायी जाती है और लोकतन्त्रात्मक पद्धति में जागरूक जनता की आवश्यकता है। ड़ॉ0 आर्शीवादम ने भी कहा है कि ''जागरूक और सचेत लोकमत स्वस्थ प्रजातन्त्र की प्रथम आवश्यकता है।'' आज संसार के अधिकांश देशों में लोकतन्त्र का ही समर्थन किया जाता है। लोकतन्त्र शासन व्यवस्था ने राजा और प्रजा के भेद को समाप्त कर दिया है। जान0 स्टुअर्ट मिल के अनुसार, ''लोकतन्त्र अन्य किसी शासन प्रणाली की तुलना में राष्ट्रीय चरित्र के अच्छे और उच्चतर रूप का विकास करता है।'' लोकतन्त्र की उत्तमता को बताते हुये सी0डी0 बर्न्स ने भी लिखा है, ''हर शासन शिक्षा की एक पद्धति होती है, किन्तु सबसे अच्छी शिक्षा आत्म शिक्षा है, इसलिये सबसे अच्छा शासन स्वषासन है और पर ही लोकतन्त्र है।''

लोकतन्त्र में जनता का, जनता के लिये और जनता के द्वारा शासन होता है। इस प्रकार उक्त शासन–व्यवस्था में जनता को अधिक महत्व दिया गया है। इसीलिये मानव अस्तित्व को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति राजनीति से दूर नहीं रह सकता है राजनीति से प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग व समुदाय प्रभावित होता है। सरकारी कर्मचारी, शिक्षक विद्यार्थी, व्यापारी, पर्यटक, साधु समाज, गृहणियाँ, मजदूर, अमीर व गरीब सभी श्रेणी के व्यक्ति राजनीति से पूर्णतः प्रभावित हुये हैं।

यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की राजनीति का उदाहरण है जिससे प्रत्येक व्यक्ति का दैनिक जीवन प्रभावित हुआ है।

मूल्य–शिक्षा में राजनीति की भूमिका

उक्त कथनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मूल्यपरक राजनीति में भाग लेने के लिये शिक्षा अनिवार्य है। राजनीति और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। शिक्षित और जागरूक व्यक्ति ही अच्छा राजनीतिज्ञ हो सकता है। प्राचीन समय में जो भी महान राजनीतिज्ञ हुये हैं, उन्होंने अपनी नीतियों के प्रसार के लिये शिक्षा को ही माध्यम बनाया, जैसे– हिटलर गुणों के ऐच्छिक व्यवहार परिवर्तन के लिये शिक्षा पर बल देता था, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से वह अपनी विचारधारा को बच्चों के मस्तिष्क में भरना चाहता था। उसने शिक्षा के माध्यम से एक विशेष प्रकार का राजनीतिक समाजीकरण किया। जर्मनी में बच्चों को सबसे पहले यही सिखाया जाता था कि उनकी पहली निष्ठा राज्य के प्रति है। स्कूलों में राज्य की विचारधारा के अनुकूल ही पाठ पढ़ाये जाते थे। हिटलर ने युवा संगठनों के माध्यम से युवकों का राजनीतिक समाजीकरण करवाया। उसने राष्ट्रीय समाजवादी नीतियों के अनुसार उन्हें नैतिक, आध्यात्मिक, शारीरिक शिक्षा दी। प्लेटो का भी विचार था कि शिक्षा पद्धति द्वारा आदर्श राज्य के लिये दार्शनिक शासक, संरक्षकों तथा सैनिकों की प्राप्ति हो सकेगी। इस प्रकार प्लेटो ने भी शिक्षा पर बल दिया था। प्लेटो की तरह अरस्तू भी मानता है कि शिक्षा का एक राजनीतिक उद्देश्य होता है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये वह राज्य नियन्त्रित शिक्षा–योजना प्रस्ताविक करता है। भारतीय विचारकों में कौटिल्य सर्वप्रथम विचारक थे। कौटिल्य एक सच्चा ब्राह्मण था तथा तत्कालीन समय की परम्पराओं के अनुसार उसका पेषा अध्यापन कार्य था। उनके समय में शायद ही कोई ऐसा शासक या मन्त्री रहा हो, जो इस महापुरूष आचार्य का शिष्य न रहा हो या उनकी नीति और व्यक्तित्व से प्रभावित न हुआ हो। एक अध्यापक होते हुये भी वे राजनीति से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुये थे और भारत की सम्पूर्ण राजनीति का केन्द्र बिन्दु बन गये थे। वर्तमान राजनीति में भाग लेने वाले बड़े नेताओं में से अनेक नेता पूर्व में शिक्षक रह चुके हैं।

उक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश को राजनीति उसके नागरिकों की शिक्षा पर निर्भर करती है। यह शिक्षा मूल्यपरक हो तो राजनीति में भी मूल्यों की प्रतिष्ठा होगी। कॉलेज, विश्वविद्यालय, चर्च या ट्रेड यूनियन, मन्दिर या संगीत परिषद, कविता,

नाटक या निबन्ध सभी के माध्यम से राजनीतिक विचारधाराओं का छिपा या खुला प्रचार सम्भव है। समाचार–पत्र खबरों और विचारों को इस तरह प्रस्तुत कर सकते हैं जिससे किसी निश्चित मूल्यपरक विचारधारा के पक्ष में जनमत को प्रभावित किया जा सके।

शिक्षा के माध्यम से सामान्य नागरिक राजनीतिक सूचना, ज्ञान, विचार, समालोचना आदि से परिचित होता है, प्रमुख राजनीतिक प्रश्नों के प्रति जागरूक होता है फिर उचित ढंग से राजनीतिक सहभागिता के लिये तैयार होता है। यही राजनीतिक सहभागिता उसकी राजनीतिक रूचि कहलाती है। राजनीतिक रूचि लोकतन्त्र की सफलता के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

राजनीतिक मूल्य और छात्रवर्ग

प्रायः यह देखा गया है कि समाज में देश में यदि कोई भी परिवर्तन होता है या कोई नया नियम या कानून बनता है या कानून में संषोधन होता है तो विद्यार्थियों में राजनीतिक रूचि के कारण सबसे पहले प्रतिक्रिया होती है। समाज के अन्य लोग भी युवा वर्ग की तरफ देखते हैं अर्थात वह चाहते हैं कि विद्यार्थी वर्ग हस्तक्षेप करें। यदि कोई परिवर्तन अनुचित होता है तो वह युवा वर्ग से उसके विरूद्ध आन्दोलन या कार्यवाही की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि विद्यार्थी वर्ग समाज का एक महत्वपूर्ण वर्ग होता है। उस समय युवा वर्ग तन, मन से किसी भी कार्य को करने में समर्थ होता है। उसमें इस समय एक विशेष प्रकार की शक्ति होती है। विद्यार्थी वर्ग नागरिकों जैसे– मन्दिर मस्जिद विवाद, नकल अध्यादेश मेडल आयोग, सरकार की आरक्षण नीति आदि के निराकरण हेतु छात्रों द्वारा किये गये प्रयास प्रमाणित करते हैं कि किसी भी राष्ट्र के राजनीतिक परिवर्तनों के लिये छात्रों का उत्तरदायित्व सबसे अधिक होता है। राष्ट्र नेताओं की जीवनियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन भी प्रमाणित करते हैं। कि वह सभी विद्यार्थी जीवन से ही राजनीति से सम्बन्धित थे। अत' निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि छात्रों की राजनीतिक गतिविधियाँ एवं रूचियाँ उनके अध्ययन काल में ही विकसित होने लगती हैं तथा शिक्षण संसाीओं की व्यवस्था से भी प्रभावित होती हैं। राजनीतिक मूल्यों का विकास इसी विद्यार्थी जीवन से होता है। टॉयलर का कथन है कि ''भविष्य निर्माण की मूर्त कल्पना ही शिक्षा कर स्रोत है''। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा व्यक्ति समाज के विकास का मुख्य संघटक है। शिक्षा के माध्यम से हमारा प्रयत्न जहाँ एक ओर व्यक्तित्व के विकास एवं चरित्र–निर्माण का होता है,

वहीं दूसरी ओर ऐसे समाज की रचना करना भी होता है, जो समात, सहिष्णुता एवं सह–अस्तित्व पर आधारित हो। इस प्रकार शिक्षा का सम्बन्ध सीधा मानव जीवन के विकास से है। मानव विधाता की सर्वोत्तम कृति है तथा मानव जीवन को समुचित रूप से परिष्कृत करके सार्थक बनाने का सशक्त माध्यम शिक्षा है। शिक्षा मनुष्य को अपने वातावरण के अनुसार ढालने, सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने, स्वस्थ जीवकोपार्जन करने तथा जीवन के उत्कृष्ट मूल्यों के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि एक सुशिक्षित व्यक्ति विविध रूपों में देश एवं समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

लोकतंत्र में शिक्षा का बहुत अधिक महत्व है। शिक्षा ही उसके आधार को दृढ़ और शक्तिशाली बनाती है। लोकतंत्र सामान्य व्यक्ति में श्रद्धा रखता है। प्रजातांत्रिक शासन पद्धति में जनता के शिक्षित होने से जहाँ एक ओर प्रजातंत्र को दृढ़ आधारशिला मिलती है, वहीं दूसरी ओर लोगों को अपने दायित्व के निर्वहन की सामर्थ्य भी प्राप्त होती है। अतएव, संविधान में शिक्षा का समुचित प्रावधान किया गया है। ऐसा होने पर शिक्षा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकेगी, जिसके कारण मानव की आन्तरिक और ब्राह्य क्रियाएँ परस्पर सम्बद्ध रह सकेंगी और दोनों एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ सकेंगी। आज तो दोनों के बीच कोई तक्रसंगत सम्बन्ध ही नहीं है। आज धर्म मनुष्य से कहता है कि वह केवल विश्वास के आधार पर कार्य करे। उदाहरण के लिए यन्त्र कला अथवा व्यापार अथवा राजनीति जैसे विज्ञानों का अन्य विज्ञान आत्मा के विज्ञान से कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं है। केवल धर्म अपने अधिकार के कारण, न कि विवेक के कारण, जो सम्बन्ध स्थापित कर सका है, उतना ही है। कहीं–कहीं विरल मामलों में किसी भी व्यवसाय में लगा हुआ कोई आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अनुभवों में भौतिकता और आध्यात्मिक के बीच सामंजसय स्थापित कर सकता है, किन्तु आज के जमाने में इस तरह के व्यक्ति को झक्की ही माना जायेगा।

राजनीति और अध्यात्म

गाँधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता की दिशा में ले जाने की आवश्यकता पर जोर दिया था परन्तु व्यावहारिक रूप में वे राजनीति और अध्यात्म के बीच कोई तक्रसंगत सम्बन्ध स्थापित करने में सफल न हो सके। गांधी के भारत में राजनीति का शिक्षण आध्यात्मिक शिक्षण से भिन्न माना जाता है और दोनों के बीच कोई तक्रसंगत पारस्परिक सम्बन्ध नहीं

माना जाता। आज कोई नहीं जानता कि ''आध्यात्मिक'' राजनीति का स्वरूप कैसा होगा और आज के युग में उसको व्यवहार मैं कैसे लाया जा सकेगा। आज के युग में सबसे प्रमुख और विषिष्ट वस्तु है– राष्ट्रसत्ता जो कि मेरी दृष्टि से मानवता के लम्बे इतिहास में बनी भयंकर संस्था है। इस देश में शिक्षित जनमत का यही हाल है। वैसे यही स्थिति अन्यत्र भी है। इसके चलते राजनीति का कोई अभ्यासी यदि अपने आध्यात्मिक ज्ञान के अनुकूल चलने का प्रयत्न करता है तो वह अपने कार्य के लिए अयोग्य और अव्यावहारिक माना जायेगा। इसका मतलब यह नहीं कि कोई भी चतुर राजनीतिक नैतिकता या आध्यात्मिकता की बात नहीं करता है, परन्तु हर राजनीतिज्ञ की, हर राष्ट्र के नैतिकता या आध्यात्मिकता भिन्न–भिन्न होती है। आध्यात्मिकता से राजनीति का सम्बन्ध–विच्छेद आष्चर्यजनक है। कारण जैसा कि रिचर्ड क्रॉसमैन ने कहा है– ''यदि हम गहराई से विश्लेषण करें तो सभी राजनैतिक निर्णयों के मूल में नैतिक धरातल रहता है।'' मानव व्यक्तित्व का यह विभाजन उस समय तक जारी रहेगा जब तक ''नैतिक मनुष्य और अनैतिक समाज'' के बीच का पारस्परिक विरोध सामंजस्यपूर्ण ज्ञान के द्वारा दूर नहीं कर दिया जायेगा और उसी ज्ञान के आधार पर शिक्षण नहीं दिया जायेगा। जब तक नैतिकता और आध्यात्मिकता की परलोकवादिता बनी रहेगी तब तक समाज के व्यावहारिक जीवन से उनका सम्बन्ध विच्छेद रहेगा, जिससे मानवीय हितों में मानव के विकास में भारी बाधा पहुँचती रहेगी।

वर्तमान राजनीतिक मूल्यों हेतु सुझाव

पाठयक्रमों में आदर्श नेताओं की जीवनियों को शामिल किया जाये।
जनप्रतिनिधियों के लिए पात्रता परीक्षा होनी चाहिए।
उत्तम चरित्र को ही भागीदारी का अवसर प्रदान करना चाहिए।
राजनीति में युवा और महिलाओं की अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व होना चाहिए।
समय–समय पर राजनैतिक मूल्यों पर संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए।

◆◆◆

मानवीय मूल्यों पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव – एक भौगोलिक सामाजिक विश्लेषण

डॉ0 अजय विक्रम सिंह

असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय रजा स्ना0महा0रामपुर

मानवीय मूल्य

मूल्य मानव सोच उसके व्यवहार एवं कार्य में मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। कर्मो के सम्पादन के क्रम में उत्पन्न होने वाले द्वंद्वों के निराकरण का आधार यही मानवीय मूल्य है। दूसरे मूल्य वे कसौटियां व्यवहार के पैमाने या मानदण्ड है, जिनके आधार पर अच्छे–बुरे, वांछित–अवांछित, सही–गलत, एवं कारणीय अकरणीय का निर्णय किया जाता है।

मानवीय मूल्यों का वास्तविक आशय उन मूल्यों से है, जो जीवन को शुभ एवं चारित्रिक उत्थान में सहायक है। न्याय, स्वतन्त्रता समानता, देशभक्ति, अस्तेय, दया, करूणा, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, सौन्दर्य, प्रेम, मैत्री, शील, शुभत्व आदि महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य है। ये मूल्य स्वस्थ एवं सन्तुलित सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है। मूल्यों के माध्यम से व्यक्ति एवं सम्पूर्ण समाज के व्यवहार को निर्देषित किया जाता है। मानव मूल्य, मानव सोच, व्यवहार एवं कार्य में मार्ग दर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

मानवीय मूल्यों पर प्रभाव

देशकाल और परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र एवं समाज के मूल्यों में अन्तर होता है। एक समाज में जिन मूल्यों का महत्व सर्वोपरि होता है। दूसरे समाज में वे महत्वहीन हो जाते हैं। पश्चिमी देशों और पूर्वी देशों के मूल्यों में आकाश पाताल का अन्तर है। उसी प्रकार उष्ण कटिबन्धीय एवं शीतोष्ण और शीत कटिबन्धीय देशो के समाजों में व्याप्त मानवीय मूल्यों भी बहुत अधिक विभिन्नता देखने को मिलती है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक इत्यादि सभी कारकों का मानवीय मूल्यों पर स्पष्टतया प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

मानवीय मूल्य और भौगोलिक प्रभाव

मूल्य निर्धारण में हालांकि सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहरो का

महत्वपूर्ण योग होता है परन्तु भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्रभावों से भी मानवीय मूल्य अछूते नहीं रहतें, क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियां भी मानवीय मूल्यों के निर्धारण में बहुत ज्यादा प्रभाव ड़ालती है। अक्षांशीय स्थिति, देशान्तरीय स्थिति जलवायु, उच्चावच, अपवाह प्रणाली, समुद्र से क्षेत्र की दूरी एवं जल मिट्‌टी तथा खनिज इत्यादि कारक भौगोलिक परिस्थितियों के अन्तर्गत आते है।

1.**मानवीय मूल्यों पर अक्षांशीय स्थिति का प्रभावः–** अक्षांशीय स्थिति तथा विस्तार एक बहुत महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति है जिसका मानवीय मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। 0(शून्य) डिग्री अक्षांश (जिसे भूमध्य रेखा या विषुवत रेखा कहते है) से लेकर 90 डिग्री अक्षाशों (उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवों) तक मानवीय मूल्यों में विभिन्नता एवं विधिवता देखने को मिलती है। भूमध्यरेखा के निकटवर्ती के अमेजन बेसिन और अफ्रीका महाद्वीप के कांगो बेसिन में पिग्मी जनजाति फैली है तथा द0 पूर्व एशियाई महाद्वीप में सेमांग और यह सभी जनजातियां खानाबदोश और आखेटक जीवन व्यतीत करती है जिनमें दया, परोपकार और अंहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों का पूर्णतया अभाव मिलता है। पिग्मी जनजाति तो इतनी हिंसक है कि वह सबसे बड़े स्थलीय जीव हाथी का भी बड़ी निदर्यता से मार देते है तथा पिग्मी समाज में बहु विवाह का प्रचलन होने से शारीरिक भोग विलास जैसे चारित्रिक अवगुणों को बढ़ावा मिलता है। वहीं सेमांग जनजातियां समाज में भी हिंसा क्रूरता का बढ़ावा होने से मानवीय मूल्यों का पतन देखने को मिलता है

सैन्टिनल जरावा, सेमांग जैसे जनजातीय समाज में नरबलि, पशु–बलि, हत्या जैसे जघन्य अपराधों की बहुलता नैतिक मूल्यों को कमजोर करते हैं।

कक्र रेखा (23 1/2डिग्री उत्तर) एवं मकर रेखा 23 1/2डिग्री (दक्षिण) के आस पास क्षेत्रों में अनुकूल जलवायु, के कारण दया परोपकार, प्रेम, अंहिंसा, लोकतन्त्रीय आर्दश, सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों की बहुलता देखने को मिलती है। विश्व के सर्वाधिक सभ्य और मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत समाज इन्हीं अक्षांशीय भागों में विस्तृत है। भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, ब्राजील, मालद्वीप, पुर्तगाल, पाकिस्तान, द0अफ्रीका, ग्रेट ब्रिटेन, जैसे सभी देशो में लोकतंत्र स्थापित है जो अन्तराष्ट्रीय शांन्ति अंहिंसा दौर सामाजिक सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देते है 60 डिग्री उत्तरी अक्षांशों से लगभग 80 डिग्री उत्तरी अक्षांशो में टुण्ड्रा प्रदेशों में एस्किमों समाज विस्तृत है जो कि एक आखेटक समाज है। इन अक्षांशीय भागों में अतिशीतल जलवायु की विधमानता है। जहां लगभग 10 महीने कठोर शीतऋतु के कारण एस्किमों में साहस जैसो मानवीय मूल्य कूट कूट कर भरा है। एस्किमों एक मांसाहारी जनजाति है जो व्हेल शाक्र जैसी बड़ी बड़ी मछलियों का शिकार कर अपना जीवन यापन करती है चूँकि एस्किमों लोग लगातार 10 माह वर्फ से बने घर इग्लू में एकान्त रूप से पड़े रहते है जिस कारण सामाजिकता, परोपकार जैसे मानवीय मूल्यों का अभाव मिलता है। लेकिन वृद्व एस्किमों में अपने परिवार के युवा एवं बच्चों के प्रति त्याग की भावना बहुत प्रबल रूप में पायी जाती है। जब एस्किमों परिवार में कठोर शीतऋतु में भोजन कम पड़ने लगता है तो बृद्ध एस्किमों चुपचाप अपने परिवार को सोता छोड़कर इग्लू से बाहर निकल जाता है और बाहर शून्य से 40 डिग्री नीचे तापमान होने के कारण शीघ्र उसकी मृत्यु हो जाती है।

2.**मानवीय मूल्य और देशान्तरः–** देशान्तरों के आधार पर विश्व पश्चिमी गोलार्द्ध एवं पूर्वी गोलार्द्ध में विभाजित है। पश्चिमी गोलार्द्ध में विकसित मानव सभ्यता को पाश्चात्य मानव संस्कृति तथा पूर्वी गोलार्द्ध में विकसित मानव सभ्यता को पूर्वी सभ्यता संस्कृति के नाम से जाना जाता है। 0 डिग्री देशान्तर के पश्चिमी भाग के पाश्चात्य समाज में आधुनिकता मानवीय मूल्यों पर हावी है। यहां के समाज में विवाह को एक समझौता माना जाता है। लिव इन रिलेशनशिप ओपन सैक्स जैसी अश्लीलता इस समाज के मानवीय मूल्यों को कमजोर करते हैं परन्तु लौगिक समानता, सामाजिक समानता जैसे मानवीय मूल्य पाश्चात्य संस्कृति में उच्च स्तर पर है। जबकि पूर्वी संस्कृति वाले देशों जैसे भारत में विवाह को एक संस्कार माना जाता है जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध माना जाता है। पूर्वी संस्कृति में ज्यादातर

शाकाहारी, सात्विक, अंहिंसावादी जैसे मानवीय समाज में विकसित है।

3. **मानवीय मूल्य और जलवायुः–** जलवायु भी मानवीय मूल्यों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक है। जलवायु की विभिन्नता और विधिवता के परिणाम स्वरूप विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों में मानवीय के मूल्यों में अन्तर पाया जाता है। शीत जलवायु प्रदेशों के निवासी साहसी होते है किन्तु राजनैतिक संगठन तथा शासन करने में पिछड़े रहते है जबकि एशिया के निवासी साहस में कमी के कारण अधिकतर समय गुलाम रहें है क्योंकि उष्ण जलवायु के कारण एशिया के लोग आलसी बहुत है। उष्ण जलवायु के निवासियों की तुलना में शीत जलवायु के निवासी शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ साहसी, स्पष्ट, कम अविश्वासी और कम चालक होते है। जबकि उग्ण जलवायु के निवासी भीरू, उत्साहहीन और निष्क्रिय होते है।

यूरोप के अपेक्षाकृत ठण्डे प्रदेशो के निवासी बहादुर बुद्वि एवं तकनीकी कुशलता में क्षीण होते है किन्तु एशिया के लोग बुद्विमान और कुशल होते है किन्तु आत्मशक्ति के अभाव के कारण उनकी दशा पराधीनता और दासता की रही है उष्ण कटिबन्ध के लोग आलसी सुस्त जबकि शीतोष्ण प्रदेशो के निवासी परिश्रमी, ईमानदार, सत्यवादी होते है।

4.**मानवीय मूल्य और धरातलीय स्वरूपः–** मानवीय मूल्यों पर धरातलीय स्वरूप अथवा उच्चावच का भी स्पष्टतया प्रभाव पड़ता है। धरातलीय उच्चावच की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व पर्वतीय (पहाड़ी), मैदानी तथा तटीय भागों में विभाजित है। पहाड़ी प्रदेशो के निवासी सीधे और सरल स्वभाव के होते है उनमें धैर्य, संतोष की भावना प्रबल होती है बही दूसरी और मैदानी भागों के निवासी चालाक, असंतोषी व चपल प्रकृति वाले होते है। समुद्र तटीय भागों के निवासी शक्तिशाली, बुद्विमान तथा संतोषवान होते है। प्रसिद्व भूगोलवेता अलेक्जेण्डर वान हम्बोल्ट ने भी कहा है कि ''**पर्वतीय प्रदेशो के निवासी की जीवन शैली मैदानी लोगो से भिन्न होती है।**''

5. मानवीय मूल्य और जल संसाधन– जल संसाधन एक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक जिसका मानवीय मूल्यों पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है वह भूमि जिसमें जल की अधिकता पायी जाती है वहां के निवासी प्रफुल्लचित और विनोदी होते है जबकि शुष्क प्रदेशों के निवासी रूखे, चिड़चिड़े और असन्तुलित प्रकृति के होते है। जल की अनुपलब्ध्ता वहां के निवासियों को रूष्ट, असन्तुष्ट, असामाजिक बना देती है।

6. मानवीय मूल्य और मिट्टी– प्रसिद्व विद्वान 'विलकाक्स' का कथन है कि –''मानव सम्भता का इतिहास तथा व्यक्ति की शिक्षा का आरम्भ मिट्टी से ही होता है'' जिससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि मानवीय मूल्यों के निर्धारण में मिट्टी का अहम योगदान होता है। उपजाऊ मिट्टी के क्षेत्रों में ही मानव सभ्यता का विकास हुआ जिससे समाज बने तत्पष्चात् व्यक्तियों में सहयोग, प्रेम, दया, सामाजिक, संगठन जैसे मिट्टयों वाले क्षेत्रों में मानव सभ्यता एवं मानव संस्कृति का विकास न होने के कारण मानवीय मूल्यों से हीन रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अन्य कारको की भान्ति भौगोलिक परिस्थितियों एवं कारकों का मानवीय मूल्यों के विकास में महत्तपूर्ण भूमिका निभाते है। जलवायु, अक्षांशीय एवं देशान्तरीय स्थिति उच्चावच एवं मिट्टी और जल की विभिन्नता के आधार पर मानवीय मूल्यों में विभिन्नता देखने को मिलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ड़ॉ0 सिंह बी0एन0 :– मानव भूगोल (2019) प्रयाग पुस्तक भवन, 20ए यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।

ड़ॉ0 जैन, जय कुमार एवं बोहरा दानमलः– विश्व का सांस्कृतिक भूगोल 1983 अकेडमिक पब्लिशर्स जयपुर।

ड़ॉ0 कौषिक एस0डी0 – भौगोलिक विचारधारा एवं विधितंत्र 1999 रस्तोगी पब्लिकेशंस मेरठ।

ड़ॉ0 सक्सेना एल0के0– भौगोलिक चिन्तन 2003 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।

◆◆◆

व्यक्तित्व एवं पारिवारिक वातावरण के सम्बन्ध में विद्यालयों के छात्रों की नैतिक ताक्रिकता का अध्ययन

रीता कश्यप एवं शिखा देवी

एम.एड. छात्रा, विद्यावती मुकुन्द लाल गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद (उ०प्र०)

सारांश

आज हमारे समाज में नैतिक आदर्शों की भी कमी नहीं है। वेद, पुराण, स्मति,उपनिषद, कुरान, बाइबिल आदि ग्रंथों मे नैतिकता संबंधी ज्ञान परिपूर्ण है परन्तु अपनी स्वार्थी महत्वाकांक्षा तथा भोग विलास की प्रवृति के कारण हम उन नैतिक मूल्यों को व्यवहार में नहीं लाते।हमे भ्रम हैं कि अनैतिक एवं असंयमी व्यवहार करके ही हम अपने–आप को सुखी बना सकते हैं। वास्तव में,व्यक्ति के अनैतिक व्यवहार के कारण वह स्वयं,उसके परिवार के सदस्य, उसके पड़ोसी, नगर निवासी तथा देशवासी सभी दुखी हैं। हमने अपने व्यवहार से पशु–पक्षियों तथा वनस्पतियों तक को दुखी कर रखा हैं क्योंकि हमारी इस भौतिक हवस ने पुरूष तथा प्रकृति का संतुलन भी बिगाड दिया हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी जी ने कहा था कि –प्रकृति मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती हैं पर उसके लोभ की नहीं।

मुख्य शब्द: नैतिक तार्किकता, पारिवारिक वातावरण व, प्राथमिक विद्यालय

प्रस्तावना

वर्तमान भौतिकवादी युग में मनुष्य इतना अधिक बुद्धिवादी हो गया है कि वह किसी बात को सहज स्वीकार करने को तैयार नहीं है। लेकिन भौतिकतावादी जगत कागज के फूल के समान है जिसमें टिकाऊपन तो है परन्तु सहज सुगन्ध का अभाव होता है। दुर्भाग्य से हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी कागज के फूल जैसी सिद्ध हो रही है। कागजी डिग्रियों और उपाधियों ने व्यक्ति को इतना अधिक औपचारिक बना दिया है कि बेरोजगारों की बाढ़–सी आ गयी है। जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक स्तर पर अनैतिकता भ्रष्टाचार, हिंसा, अवसाद व घृणा आदि की दुष्प्रवृत्तियां प्रतिदिन ही बढ़ती जा रही हैं। किसी भी युग में शिक्षा शिक्षक और शिक्षा

नीति पर राष्ट्रीय परम्परा, राष्ट्रीय प्रतिभा तथा राष्ट्र की परिस्थिति के सम्बन्ध में विचार होता आया है इसका कारण है कि किसी भी राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिए चरित्रवान, नैतिक गुण सम्पन्न नागरिक सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। सभ्य और सुसंस्कृत नागरिकों के निर्माण का दायित्व शिक्षा पर है क्योंकि मानव के सन्तुलित और सर्वांगींण विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शिक्षा के द्वारा ही आदतों, प्रवृत्तियों , अभिवृत्तियों एवं कार्यकारी दक्षताओं का विकास होता है। बालकों में नैतिकता के विकास पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। सबसे अधिक प्रभाव उसके वातावरण से नैतिक, सामाजिक, मानवीय, आध्यात्मिक मूल्यों को सहज एवं स्वाभाविक ढंग से ग्रहण करता है। बाल्यावस्था में जिन संस्कारो को अर्जित किया जाता है।

नैतिक तार्किकता का अर्थ (*Mesaning of Moral Resasoning)*:

'नैतिक' शब्द का अर्थ है–नीतिपूर्ण आचरण। दूसरे शब्दों में हम इसे नैतिकता भी कह सकते हैं। नीति की दृष्टि में मानव–जीवन के विवेचन की प्रेरक बुद्धि होती है, जो कर्म के अधीन होता है। प्रत्येक समाज शान्ति तथा उसकी व्यवस्था स्थापना एक शिष्टाचार–पद्धति को निर्धारित करता है। सम्पूर्ण समाज की स्वीकृति श्टाचार–पद्धति शनैः शनैः एक सु–स्पष्ट निश्चित व्यवस्थता का रूप धारण कर लेती है। इसे ही नैतिकता की संज्ञा दी।

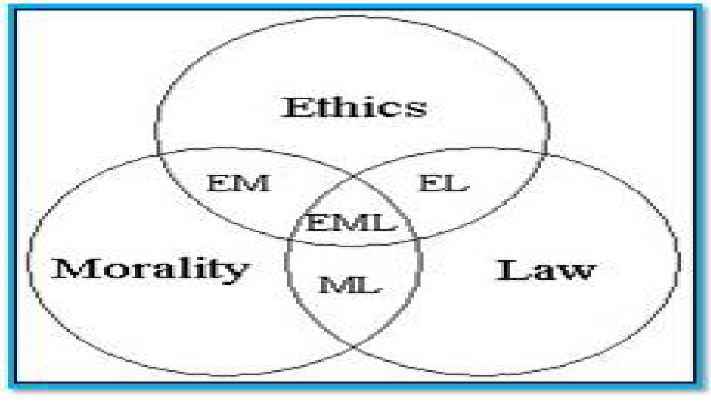

E- Erhics.   M- Morality. L- Law.

जेम्सरेस्ट के मतानुसार– मनोवैज्ञानिक ने भी व्यक्तियों में नैतिक तार्किकता कथन के लिये विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग किया है–

1) इस प्रकार का व्यवहार जो अन्य व्यक्तियों के लिये हितकरी हो।
2) सामाजिक मान्यता के अनुसार व्यवहार का नैतिक स्तर हो।
3) सामाजिक व्यवस्था का आत्मनुभूतिकरण।
4) आत्मग्लानि की भावना,न्याय के विषय में तक्रं, परहित का महत्व।

अतः उपरोक्त सभी बिन्दु नैतिकता के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। प्रत्येक की सीमा होती है। आवश्यक है कि नैतिकता को एकीकृत रूप में रखना एक अत्यधिक महत्वपूर्ण व जटिल हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक हैं जीवन मूल्य यों तो बहुत से जीवन मूल्य विश्वव्यापी होते हैं परन्तु फिर भी किसी समाज के जीवन दर्शन के अधार पर कुछ जीवन मूल्यों पर अधिक बल होता है और कुछ पर कमें इसी क्रम में नैतिक तार्किकता का विकास एक वह प्रणाली है जहॉ व्यक्ति उचित, अनुचित का निर्णय ज्ञान के आधार पर करता हैं। जन्म के समय व्यक्ति नैतिकता विहीन होता हैं। प्रारंभिक बाल्यावस्था में नैतिकता का विकास होता हैं।जब बालक यह विचार करने लगता कि किस प्रक्रिया में पुरस्कार मिलता है और किस प्रक्रिया में दण्ड मिलता , जब वह धीरे–धीरे इस ज्ञान से परिचित हो जाता तो व्यवहार में नैतिकता आ जाती है। अनुचित व्यवहार अनैतिक होता है। प्रारंभ में नैतिक मूल्य उसके के बाह्य में होता है। धीरे–धीरे वह मूल्यों को आत्मसात करता है।

अध्ययन उद्देश्य (Objective)

किसी भी शोधकर्ता का कार्य उसके उद्देश्यों में समाहित व निर्देशित होता है। वस्तुतः प्रस्तुत अध्ययन के प्राप्य उद्देश्य मेरठ, बागपत, हापुड़ व गाजियाबाद जिले में प्राथमिक स्तरीय विद्यालयों के छात्रों के संदर्भ में शोधकर्ता द्वारा निम्न विशिष्ट उद्देश्य लिए गए हैं–

1- व्यक्तित्व के आधार पर प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिक तार्किकता स्तर का अध्ययन करना।

परिकल्पना (Hypothesis):

प्रस्तुत अध्ययन अपने आप मे एक नवीन व महत्वपूर्ण अध्ययन है और इस प्रकार के उद्देश्यो को लेकर किए अध्ययनो का भी इस क्षेत्र मे अभी अभाव है।

1. प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिक तार्किकता स्तर तथा व्यक्तित्व के प्रथम आयाम (एकांकी एवं उत्साही) के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है।
2. प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिक तार्किकता स्तर तथा व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम (बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ) के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है।
3. प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिक तार्किकता स्तर तथा व्यक्तित्व के तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर) के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं होता है।

उपकरण (Tools):

यह बात सर्वविदित हैं कि बिना उपकरण के अनुसंधान प्रक्रिया पूर्ण करना सम्भव नहीं है। सर्वेक्षण में प्रयोग में लाये जाने वाली शैक्षिक अनुसंधान में उपकरणों का प्रयोग किया जाता हैं।इनमें उपकरणों में प्रश्नावली,साक्षात्कार, निरीक्षण,मनोवैज्ञानिक परीक्षणव अभिसूची इत्यादि। अनुसंधान में उपकरणों का चयन अध्ययन समस्या, अनुसंधान का उद्देश्य व स्वरूप पर निर्भर करता हैं। प्रस्तुत अनुसंधान में प्रश्नावली उपकरण का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अनुसंधान में निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया–

1. जेम्स रेस्ट द्वारा निर्मित 'डिफाईनिंगइष्यूजटेस्ट' परीक्षण।
2. जी.डी.कपूर,एस.एस.श्रीवस्तव द्वारा निर्मित 'हाई स्कूल व्यक्तित्व परीक्षण'(H.S.P.Q.) ।

आकड़ों का विश्लेषण व परिणाम (Result and Data Analysis):

1. **परिकल्पना न0 1:** माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिताक्रिकता स्तर तथा व्यक्तित्व के प्रथम आयाम (एकांकी एवं उत्साही) के मध्य कोई सार्थक सह–सम्बन्ध नहीं है ($r = 0.045$) 0.05 स्तर पर परिणाम सार्थक नहीं हैं।

सारणी संख्याः 1. सह–सम्बन्ध गुणांक (r)

क्र.सं.	समूह का नाम	संख्या (N)	सह–सम्बन्ध गुणांक (r)
1.	नैतिक ताक्रिकता स्तर तथा व्यक्तित्व के प्रथम आयाम (एकांकी एवं उत्साही)	500 (पॉच सौ)	r = 0.045

परिणाम (Results): परिकल्पना न01 नैतिक तार्किकता स्तर तथा व्यक्तित्व के प्रथम आयाम (एकांकी एवं उत्साही) के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नही होता है।

परिकल्पना न 02: माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों की नैतिक तार्किकता स्तर तथा व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम (बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ) के मध्य सार्थक सह–सम्बन्ध है(r=0.106) 0.05 स्तर पर परिणाम सार्थक होता है।

सारणी संख्याः 2. सह–सम्बन्ध गुणांक (r)

क्र.सं.	समूह का नाम	संख्या (N)	सह–सम्बन्ध गुणांक (r)
2.	नैतिक ताक्रिकता स्तर तथा व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम (बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ)	500 (पॉच सौ)	r = 0.106*

r =*0.05 स्तर सार्थक।

परिणाम (Results):

परिकल्पना न02 : में नैतिक तार्किकता के व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ के मध्ये प्राप्त सहसम्बन्धगुणाक (r=0.106) है। अत; अमान्य परिकल्पना अस्वीकार हैं। नैतिक तार्किकता के व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ के मध्ये सहसम्बन्ध है। अर्थात नैतिक तार्किकता की न्यूनाधिककता व्यक्तित्व के द्वितीय आयाम बहुज्ञ एवं अल्पज्ञ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

परिकल्पना संख्याः 1-3 ¼ - इस कथन में नैतिक तार्किकता स्तर व व्यक्तित्व के तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर) में सम्बन्ध है।

नैतिक तार्किकता तथा व्यक्तित्व के तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर) के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांक (r=0.099) है जोकि सार्थकता

के 0.05 स्तर (स्वतन्त्रता अंश, 498) पर पीयर्सन सह–सम्बन्ध गुणांक के सार्थकता सारणी मान से अधिक है। अतः अन्तर सार्थक है। इसलिए अमान्य परिकल्पना संख्या–1.3. को अस्वीकार किया जाता है।

सारणी संख्याः 4.3. सह–सम्बन्ध गुणांक (r)

क्र.सं.	समूह का नाम	संख्या (N)	सह–सम्बन्ध गुणांक (r)
2.	नैतिक ताक्रिकता स्तर तथा व्यक्तित्व के तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर)	500 (पॉच सौ)	r = 0.099*

r =*0.05 स्तर सार्थक।

परिणाम (Results):

परिकल्पना न0.1.3: में इससे ज्ञात हुआ कि नैतिक तार्किकता स्तर व व्यक्तित्व के तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर) के मध्य सार्थक सह–सम्बन्ध है। अर्थात नैतिक तार्किकता स्तर व न्यूनाधिक व्यक्तित्व तृतीय आयाम (संवेग बनाम स्थिर) में महत्वपूर्ण भूमिका है।

निष्कर्ष (Discussion)

किसी भी शोध को उसके लक्ष्यों को ध्यान में रखकर तथा उसकी तार्क्रिक कसौटी को परखने के लिए परिकल्पनाओं का निर्धारण किया जाता है। इस अध्याय में शोध–अध्ययन की परिकल्पनाओं द्वारा प्राथमिक स्तर के विद्यालयों के छात्रों से सम्बन्धित शिक्षकों ,प्रध्यानाध्यपकों व संस्था प्रधानों आदि के लिये सारांष और शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही समस्या से सम्बन्धित सुझावों एवं भविष्य में समस्या से सम्बन्धित हो सकने वाले सुझावों पर चर्चा की गई है। जिनको अपनाकर या लागू करके छात्रों को अच्छा वातावरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

REFERENCE

अग्रवाल, वी.पी.: राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा का आलोचनात्मक अध्ययन

शर्मा, पं. श्रीराम : अपरिमित संभावनाओं का आधार मानवी व्यक्तित्व, प्रकाशक अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998

शर्मा, पं. श्रीराम : भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व, प्रकाशक अखण्ड

ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998
जायसवाल, ड़ॉ0 सीताराम : सामान्य मनोविज्ञान, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली पृ.– 36–45, 81 से 124
लाल बिहारी, रमन : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ 2005–06
लाल बिहारी, रमन : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं आर. लाल बुक डिपो, मेरठ 2008 पृ. 617–607
कृष्णमूति, जे0ः संस्कृति का प्रश्न, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, राजघाट फोट,वाराणसी, पृ0 72
कुमार, आनन्द : आत्मविश्वास, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली–2005
गारेट, एच.ई. : डेस्क्रिप्ट स्टाटिटिस्कस, प्रेन्टिस हाल इंडिया, 1999

◆◆◆

मूल्यों का विकास एवं परिवार

ड़ा0 सुरेन्द्र सिंह[1] एवं नरेश कुमार राठोर[2]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दु महाविद्यालय, मुरादाबाद

[2]शोधार्थी, मेवाड़ विश्वविद्यालय, राजस्थान

परिवार व विद्यालय में सज्जनता एवं मधुरता का अभ्यास छोटी आयु से ही बालकों को कराया जाना चाहिए। बढ़े छोटों के साथ आप या तुम कहते हुए सम्मानासूचक शब्दों में ही बात करें। प्रताड़ना एवं भर्त्सना भरी बात भी कोई गलती करने पर कही जा सकती है, पर वह नम्र ओर शिष्ट शब्दों में होनी चाहिए। गाली–गलौज भरे, मर्मभेदी, व्यंग्यात्मक, तिरस्कारपूर्ण, कटु शब्द हर किसी को बुरे लगते हैं। छोटों पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जिह्य पर इतना काबू होना चाहिए कि वह आवेश भरे दुष्ट शब्दों को बोलने न पाए। दुष्ट शब्दों की प्रतिक्रिया दृष्टतापूर्ण ही होती है, उससे केवल द्वेष बढ़ता है। कभी इनकार का अवसर भी आए तो उसमें भी अपने असमर्थता नम्र शब्दों में प्रकट करनी चाहिए। कटु शब्दों में इनकार करने से सामने वाले पर दुहरा प्रहार होता है और वह भी तिलमिलाकर दुहरी दुष्टता धारण कर लेता है। विवाद, इनकारी एवं प्रतिद्वंद्विता में भी शिष्ट भाष और सामने वाले के सम्मान का ध्यान रखा जाना चाहिए।

मूल्यों के विकास हेतु परिवार को निम्न कार्य करने चाहिए–

1. बालक माता पिता के व्यहार का अनुकरण करते हैं। अँग्रेजी में कहावत है– ''दि चाइल्ड इज ऐज ओल्ड ऐज हिज एनसेस्टर्स।'' अर्थात् बच्चा उतना पुराना होता है जितना उसके पूर्वज। एक बार संत ईसा के पास आई एक स्त्री ने प्रश्न किया– बच्चे की शिक्षा–दीक्षा कब से प्रारम्भ की जानी चाहिए, ईसा ने उत्तर दिया– गर्भ में आने के 100 वर्ष पहले से। स्त्री भौचक्की रह गई, पर सत्य यही है जिसकी ओर संत ने इंगित किया। सौ वर्ष पूर्व जिस बच्चे का अस्तित्व नहीं होता, उसकी जड़ तो निश्चित ही होती है, चाहे वह उसके बाबा हों या परबाबा। उनकी मनः स्थिति, उनके आचार, उनकी संस्कृति पिता पर आई और माता–पिता के विचार, उनके रहन–सहन, आहार' विहार से ही बच्चे का निर्माण होता है। कल जिस बच्चे को जन्म लेना है, उसकी भूमिका हम अपने में लिखा करते हैं। यदि यह प्रस्तावना ही उत्कृष्ट न हुई तो बच्चा कैसे श्रेष्ठ बनेगा? भगवान राम जैसे महापुरुष का जन्म रघु, अज और दिलीप आदि पितामहों के तप की परिणति थी, तो योगेश्वर कृष्ण का

जन्म देवकी और वसुदेव के कई जन्मों की तपश्चर्या का पुण्य फल था। अठारह पुराणों के रचयिता व्यास का आविर्भाव तब हुआ था, जब उनकी पाँच पितामह पीढ़ियों ने घोर तप किया था। हमारे बच्चे श्रेष्ठ, सदगुणी बनें, इसके लिए मातृत्व और पितृत्व को गंभीर अर्थ में लिए बिना काम नहीं चलेगा।

2 गर्भावस्था से ही बालक के विकास का प्रयास करना चाहिए। माता–पिता को बालकों को संस्कारवान बनाने का अभ्यास उनके गर्भ में आने से ही प्रारम्भ करना चाहिए। माता–पिता की मनोदशा का बालक पर प्रभाव पड़ता है। माता के शरीर से रस और रक्त लेकर उसका स्वास्थ्य बनता है। उनके रहन–सहन का सूक्ष्म प्रभाव बालकों की आत्मा पर पड़ता है। अतएव खान–पान, रहन–सहन तथा व्यवहार में माता–पिता को गर्भावस्था में बालक के आते ही सात्विकता का पर्याप्त समावेश कर लेना चाहिए। जो माताएँ मिर्च–मसाले, खटाई, तीखे, कसैली, बासी भोजन का प्रयोग करती हैं, उनके बच्चे अधिकांश क्रोधी, दुष्ट तथा तामसिक प्रकृति के होते हैं। वस्त्र, आभूषण, बोली–भाषा आदि का भी गर्भस्थ बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। पति–पत्नी में प्रेम और सदाचार न हो तो बच्चे भी दुर्गुणी, नास्तिक तथा चिड़चिड़े प्रकृति के होते हैं। इन सभी बातों का माता–पिता को पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

3 बच्चों की जिज्ञासा को शान्त करें दबाऐं नहीं प्रायः पाँच वर्ष की अवस्था आ जाने पर बालक की ज्ञान–पिपासा बढ़ने लगती है। अभी तक जिन वस्तुओं को मात्र खेल और तोड़–फोड़ की जरूरत समझता था, अब उनके प्रति उसका जिज्ञासा भाव बढ़ने लगता हैं इस उम्र में बच्चों को चित्र, कथा कहानियाँ बहुत पसंद आती हैं। लोरियाँ व मधुर संगीत में भी उनकी रूचि जाग्रत होती है। इनके लिए वे कभी–कभी हठ भी करते हैं। इस समय बालकों को सुन्दर–सुन्दर चित्र जिसमें महापुरूषों के चित्र, प्राकृतिक दृश्य आदि हों, दिखाने चाहिए। कलात्मक वस्तुओं से अपने निवास को सजाना और बालकों में उनके प्रति रूचि पैदा करना चाहिए। महापुरूषों की जीवनियाँ सरल व सुबोध ढंग से सुनानी चाहिए। करूणा शांत और मनोरंजन लोरियों से बालकों का मन वहलाव भी होता है और उनके मनोजगत में सात्विक संस्कारों का आविर्भाव भी होने लगता है। इस अवस्था में चाहें तो बच्चे का मस्तिष्क किसी भी दिशा में लगा सकते हैं।

4 अभिभावक बच्चों का सम्मान करें। जो अभिभावक अपने बच्चों का

सम्मान स्वयं नहीं करते, उन्हें या महत्त्वहीन समझकर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं अथवा उनकी उपेक्षा करते हैं, वे समाज में भी उनकी उपेक्षा की भूमिका बना देते हैं, और तो और उसके समीपस्थ साथी तथा सहपाठी तक यह कहकर व्यंग्य करते रहते हैं, क्या बातें बनाते हो दिन भर तो घर पर बुराई होती रहती है, कोई दो कौड़ी का पूछता नहीं, छोटे भाई तक किसी गिनती में नहीं लाते और यहाँ हम सबके बीच शान दिखाते हो, यह बात तो उनके सामने करो जो तुम्हारी दशा जानता न हो। अभिभावकों से आहत बच्चे समाज में अनायास ही आहत हो जाते हैं। लोग यह समझकर उनका उपहास करते हैं कि जरूर ही इसमें कोई दुर्गुण होंगे, तभी तो घर पर इसका कोई आदर नहीं होता। बच्चों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए स्वयं भी उनका उचित सम्मान करिए। उनके स्वभाव, सद्व्यवहार, उनके अधिकारों की रक्षा तथा उनके साथ प्रेमपूर्वक बोलना ही उनका आदर है, जो हर अभिभावक को करना ही चाहिए। माता–पिता तथा भाई–बहिनों से आदर पाए हुए बच्चे साथियों की दृष्टि में अनायास ही ऊँचे उठ जाते हैं और वे प्रभावित होकर उनका आदर करने लगते हैं।

5 बालकों का वास्तविक उत्तराधिकार धन–दौलत, खेती, जमीन–जयादाद, सोना–चाँदी, रूपया, व्यापार आदि अनेक माँ–बाप अपने बच्चों को उत्तराधिकार में देकर जाते हैं। इससे उनका कुछ काम भी चलता है, पर व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से ये सभी चीजें अपर्याप्त हैं। निम्न श्रेणी का व्यक्तित्व होने पर आलस्य और प्रमाद से ग्रसित व्यक्ति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई संपदाओं को भी सुरक्षित नहीं रख सकता। वह दुर्गुणों के कारण इन चीजों को बरबाद कर देता है या उसे अज्ञानी और अव्यवस्थित पाकर लक्ष्मी स्वयं ही छोड़कर चली जाती है। बड़े परिश्रम और लगन के साथ करके माँ–बाप अपने बच्चों के लिए कुछ इसलिए छोड़ते हैं कि हमारे पीछे भी बच्चे सुखपूर्वक रहेंगे, पर वे यह भूल जाते हैं कि सद्गुणों के अभाव में किसी की भी कितनी भी सम्पत्ति देर तक नहीं ठहर सकती।

6 सज्जनता व समझ बालकों के लिए वास्तविक सम्पत्ति है जो अभिभावक अपने बच्चों को वास्तव में सुखी बनाना चाहते हों, उनके भविष्य को उज्जवल बनाना चाहते हों, उनके लिए उचित है कि सद्गुणों की दैवी सम्पदा अपनी संतति को अधिकाधिक मात्रा में देने का प्रयत्न करें, पर यह दे सकना उन्हीं के लिए सम्भव है, जिनके पास स्वतः कुछ हो। धनी व्यक्ति ही अपने बच्चों के लिए धन छोड़ सकते हैं।

7 बालकों में श्रम शक्ति का विकास करना– यदि हम चाहते हैं कि हमारे बालक आलसी और अकर्मण्य न बनें, तो हमें उनके सामने श्रमशीलता एवं कार्यसंलग्नता का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए और अपनी ही भाँति उन्हें भी किसी–न–किसी उपयुक्त कार्यक्रम में लगे रहने की दिनचर्या बना देनी चाहिए। व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि बालक खिन्न होकर नहीं, वरन् मनोरंजन समझकर बताए हुए कार्यों में लगा रहे। उसका मन न लगता हो तो किसी दूसरे प्रकार से हेर–फेर कर देना चाहिए। खेलना भी एक काम है, यदि वह नियत समय और उचित वातावरण में सम्पन्न किया जाए।

8 बालकों में उदारता के गुणों का विकास करना– बच्चे अपने भाई–बहिनों से अक्सर लड़ते –झगड़ते रहते हैं। खाने–पीने की वस्तुओं के लिए, खिलौनों के लिए या और किन्हीं वस्तुओं के लिए आपस में छीना–झपटी करते रहते हैं। इस आदत को जरा भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए, वरन् उन्हें यह सिखाना चाहिए कि मिठाई आदि कोई स्वादिष्ट चीज पहले अपने दूसरे भाई–बहिनों को बाँटें, तब खुद खाएँ। जो बच्चा अधिक स्वार्थी हो, उसी से यह बँटवारे का काम कराना चाहिए और उसे उचित बँटवारा करने पर, स्वयं सबसे पीछे और कम लेने की सज्जनता पर जी खोलकर प्रशंसा करनी चाहिए।

9 बालकों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता पैदा करना– स्वच्छता एक आवश्यक गुण है, जिसे बच्चों में आरम्भ से ही उत्पन्न करना चाहिए। सफाई से प्रेम होने का अर्थ, मैल से घृणा। धोबी के धुले कपड़े चटपट पहन लेना और पुराने कपड़े उतारकर फेंक देना सफाई नहीं है, यह तो सौंदर्य के प्रति आकर्षण मात्र है। शरीर के किसी अंग पर मैल जमा न होने देना, रगड़–रगड़ कर भली प्रकार स्नान करना, दाँत और जीभ ठीक तरह साफ करना, धुले कपड़े पहनना, अपने उपयोग की सभी चीजें ठीक रखना, यह सभी अदातें आवश्यक हैं, पर सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी कोई वस्तु अव्यवस्थित पड़ी न रहने दी जाए। कपड़े, जूते, बरतन, पुस्तकें, कलम आदि वस्तुओं को बच्चे जहाँ–तहाँ पटककर दूसरे काम में लग जाते हैं। उन्हें सिखाया जाना चाहिए कि एक काम पूरा करके तक दूसरा आरम्भ करना चाहिए और गंदगी से घृणा करनी चाहिए। गंदगी के उत्पन्न होते ही साफ करना चाहिए। हर वस्तु स्वच्छ और सलीके से रखनी चाहिए। गंदगी से घृणा न होना, उसे सहन करना, मानव स्वभाव का एक बहुत बड़ा दोष है।

◆◆◆

योग, शारीरिक शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

कमल कान्त
एम0एड0(द्वितीय वर्ष), बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)

योग का मानव–जीवन में विशेष महत्व है। योग को जीवन जीने की कला कहा जाता है। योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की **'युज'** धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है– **''जोडना, मिलना एवं रोकना या बाँधना''।** यहां पर **'जोड़ना'** शब्द से तात्पर्य स्वयं को अच्छे एवं सकारात्मक विचारों से जोड़ना है। **'मिलना'** शब्द से आषय आत्मा एवं परमात्मा के मेल से है। **'रोकना या बाँधना'** शब्द चित्त की वृत्तियों को रोकने या एक स्थान पर बाँधकर रखने को दर्शाता है। योग का जनक भगवान शिव को माना जाता है। योग के प्रथम सूत्रकार महर्षि पतन्जलि है। इनके नाम पर ही योग को पातन्जल दर्शन भी कहा जाता है।

गीता में कर्मो की कुशलता को ही योग कहा गया है। कर्म इस कुशलता से किये जायें कि कर्म बन्धन न कर सकें अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करना ही योग है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि योग एक साधना विज्ञान है जो मानव के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसकी साधना एवं सिद्धान्तों में ज्ञान का महत्व दिया गया है। इसके द्वारा आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास संभव है। महर्षि पतन्जलि ने अपनी योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों के निरोध में ही योग बताया है। चित्त का तात्पर्य अन्तःकरण से है। चित्त दर्पण के समान है। चित्त को विषयाकार होने से रोकना ही योग है।

प्राचीनकाल में योगशिक्षा या योग विद्या सन्यासियों या मोक्ष मार्ग के साधकों के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर को त्याग कर वन में जाकर एकान्त में वास करना होता था। इसी कारण योग विद्या को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था जिससे लोगों के मन में यह धारणा बन गई थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। इसीलिए योग विद्या धीरे–धीरे लुप्त होती चली गयी जिसके परिणामस्वरूप हमारे समाज में अनेक रोग, मानसिक व्याधियाँ एवं तनाव आदि उत्पन्न होते गये। अतः योग की पुनः आवश्यकता समाज को हुयी।

पिछले कुछ वर्षों से समाज में बढ़ते तनाव, चिन्ता एवं प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को योग से अनेकों लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एक बार पुनः समाज में लोकप्रिय होती चली गई। आज भारत में ही नहीं बल्कि

विश्व के कोने–कोने में योग विद्या पर अनेक शोध कार्य किये जा रहे हैं और इससे लाभ भी प्राप्त हो रहे हैं। योग के इस प्रचार–प्रसार में विशेष बात यह रही कि योग जितना मोक्ष मार्ग के पथिक के लिए उपयोगी था उतना ही साधारण मनुष्य के लिए भी उपयोगी है। इस प्रकार योग शिक्षा शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक विकास में भी सहायक होती है। इससे मानव में मानवीय मूल्यों का विकास भी होता है।

योग का मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना है जिनका भावनात्मक स्तर दिव्य मान्यताओं से, आकांक्षाओं से तथा दिव्य योजनाओं से जगमगाता रहे जिससे उनका चिन्तन और क्रियाकलाप ऐसा हो जैसा कि ईश्वरभक्तों एवं योगियों का होता है। ऐसे व्यक्तियों की क्षमता एवं विभूति भी उच्च स्तर की होती है। ऐसे व्यक्ति सामान्य मनुष्यों की तुलना में निश्चित ही समर्थ और उत्कृष्ट होते हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि जैसी साधना के माध्यम से चेतन मस्तिष्क को शून्य स्थिति में जाने की सफलता प्राप्त होती है। अतः योग प्रत्येक मानव के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

वर्तमान समय में भारत ही नहीं अपितु विदेशों में भी योग का स्वास्थ्य एवं रोगोपचार के क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। आज विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को मान चुका है कि वर्तमान समय में तेजी से फैल रहे मनोदैहिक रोगों में योग अभ्यास विशेष रूप से कारगर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि योग एक सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक जीवनशैली है जिसे अपनाकर अनेक प्रकार के प्राणघातक रोगों से बचा जा सकता है। इससे साधक स्वस्थ तन एवं मन दोनो प्राप्त कर सकता है।

यदि योग के अलग–अलग विषयों पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि हठयोग साधना का उद्देश्य स्थूल शरीर द्वारा होने वाले विक्षेप को, जो कि मन को क्षुब्ध करते हैं पूर्णतया वश में करना है। स्नायुविक धाराओं एवं संवेगों को वश में करके एक स्वस्थ शरीर का गठन करना है। यदि अष्टांग योग को देखें तो राग, द्वेष, काम, लोभ, मोहादि चिन्ता को विक्षिप्त करने वाले कारको को दूर करना यम–नियम का मूल उद्देश्य है। चित्त को विषयों से हटाकर आत्मदर्शन के प्रति उन्मुख करना प्रत्याहार का उद्देश्य है। धारणा का उद्देश्य चित्त को समस्त विषयों से हटाकर स्थान विशेष में उसके ध्यान को लगाना है।

धारणा स्थिर होने पर ध्यान कहीं जाती है और ध्यान की पराकाष्ठा

ही समाधि है। समाधि की उच्चतम अवस्था में ही परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है जो कि पूर्व विद्वानो के अनुसार मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य है। मानव जाति के बढ़ते तनाव को योगाभ्यास से कम किया जा रहा है। योगाभ्यास से मनुष्य को शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी मजबूत बनाया जा रहा है। इससे विद्यार्थियों की एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज कम्प्यूटर, मनोविज्ञान एवं प्रबन्धन विज्ञान के छात्र भी योग के द्वारा तनाव पर नियन्त्रण करते देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योग का मानव–जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। योग वह सशक्त साधन है जो मानव–जाति में मानवीय मूल्यों को भी विकसित करता है। इसलिए इसे जीवन जीने की कला कहा जाता है। आज मानव में मानवीय–मूल्यों को दिन–प्रतिदिन अभाव होता जा रहा है जिसके फलस्वरूप तनाव, चिन्ता, कलह, आत्महत्या जैसे मुद्दे सामने आते हैं। अतः योग के माध्यम से इन मुद्दों पर विजय प्राप्त करते हुए मानव का सन्तुलित ढंग से विकास व परिष्कार किया जा सकता है।

वर्तमान समय में शारीरिक शिक्षा का ज्ञान प्रत्येक मानव के लिए अति आवश्यक माना जाता है। शरीर–विज्ञान से सम्बन्धित शिक्षा को शारीरिक शिक्षा कहते हैं। शारीरिक शिक्षा व्यक्ति के सन्तुलित शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव के विकास के सभी पक्ष आपस में सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा का मानव के बहुमुखी विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः शारीरिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो व्यक्ति को स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनाने का कार्य करती है।

शारीरिक शिक्षा दो शब्दों शारीरिक और शिक्षा के योग से बनी है जहाँ शारीरिक शब्द से तात्पर्य 'शरीर से सम्बन्धित' और शिक्षा से तात्पर्य 'ज्ञान या जानकारी' है। इस प्रकार शरीर से सम्बन्धित ज्ञान या जानकारी ही शारीरिक शिक्षा है। शारीरिक शिक्षा का मानव जीवन में विशेष महत्व होता है। इसके अभाव में व्यक्ति का सन्तुलित विकास संभव नहीं हो सकता है। अतः शारीरिक शिक्षा मानव के विकास में सहायक सिद्ध होती है। शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत शारीरिक स्वच्छता, स्वास्थ्य, पोषण, सन्तुलित आहार, खेलकूद, व्यायाम आदि पर बल दिया जाता है।

शारीरिक शिक्षा से तात्पर्य शारीरिक व्यायाम, खेलकूद और स्वच्छता में व्यवस्थित निर्देश प्रदान करने की प्रक्रिया से है। शारीरिक शिक्षा शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से स्कूल और कॉलेजों में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में किया जाता है। इस शिक्षा का उद्देश्य एक विद्यार्थी को स्वस्थ शरीर, मन और आचरण का प्रशिक्षण देना है। यह शिक्षा विद्यार्थियों में आचरण एवं मूल्यों का विकास भी करती है। अतः शारीरिक शिक्षा विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास करने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

शारीरिक शिक्षा शरीर और मन दोनों के लिए एक अच्छा स्रोत है। स्कूल में जब मानसिक थकान होने पर बच्चों का मन उदास होने लगता है तब खेलकूद के माध्यम से ही वे अपनी इस मानसिक थकान को दूर करते देखे जाते हैं। इससे वे ताजा हवा में स्वयं को प्रसन्न एवं ऊर्जावान महसूस करते हैं। ये सभी प्रकार के खेलकूद बच्चों के शरीर के सभी अंगों को निःशुल्क शक्ति प्रदान करते हैं। खेलकूद से बच्चों के स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। शारीरिक शिक्षा से हमे धैर्य व मन की शान्ति प्राप्त होती है। इससे व्यक्ति के उत्तम चरित्र का निर्माण एवं नेतृत्व करने की क्षमता प्राप्त होती है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा का जीवन में विशेष महत्व है।

शारीरिक शिक्षा में खेलकूद का विशेष महत्व है। खेलकूद से बच्चों में विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास होता है । इससे वे एक साथ रहने एवं खेलने की कला सीखते हैं। खेलकूद के माध्यम से उनमें सामूहिक–प्रवृत्ति का विकास होता है। वे सहयोग एवं सहकारिता की भावना भी सीख जाते हैं। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा के माध्यम से विभिन्न सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास संभव हो जाता है। शारीरिक शिक्षा को छात्रों के विभिन्न मूल्यों के विकास का आधार भी कहा जा सकता है। अतः शारीरिक शिक्षा का ज्ञान समस्त छात्रों के लिए आवश्यक व अनिवार्य होता है।

शारीरिक शिक्षा व मानवीय मूल्य परस्पर सम्बन्धित है क्योंकि शारीरिक शिक्षा को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का आधार माना जाता है और सर्वांगीण विकास में नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक व आध्यात्मिक पक्ष आदि भी सम्मिलित होते हैं जो मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा एक ऐसा सशक्त साधन है जो मानव–जाति में मानवीय मूल्यों को विकसित करने में अत्यन्त आवश्यक एवं प्रासंगिक माना जाता है।

मूल्यों का भी दैनिक जीवन में विशेष महत्व है। मूल्य दैनिक जीवन के व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं। मूल्यों की उत्पत्ति एक सामाजिक संरचना विशेष के सदस्यों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं के फलस्वरूप धीरे–धीरे होती है। मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त लक्ष्य होते हैं जिनका अन्तरीकरण सीखने एवं सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और व्यक्ति की श्रेष्ठ अधिमान, मान एवं अभिलाषाएँ बन जाती है। मनुष्य को मूल्यों की प्राप्ति अपने जीवन से, अपने पर्यावरण से, अपने आप से, समाज और संस्कृति से ही नहीं वरन् मानव अस्तित्व एवं अनुभव से भी होती है।

मूल्यों को आचरण को संगठित करने की प्रविधियाँ माना जाता है जो मानव कार्यों के निवेशित प्रारूपों को प्रभावक रूप से निर्देशित करती हैं। इस प्रकार मूल्य आचरण का विकास करने में सहायक होते हैं। मानव अपने कार्यों को करने में मूल्यों के आधार पर ही वरीयता प्रदान करता है। मूल्यों के माध्यम से व्यक्ति अपने कार्यों के निवेशित प्रारूपों को प्रभावी रूप प्रदान करता है। अतः मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है। मूल्यों का मानव जीवन में विशेष महत्व है।

मूल्य वह है जो मानव की इच्छाओं की तुष्टि करें। मानव की इच्छा का स्वयं का कोई मूल्य नहीं होता है । मूल्य इच्छा को तुष्ट करने वाली वस्तुएँ हैं। इच्छा की तुष्टि या पूर्ति से सुख की प्राप्ति होती है और सुख की अनुभूति होने पर ही मूल्य की अनुभूति है। इस प्रकार मूल्य सुख की प्राप्ति का साधन होता है। मूल्यों से सुख की प्राप्ति होने पर मनुष्य स्वयं को आनन्दित व प्रसन्नचित महसूस करता है। अतः मूल्य मनुष्य की प्रसन्न जीवन शैली का आधार होते हैं।

मानव के लिए आवश्यक मूल्यों को ही मानवीय मूल्य कहते हैं। मूल्य तथा रूचि दोनो परस्पर सम्बन्धित होते हैं। मूल्य किसी व्यक्ति के लिए रूचि का ऐसा विषय है जिसकी उत्पत्ति विषय तथा रूचि के बीच सम्बन्धों से होती है । व्यक्ति की जिस विषय में रूचि होती है वह उसी विषय से सम्बन्धित मूल्यों का निर्धारण कर लेता है। व्यक्ति की रूचि उसके द्वारा चयनित मूल्यों से सम्बन्धित होती है और उन्हें निर्धारित करने में सहायता प्रदान करती है। मानवीय मूल्य वे मूल्य होते है जो मानव की रूचि से सम्बन्धित एवं उनके लिये आवश्यक माने जाते हैं।

मानवीय मूल्य आचार, सौन्दर्य, कुशलता या महत्व के वे मानदण्ड है जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं तथा जिन्हे वे कायम रखते हैं। मूल्यों को चयन के उन मानदण्ड़ों तथा प्रतिमानों की संज्ञा भी दी जा सकती है जो व्यक्तियों व समूहों को सन्तोष, परितोष तथा अर्थ की ओर निर्देशित करते हैं। इस प्रकार मूल्यों का समर्थन समाज के सदस्यों द्वारा किया जाता है। समाज के सभी सदस्य मूल्यों को जीवन का अभिन्न अंग मानते है और उन्हें सम्पूर्ण जीवन कायम रखने का प्रयास करते हैं। मूल्य व्यक्तियों को संतोष भी प्रदान करते हैं।

मूल्यों के प्रकारों में मुख्य रूप से सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक, संवैधानिक, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक मूल्य आते हैं। इन सभी मूल्यों का अपना–अपना औचित्य है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति को सामाजिकता से जोड़ते है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्य उसमें धार्मिक प्रवृत्ति का विकास एवं जीवन के अन्तिम लक्ष्य का ज्ञान कराते हैं। नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य व्यक्ति को नैतिक एवं संस्कृति प्रेमी बनाने का कार्य करते हैं। संवैधानिक एवं राष्ट्रीय मूल्य मानव में संविधान के प्रति आस्था एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों एवं राष्ट्रभक्ति का बोध कराते हैं।

योग को मानवीय मूल्यों के विकास का साधन माना जाता है। योग के द्वारा व्यक्ति का आन्तरिक एवं बाह्य शोधन किया जाता है। योग मानव के व्यवहार को एक व्यवस्थित, नियंत्रित एवं संगठित रूप प्रदान करता है। योग से व्यक्ति में अनुशासनात्मक प्रवृत्ति का भी विकास होता है। इन सभी के परिणामस्वरूप व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का विकास स्वतः ही होने लगता है। मानवीय मूल्यों के विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति का उन्नयन होने लगता है। अतः योग के माध्यम से व्यक्ति का उन्नयन एवं परिष्कार करते हुए उसे विकास की पराकाष्ठा तक पहुंचाया जा सकता है।

योग एवं मानवीय मूल्य एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होते हैं। योग का मानव जीवन में विशेष महत्व है। मूल्य मानव जीवन को सही दिशा प्रदान करने का कार्य करते हैं। जहाँ एक ओर योग से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किया जाता है वहीं दूसरी ओर मूल्य भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार योग एवं मानवीय मूल्यों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। योग एवं मानवीय दोनो ही मिलकर व्यक्ति के व्यवहार को निर्देषित एवं नियंत्रित करते हुए उसका विकास करने में सहायक होते हैं।

योग शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों को विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है। इसीलिए योग को अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल करने पर बल दिया जा रहा है। विद्यालय का बालक के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में योग शिक्षा के माध्यम से उसका सन्तुलित ढंग से विकास करते हुए उससे मानवीय मूल्यों को आसानी से विकसित किया जाता है। इस प्रकार योग शिक्षा मानवीय मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। योग को मानवीय मूल्यों का आधार भी कहते हैं।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है। स्वस्थ शरीर की प्राप्ति में शारीरिक शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। मनुष्य के शारीरिक विकास का स्वस्थ आधार शारीरिक शिक्षा ही है। शारीरिक शिक्षा के माध्यम से सन्तुलित ढंग से विकास करते हुए व्यक्ति में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण भी किया जा सकता है। स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होने पर व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का आसानी से सरलतापूर्वक विकास किया जा सकता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा भी मानवीय मूल्यों के विकास का आवश्यक एवं प्रमुख आधार है। शारीरिक शिक्षा मूल्य–केन्द्रित भी हो सकती है।

मानवीय मूल्यों का सन्तुलित ढंग से विकास स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक होने पर ही वह मूल्यों के प्रति आस्थावान हो सकता है। स्वास्थ्य का ज्ञान हमें शारीरिक शिक्षा के माध्यम से होता है। शारीरिक शिक्षा एवं मानवीय मूल्य दोनो में परस्पर सम्बन्ध होना स्वभाविक हो जाता है। शारीरिक शिक्षा का अभिन्न भाग खेलकूद होता है जिससे छात्रों में साथ रहने, साथ खेलने, सहयोग, दया, सहानुभूति, परोपकार, सहकारिता जैसे सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। शारीरिक शिक्षा नैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों जैसे अन्य मूल्यों के विकास में भी महती भूमिका प्रदर्शित करती है।

मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है। मानव के लिए आवश्यक मूल्यों को ही मानवीय मूल्य कहा जाता है। शारीरिक शिक्षा मानवीय मूल्यों के विकास में अभूतपूर्व योगदान देती है। अतः हम कह सकते हैं कि योग एवं शारीरिक शिक्षा दोनो ही ऐसे सशक्त साधन हैं जो मानवीय मूल्यों का विकास करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार मानवीय मूल्यों का मानव जीवन में महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

योग एवं शारीरिक शिक्षा दोनों को ही मानवीय मूल्यों के विकास का शक्तिशाली साधन माना जाता है। योग व्यक्ति का व्यवहार शोधन करते हुए उसमें दिव्य मान्यताओं को जाग्रत करता है। योग से व्यक्ति की जीवन–षैली नियंत्रित, नियोजित एवं सुव्यवस्थित होती है। इसीलिए विद्वानों ने योग को जीवन का प्रमुख आधार भी माना है। महर्षि अरविन्द ने सम्पूर्ण जीवन को ही योग कहा है। शारीरिक शिक्षा में व्यायाम, पोषण, सन्तुलित आहार पर बल दिया जाता है जो मानव के सन्तुलित शारीरिक विकास के लिए परम आवश्यक होता है। अतः योग एवं शारीरिक शिक्षा परस्पर सम्बन्धित होते हैं और मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक भी होते हैं।

वर्तमान युग में चल रही इस अन्तहीन भागदौड़ में आज मानव इतना घिर चुका है कि उसमें संतोष, शान्ति एवं धैर्य का नितान्त अभाव है। आज मानव में दिन–प्रतिदिन मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप मानव स्वार्थी, स्वकेन्द्रित एवं घमण्डी होता जा रहा है। हमारे समाज ने जहाँ एक ओर वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास किया है वहीं दूसरी ओर दिन–प्रतिदिन हो रही मूल्यों की कमी इसके दुष्परिणाम के रूप में दृष्टिगत होती है। मूल्यों के ह्रास को आज अनिवार्य रूप से रोकने की आवश्यकता है। यदि इसे नहीं रोका गया तो भविष्य में मानव जाति के लिए बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो सकता है। इस संकट से योग एवं शारीरिक शिक्षा द्वारा ही मुक्ति संभव हो सकती है।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में तेजी से बढ़ रहे मूल्यों के ह्यस को योग एवं शारीरिक शिक्षा के माध्यम से ही रोका जा सकता है। योग एवं शारीरिक शिक्षा दोनो ही ऐसे साधन है जो मानव को मानवता से जोड़ते हुए उनका उन्नयन एवं परिष्कार करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि योग, शारीरिक शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। योग, शारीरिक शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों का मानव जीवन में विशेष महत्व है।

संदर्भ–सूची

त्रिपाठी, ए0(2017). वर्तमान संदर्भ में मूल्य आधारित शिक्षा. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष–36, अंक–01

वर्मा, एम0के0 (2019). शारीरिक शिक्षक शिक्षा एवं सामान्य शिक्षक शिक्षा प्रशिक्षणार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष–38, अंक–01

गुप्ता, पी0 (2017). वर्तमान भारतीय समाज में मूल्य संकट के संदर्भ में मूल्य शिक्षा की भूमिका. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष–36, अंक–01

सिंह, जी0के0 (2017). मूल्यों के निर्माण तथा विकास में विषय वस्तु की सार्थकता. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष–36, अंक–01

आयंगर, बी0के0एस0(2017). सभी के लिए योग. नई दिल्ली, भारत : प्रभात पेपरबैक्स

द्विवेदी, पी0आर0(2000). योग प्रतिभा. नई दिल्ली, भारत : राधा पब्लिकेशन

शर्मा, आर0ए0(2011). मानव मूल्य एवं शिक्षा. मेरठ, उ0प्र0, भारतः आर0लाल बुक डिपो

◆◆◆

नैतिक मूल्यों के सुधार के सन्दर्भ में योग की अनिवार्य, आवश्यक तथा महती भूमिका

डॉ. विनीता एम चौधरी
असिस्टेंट प्रोफेसर, न्यू एरा कॉलेज, गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

भूमिका

किसी भी कार्य को करने के लिये उसका ज्ञान (Knowledge) आवश्यक है, ज्ञान के पश्चात् उसके किये जाने के तरीके (Methodology) का बोध होना भी अनिवार्य है। इसके पश्चात् उस कृत्य के सुपरिणाम तथा दुष्परिणाम (Results positive or negative) की समझ व्यक्ति को उस कृत्य की ओर प्रेरित करने या न करने में अहम भूमिका निभाती है। अन्तोगत्वा उस कर्म या कृत्य के दूरगामी परिणाम तथा प्रभावों (consequence@ future effects) को मिलाकर देखने पर उस कृत्य कर्म का समग्र परिदृ श्यात्मक बोध निर्मित होता है। इन्हीं उपरोक्त निर्णयों एवं उद्देश्यों का ज्ञान तथा विधिवत् बोध कराने की जो प्रणाली या विधि है उसे ही सरल अर्थों में "शिक्षा" से अभिहित किया जाता है।

शिक्षा एवं मूल्य का अर्थ (Etymology of Education & Value) शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से हुयी है, जिससे अभिप्राय है, सीखना, अर्जित करना, ग्रहण करना, ज्ञानात्मक रूप से संवृद्ध होना। अंग्रेजी में शिक्षा के लिये "Education" शब्द है, जो कि 'Educere' (Latin) से बना हुआ है, जिससे तात्पर्य होता है दृ 'to lesad', 'to draw', जव acquire'। अर्थात् आगे बढ़ना, निकालना, खींचना(ग्रहण), अर्जित करना। तात्पर्य है कि जो बातें व्यक्तित्व तथा चरित्र के निर्माण में सारभूत हैं उनको अर्जित करना (cquire), उनकी प्राप्ति की ओर अग्रसर (lesad) होना। मूल्य के लिये अग्रेंजी में "Value" है। "Value" की निष्पत्ति लैटिन "Velere" से हुयी है जिसका तात्पर्य "to be Worthy" है। एवं इसका अर्थ है – सार, महत्व। यह सार या महत्व किसी कर्म के परिणाम, प्रभाव या गुण के सन्दर्भ में मापित किया जाता है। यही उसकी Value या मूल्य होता है।

मूल्याधारित शिक्षा की आवश्यकता तथा अर्थ (Necessity & Mesaning of Value Oriented Education): यदि शिक्षा का अर्थ निकालना, ग्रहण करना या अर्जित करना है, तो मूल्याधारित शिक्षा का अर्थ होगा जो मूल्य अर्थात् सार या महत्व है, उसको निकालना या अर्जित करना। इसी

सन्दर्भ में उपनिषत् मे कहा गया है दृ

"असतो मा सद्गमय, Lesad us from untruth to truth,
तमसो मा ज्योतिर्गमय, from darkness to light, and
मृत्योर्मामृतं गमय, (from mortality to immortality)

अर्थात् हमें असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले चलो। विवेकानन्द ने भी शिक्षा की यही परिभाषा दी है कि –Education is the manifestation of the essence of a man." शिक्षा में व्यक्ति, समाज तथा राज्य के अनिवार्य तत्त्वों को शामिल किये जाने की आवश्यकता रहती है। तब ही वह समग्र तथा पूर्ण शिक्षा हो पाती है। वास्तव में शिक्षा व्यक्तित्व तथा चरित्र निर्माण का सर्वाधिक सशक्त साधन है।

नैतिक मूल्य का अर्थः यदि शिक्षा व्यवस्था में सचमुच सुधार लाना हो तो शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश जरूरी है क्योंकि कोई कार्य यदि सुस्पष्ट नीति के बिना किया जाए तो वह सफल नहीं हो सकता। नीति से ही नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है सोच–समझकर बनाए गए नियम या सिद्घांत। लेकिन आज की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है दृ पढ़–लिखकर धन कमाना। चाहे धन कैसे भी आता हो, इसकी परवाह न की जाए । यही कारण है कि शिक्षित वर्ग भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में सबसे आगे हैं। शिक्षा प्राप्ति की एक सुविचारित नीति होनी चाहिए। छात्रों की शुरू से ही यह जानकारी देनी चाहिए कि जीवन में आगे चलकर तुम्हें किन समस्याओं से जूझना होगा । छात्रों को पता होना चाहिए कि जीने के मार्ग अनेक हैं तथा उस मार्ग को ही चुनना श्रेयस्कर है जो व्यक्ति विशेष के स्वभाव के अनुकूल हो ।

नैतिक शिक्षा की बातों में सत्य, क्षमा, दया, ईमानदारी, अहिंसा आदि बताने से कुछ हासिल नहीं होता यदि हम इन ऊँची–ऊँची बातों को जीवन में उतारने का बालकों को अवसर न प्रदान करें। बालकों की सहज बुद्धि में प्रयोगात्मक सचाईयाँ अधिक सहजता से प्रवेश करती हैं । कोरे उपदेश उन्हें प्रभावित कर सकते तो आज समाज में इतनी बेईमानी और इतना भ्रष्टाचार न फैला होता । शिक्षा के साथ नैतिक मूल्यों को संबद्ध करने का अर्थ यह नहीं है कि बालकों के निरंतर भारी होते हुए बस्ते में एक और किताब का बोझ ड़ाल दिया जाए । इससे उनके जीवन में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आ सकता क्योंकि बच्चे समझते हैं कि यह भी एक विषय है जिसमें अच्छे अंक लाने होंगे । "नैतिक मूल्य" को सामाजिक

नैतिक मूल्य भी कहते है। सामाजिक नैतिक मूल्य के अन्तर्गत अनेक मूल्य आते हैं, जिसमें उचित अनुचित की भावना, आज्ञा पालन, सत्य–असत्य का ज्ञान, ईमानदारी, दया, सत्यवादिता, भक्ति, निष्पक्षता, आत्म नियंत्रण, विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व की भावना है। व्यक्ति के इन्हीं सामाजिक नैतिक मूल्यों के समूह को "चरित्र" कहते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। मूल्य और नैतिक मूल्य में अन्तर जानने के बाद हम यह समझ ही गए है कि नैतिक मूल्य का हमारे जीवन में क्या महत्व है और यह कितना आवश्यक है।

अब इस जीवन काल –चक्र मे हमें बिना उलझे हुए यह सुनिश्चित करना होगा की अपनी जिंदगी किस तरह निर्वाहन करना है। इस धर्म संकट से निपटने के लिए सर्वप्रथम अपने दिल –दिमाग एवं आतंरिक विवेक से एक कठिन एवं सफल निर्णय लेना है, ऐसा निर्णय जो अपनी अंतरात्मा, स्वाभिमान, गुणवत्ता, सहिष्णुता, नैतिकता एवं अमूल्य गुणों को अपने अंदर निहित करता है । हमें अपनी जीवन–सीमा सुनिश्चित करना है की इस काल–चक्र संसार में अपनी जन्म से मृत्यु तक का दायित्व को सही एवं कर्मठ तरीकों से निर्वहन किया जाए।

हमें इस सांसारिक सुखों के लिए ईश्वर ने इस दुनिया में नहीं भेज है, इसी पराकाष्ठा पे अपनी व्यक्तित्व विशेष का सही एवं उपयुक्ता को अपनाते हुए, नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं उपयोगित पहलुओं को ध्यान मे रखते हुए जीवन को वैकल्पिक बिन्दुओ में केंद्रित करना चाहिए।

नैतिक मूल्य शिक्षा एवं योगः भारत सांस्कृतिक, सामाजिक, पुरातन संस्कृति का देश है। भारत भूमि देवताओं की पुण्य भूमि है। हमारे देश की विरासत में हमें नैतिकता एवं सामाजिक मूल्यों का इतिहास मिला है। संपूर्ण विश्व में भारत की पहचान का प्रतीक नैतिकता है लेकिन यह कहते हुए बेहद अफसोस होता है कि आज की हमारी नई एवं आधुनिक पीढ़ी जिसमें हम सब भी आते है, इस बेशकीमती धरोहर को खोते जा रहे हैं। शिष्ट या सभ्य पुरुषों का आचार सदाचार कहलाता है। दूसरों के प्रति अच्छा व्यवहार, घर आए आगन्तुक का आदर करना, बिना द्वेश व निःस्वार्थ भाव से किया गया सम्मान शिष्टाचार कहलाता है। शिष्टाचार का अंकुर बच्चों के हृदय में बचपन से बोया जाता है अर्थात छात्र जीवन में धीरे–धीरे विकास की ओर अग्रसर होता है। वीर शिरोमणि शिवाजी की पहली गुरु उनकी मां जीजाबाई थी। रामायण में पति–पत्नी, भाई–भाई, गुरु–शिष्य, पिता–पुत्र, माता–पिता एवं पारिवारिक रिश्तों में हम शिष्टता, नैतिकता, सद्विचार, करुणा, प्रेम,

त्याग, दया, सहानुभूति, कर्म एवं कर्तव्य की शिक्षा एवं संबंध को अच्छी तरह समझ सकते हैं। समाज में शिक्षक की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। बच्चों के भविष्य को सुंदर व सुदृढ़ बनाने की सारी जिम्मेदारी शिक्षकों की होती है। बिना गुरु के ज्ञान की अवधारणा ही व्यर्थ है। हमारी संस्कृति में योग किसी धर्म से नहीं जुड़ा है बल्कि योग करने से लोगों में नैतिकता आती है। जो लोग योग करते हैं उनमें नैतिक मूल्य होते हैं। योग नैतिकता को जन्म देता है तथा लोगों का स्वाभाव इससे बेहतर बनता है। सामाजिक नियमों का पालन करना उस समाज के सदस्यों पर निर्भर करता है। इन सद्गुणों को समाज तभी ग्रहण कर पाएगा, जब स्कूली स्तर से ही बच्चों में सदाचार के इन नियमों का पालन करने की आदत ड़ाल दी जाए। इन अच्छी आदतों के विकास में योग एक अहम भूमिका निभा सकता है। हर वर्ष 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में विश्व भर में मनाए जाने का सराहनीय फैसला लिया गया। यह हम सभी भारतीयों के लिए एक गर्व का विषय है। योग हमारी प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के रूप में हमारे ऋषियों, विशेषकर महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अमूल्य संपदा है। आज की भागदौड़ एवं प्रतिस्पर्धा के इस गलाकाट युग में हम सभी अपनी मानसिक एवं आत्मिक शांति खोते जा रहे हैं। भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व हमारी शिक्षा व्यवस्था भारतीय संस्कृति के आदर्शों, मूल्यों एवं विचारों पर आधारित थी।वर्तमान में जब हर तरफ अपराध का बोलबाला है, नैतिक मूल्यों की शिक्षा का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

योग के लाभ

हमारी संस्कृति में योग का उच्च स्थान है। यह किसी धर्म से नहीं जुड़ा है बल्कि बहुत सारे अनुभव से तथा पौराणिक तथ्यों पर यह आधारित है।

1. योग करने से बालकों में नैतिकता आती है। योग साधना से मन शांत होता है तथा शरीर में अच्छे विचार का संचार होता है।

2. योग के द्वारा व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का समावेश होता हैं। योग नैतिकता को जन्म देता है तथा बालको का स्वभाव इससे उत्तम बनता है।

3. योग हमें शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रखता है। योग करने से हम अनेक रोगों से अपनी सुरक्षा कर सकते हैं तथा खतरनाक दवाइयों के इस्तेमाल से बच सकते हैं।

4. बहुत से योगो को करने से बीमारियां भी ठीक होती है। नियमित योग करने से व्यक्तियों को लाभ होगा तथा वे स्वस्थ्य रहेंगे।

अतः सभी को अपने जीवन में योग को शामिल करना चाहिए तथा दूसरों को भी जागरूक करना चाहिए।

अत्याधुनिक मूल्य शिक्षा का परिदृश्य (Modern Scenario of Value Education): वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप अत्याधुनिक है। विविध विषयों के विशिष्ट अध्ययन की परिपाटी प्रचलन में है। ये विविध विषय प्रायः विज्ञान, चिकित्सा, तकनीकि आदि के होते हैं। इसके अतिरिक्त कला, कम्प्यूटरविज्ञान, व्यवसाय तथा प्रबन्धन परक विषयों का अध्ययन महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से होता है। यद्यपि ये विषय समाज एवं राष्ट्र के लिये अत्यावश्यक हैं तथा समाज एवं राष्ट्र के विकास में इनकी भूमिका अहम है। किन्तु इतने विविध विषय तथा नैपुण्यता परक ज्ञान के पश्चात् भी जिस चीज की कमी व्यक्ति तथा समाज में चिन्तकों के द्वारा अनुभूत की जा रही है वह है दृ(A) मानवीय मूल्य (Humanistic Values) (सद्भाव, प्रेम, सौहार्द्र, अहिंसा, निःस्वार्थपरकता आदि में कमी), (B) राष्ट्रीय मूल्य (National Value) (देशभक्ति की भावना, राष्ट्रीय एकता की भावना, राष्ट्रीय अवदानों में गरिमान्विता का भाव, त्याग आदि के प्रति दृढ़ता में कमी, तथा (ब) अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों (International Value) (मानवाधिकार, शान्ति, इको सिस्टम) आदि।

इन मूल्यों के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप सामाजिक विघटन, स्वार्थपरकता, हिंसा, घृणा, राष्ट्र के प्रति असम्मान या उदासीनता का भाव जनित होता है। सांस्कृतिक मूल्यों में अनास्था के परिणाम स्वरूप संस्कृति का क्षय, जनरेशन गेप, ओल्ड एज़ पीपुल्स प्रोब्लम्स, परिवार का विघटन, विवाह सम्बन्धों का टूटना, मानव को मशीन समझना जिससे उपभोक्तावाद आदि की विषाद जनक स्थित उत्पन्न होती है। इन्हीं के अत्यधिक बिगड़ने से सामाजिक क्लेश, व्यापक अशान्ति, जीवन में/ से असंतुष्टि, असुरक्षा, अपराध, तथा आतंकवाद, जैसी विभीषिकाएँ जन्म लेती है। इन विभीषिकायों के कारण सामाजिक, राष्ट्रीय असन्तुलन की स्थित उत्पन्न होती है।

उपरोक्त परिणामों के मद्देनजर उपरोक्त वैयक्तिक एवं मानवीयमूल्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों को शिक्षा में सम्मिलित करने की नितान्त आवश्यकता होती है। इसी लिये आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा को केवल शिक्षा न कहकर मूल्योंन्मुखी शिक्षा कहा जाता है। इस प्रकार "मूल्योंन्मुखी शिक्षा वह है जो कि व्यक्ति के मनोदैहिक पक्षों के समग्र विकास के साथ, उसमें सामाजिक मूल्यों के प्रति बोध जगा सके, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की गरिमामय अनुभूति के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावों के अनुरूप व्यक्ति का

विकास करने में सहायक हो, जिससे वह स्वयं के प्रति, परिवार के प्रति तथा समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य–कर्मों को दक्षता पूर्वक निभा सके।" अतः इस प्रकार मूल्योंन्मुखी शिक्षा में व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं के सम्पूर्ण विकास के साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय आकाक्षांओं के पूर्णीकरण का आदर्श समाहित किया गया है।

मूल्योंन्मुखी शिक्षा की राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें (V-O-E- – National & International Agencies): हमारे देश मे शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों के अनुरूप सरकार के द्वारा छंजपवदंस च्वसपबल वद म्कनबंजपवद (1992) के तहत् कहा गया है कि– "...value education is an integral part of school curriculum- It highlighted the values drawn from national goals] universal perception] ethical considerations and character building- It stressed the role of education in combating obscurantism] religious fanaticism] eÛploitation and injustice as well as the inculcation of value."

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) की संस्था यूनेस्को (UNESCO) के द्वारा भी शिक्षा के मूल्योंन्मुखी होने को समाहित किया गया है। इसमें शिक्षा के कार्यक्रमों में शान्ति (Pesace), मानवाधिकार (Human Rights) तथा मानववादी दृष्टिकोणों (Humanistic Outlook) को समर्थित किया गया है।

मूल्याधारित या मूल्योंन्मुखी शिक्षा के घटक (Components of Value Oriented Education):

मूल्योंन्मुखी शिक्षा के घटक से अभिप्राय है उन तत्त्वों से है जिनसे मूल्योंन्मुखी शिक्षा घटित होती है, अर्थात् बनती है। निश्चित रूप से उपरोक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते हैं कि मूल्योंन्मुखी शिक्षा के घटकों में अधोलिखित मन्तव्य समाहित होंगे–

क्र.	मूल्योन्मुखी शिक्षा के घटक	Name of the factors of V.O.E.
1.	प्राचीन विरासत में संरक्षित तत्त्वों के आधार पर मानव निर्माण	Building of Human beings with the strength and power based upon ancient heritage)
2.	दक्षता एवं समझ बढ़ाने वाले तत्त्व	Promotion understanding and Efficiency
3.	व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण के घटक	Personality development and Character building
4.	राष्ट्रीय एकता, अखण्डता के घटक	National unity and Integration
5.	विकास तथा पुनर्निर्माण की क्षमता परक घटक	Development and Regeneration
6.	प्रेम तथा सौहार्द्र के तत्त्व	Affinity and fraternity
7.	शान्ति, सामञ्जस्य तथा समरसता परक घटक	Peace, Harmony and Coherence
8.	त्याग एवं समर्पण के घटक	Devotion and Dedication)

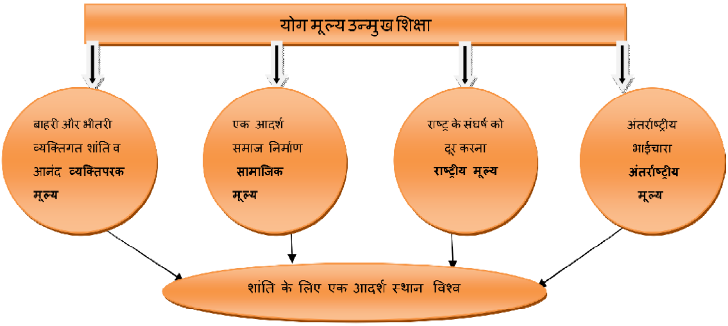

आकृति 1: मूल्य उन्मुख शिक्षा में योग की भूमिका का चित्रण

योग तथा मूल्योंन्मुखी शिक्षा

विगत् दशकों से शिक्षा के स्तर पर अनेक प्रयोग हुये हैं, शिक्षा में प्रयोगात्मकता, व्यावहारिकता तथा उपयोगात्मकता को लाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। पूर्व में जहाँ शिक्षा में नैतिक शिक्षा तथा शरीर शिक्षण जैसे विषय रहे हैं जो कि विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के साथ स्वस्थ्य शरीर के विकास में भी सहायक होते थे। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्यों में ह्रास के साथ शारीरिक शिक्षण के प्रति भी रूझान में व्यापक कमी आयी है। ऐसे में एक ऐसे सशक्त माध्यम की आवश्यकता अनुभवित की गयी जो कि नैतिक मूल्यों के साथ शारीरिक मूल्य एवं आध्यात्मिक मूल्यों की भी अपरिहार्य शिक्षा दे सके। वास्तव में योग के प्रति वर्तमान शिक्षाविदों में बढ़ते रूझान का कारण यही है। किन्तु योग की शिक्षा नवीन नहीं है। प्राचीन परम्परा में सूर्य नमस्कार के साथ गुरुकुल में अध्ययन की परम्परा रही है। आज इन्हीं प्राचीन सन्दर्भों को आधुनिक परिवेश में पुनर्ज्जीवित करते हुये योग अधिकाधिक विद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों का अनिवार्य अंग होता जा रहा है।

मूल्योंन्मुखी शिक्षा के अन्तर्गत योग के आयाम (Dimensions of Yoga in Value Oriented Education)

योग सांगोपाग सर्वांगीण विकास का दूसरा नाम है। वास्तव में जो भी सारयुक्त, श्रेष्ठ, एवं श्रेयस है उसी से जुड़ना योग है। इसे ही आत्म तत्त्व आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। इस रूप में योग आध्यात्मिक पूर्णीकरण तक का लक्ष्य रखता है। इसके अतिरिक्त आसन एवं प्राणायाम के अभ्यास के रूप में योग में शारीरिक अभ्यास एवं स्वास्थ्य के मूल्य समाहित

हैं। यम एवं नियमों के रूप में इसमें सामाजिक–राष्ट्रिक–अन्तराष्ट्रिक मूल्य समाहित हैं। प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान न केवल मानसिक दृढ़ता उत्पन्न करते हैं वरन् जागरूकता, संकेन्द्रण की क्षमता, दक्षता, भावनात्मकता को भी प्रबल बनाते हैं। इस प्रकार योग में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सभी मूल्यों के घटक किसी न किसी मात्रा में सम्मिलित होते हैं।

शिक्षा में योगांग मूल्यः मानव जाति के प्राचीनतम साहित्य वेदों में उनका उल्लेख मिलता है। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के भंड़ार हैं। इनके रचेयता अपने समय के महान अध्यात्मिक व्यक्ति थे। कुछ लोगो का ऐसा भी विश्वांस है की ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर योगासनों के प्रथम व्ख्याकार महान योगी गोरखनाथ थे। इनके समय में योग विज्ञान लोगो में अधिक लोकप्रिय नहीं था। गोरखनाथ जी ने अपने निकटम शिष्यों को आसन सिखाये। उस काल के योगी समाज से बहूत दूर पर्वतों एवं जंगलो में रहा करते थे। वहाँ एकांत में तपस्या कर जीवन व्यतीत करते थे. उनका जीवन प्रकृति पर आश्रित था। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है', यह सिद्धांत सर्वमान्य है। योग एक मानस शास्त्र है जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों पर संयम रखना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में संयत मन पर भी निर्भर करती है। मनःसंयम का अभिप्राय है किसी एक समय में किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से मन का ऐसा स्वभाव बन जाता है। किसी विषय को सोचते या किसी काम को करते हुए मन उस पर एकाग्र रहे, ऐसा अभ्यास करना आरंभ में तो बड़ा कठिन होता है, पर जब अभ्यास करते–करते वैसा स्वभाव बन जाता है, तब उससे बड़ा सुख होता है। जब तक मनुष्य अपने विचारणीय विषय या करणीय कार्य में तन्मय नहीं होता, तब तक उसे उसमें सफलता मिल ही नहीं सकती। इसमें संदेह नहीं कि योगसूत्रों में जो लक्ष्य सामने रखा गया है, वह दृष्टा का अर्थात आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान है। इसका यह मतलब है कि योगसूत्रों के सिद्धांतों का निरंतर आचरण करने से चित्त सांसारिक भोगों से विरत होकर निज स्वरूप में स्थिर हो जाता है। योग विज्ञान वेदों से भी प्राचीन हैं। योग के आठ अंग हैं जिन्हें आष्टांग कहते हैं। अस्वस्थता के कारण लोग प्रारब्ध में होते हुए भी सुख की जिंदगी नहीं जीते हैं. छात्र पठन–पाठन में ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते हैं। शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक संस्कृति के रूप में योगासनों का इतिहास समय की अनंत गहराइयो में छिपा हुआ है। योग के अंग शिक्षा में मूल्य का आधार हैं।

क्र.	योग के अंग	मूल्याधारित शिक्षा में योगांग मूल्य के रूप में	Level of Value			
			व्यक्तिगत	सामाजिक	राष्ट्रीय	अंतरराष्ट्रीय
1.	सत्य	सार्वभौमिक मूल्य Universal value	√	√	√	√
2.	अहिंसा	सार्वभौमिक मूल्य Universal value	√	√	√	√
3.	अस्तेय	सामाजिक मूल्य social values	√	√	-	-
4.	अपरिग्रह	सामाजिक भेद- Social differenceभाव को कम करने वाला, समानता लाने वाला, समाजवाद को पल्लवित करने वाला	√	√	-	-
5.	ब्रह्मचर्य	वैयक्तिक मूल्य	√	-	-	-
6.	शौच	आन्तरिक एवं बाह्य शौच - वैयक्तिक मूल्य मानसिक एवं शारीरिक शौच - सामाजिक मूल्य भी	√	√	-	-
7.	सन्तोष	मानसिक मूल्य, सामाजिक, राष्ट्रिय-अन्तर्राष्ट्रीय समरसता के लिये भी आवश्यक, उपभोक्तावाद के शमन के लिये अनिवार्य, शान्ति का पूर्व आपेक्षित मूल्य	√	√	√	√
8.	तप	वैयक्तिक, किन्तु दृढ़ता एवं क्षमता बढ़ाने की दृष्टि से सार्वभौमिक मूल्य	√	-	-	-
9.	स्वाध्याय	अनुचिन्तन के लिये अनिवार्य, अनुचिन्तन सहिष्णुता एवं आपसी समझ के लिये अपिरहार्य है।	√	√	√	-
10.	ईश्वर प्रणिधान	आध्यात्मिक मूल्य, आस्था का जनक	√	-	-	-
11.	आसन	शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के मूल्य	√	-	√	√
12.	प्राणायाम	जीवनशक्ति, कर्मशक्ति को बढ़ाने वाले ऊर्जामयता के मूल्य	√	√	Y	-
13.	प्रत्याहार	त्याग एवं संयम के मूल्य	√	√	√	√
14.	धारणा	संकेन्द्रण	√	-	-	-
15.	ध्यान	शान्ति, सौहार्द्र के मूल्य	√	√	√	√
16.	समाधि	परम मूल्य, आध्यात्मिक पूर्णीकरण का मूल्य	√	-	-	-

सारणी 1: मूल्य उन्मुख शिक्षा में योग और उनकी भूमिका का चित्रण

कोई भी समाज निर्धारित नैतिक मूल्यों के बिना अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने में सफल नहीं हो सकता। इन्हीं मूल्यों को आधार बनाकर समाज के नियमों, कानूनों का निर्माण किया जाता है। इन नियमों का पालन करना उस समाज के सदस्यों पर निर्भर करता है। इन सद्गुणों को समाज तभी ग्रहण कर पाएगा, जब स्कूली स्तर से ही बच्चों में सदाचार के इन नियमों का पालन करने की आदत ड़ाल दी जाए। इन अच्छी आदतों के विकास में योग एक अहम भूमिका निभा सकता है। योग शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा का संबंध व्यवहार, कुशलता या कार्य कौशल से है। इसके बार में कहा भी गया है, 'योग: कर्मशु कौशलम'। नैतिक शिक्षा एवं योग शिक्षा विद्यार्थियों को उन निर्धारित मूल्यों से अपने जीवन में अनपाकर जीवन की तमाम समस्या के समाधान के लिए अडिग रहकर संघर्ष हेतु सक्षम बनाती है। योग शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा एक साधन है और इस साधन का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार संबंधी क्रियाओं–कलाओं,

अध्यात्म का ज्ञान कराना है। नैतिकता के नियमों का पालन करने के लिए राज्य सरकार का दबाव नहीं होता, बल्कि इनका पालन आत्म चेतना द्वारा किया जाता है। आत्म चेतना, आत्म निरीक्षण, आत्मानुभूति, आत्म विश्लेषण एवं आत्मावलोकन में योग शिक्षा एक सशक्त माध्यम बन सकती है। नैतिकता का आधारभूत सिद्धांत सभी धर्मों से एक समान है। अतः योग नैतिकता एवं संस्कृति का पाठ अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए। धर्म सदैव नैतिकता से जुड़ा हुआ है। योग किसी धर्म विशेष का प्रचार नहीं करता, अपितु हमें जीवन को कैसे जिया जाए यह सिखाता। अतः योग शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा विद्यार्थियों के चहुंमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ

Dr- Muhammad Suleman] Ucchtar Shiksha Manovigyan Advance Educational Psychology] Motilal Banarsidass Publishers-

Jasta Hariram] Aadhunik Bharat Mein Shaikshik Chintan] Kitabghar Prakashan-

Rai, Amar Nath, Modern Counselling Psychology] Motilal Banarsidass Publishers-

कुबेर सिंह गुरूपंच1, नागेश्वर प्रसाद साहू2, मूल्य शिक्षा, http%@@rjhssonline-com@HTMLPaper-aspÛ

कल्याण 'शिक्षांक' सम्पादक– राधेश्याम खेमका, गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष 1988, राष्ट्रीय शिक्षा–नीति एक विहंगावलोकन– श्री मुरारीलाल शर्मा

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन पुस्तक से, बसंत प्रताप सिंह (प्रमुख सचिव) उच्च शिक्षा विभाग

◆◆◆

भारतीय दर्शन और समाज–व्यवस्था

डॉ० मनुप्रताप
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)

भारत के वर्तमान सामाजिक जीवन की तथा उसके गुण–दोषों की विवेचना बहुत व्यक्तियों द्वारा हुई है तथा होती रहती है, परन्तु भारतीय समाज–व्यवस्था का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन इतने कम विद्वानों ने किया है कि आश्चर्य होता है।[1] इस कारण आगे दिये विचारों का समर्थन अधिकांषतः शास्त्रों के ही उद्धरणों के आधार पर है तथा केवल प्रास्ताविक विवेचना में ही जहाँ आवश्यक और सम्भव प्रतीत हुआ है वहीं कुछ विद्वानों के उद्धरण दिये गये हैं।

भारतीय समाज–रचना दर्शन पर आधारित है। इसीलिये धर्म के जितने भी ग्रन्थ हैं, सबमें इहलौकिक व्यवस्था के साथ–साथ पारलौकिक उन्नति का, ब्रह्म का तथा ब्रह्म–जीव एकता का वर्णन है। वेदों में अथर्ववेद को तो ब्रह्मवेद कहा ही गया है परन्तु अध्यात्म का वर्णन अन्य वेदों में भी उपलब्ध है।[2] वेदों के अतिरिक्त प्रत्येक पुराण में भी सभी धर्मों के वर्णन के साथ मोक्षधर्म का भी पूरा वर्णन किया गया है। स्मृतियों में मनुस्मृति का प्रारम्भ सृष्टि उत्पत्ति से होता है और मध्य में सम्पूर्ण धर्मों का वर्णन करते हुए सबके अन्त में मोक्षधर्म का विवेचन किया गया है। हारीतस्मृति के भी विवरण की यही योजना है। याज्ञवल्क्यस्मृति में सभी वर्णों और आश्रमों के धर्मों का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में अध्यात्म–तत्त्व का वर्णन किया है। ऐसा ही दक्षस्मृति में भी है। इस तथ्य को ड़ॉ. राधाकमल मुकर्जी ने स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि "जीवन की भारतीय योजना में सभी व्यक्तियों और उत्तरदायित्वों का निर्धारण अन्ततः दर्शन से ही होता है, जिसमें आत्मा–प्रकृत्ति और परमात्मा के सम्बन्धों का विवेचन है।"[3] राधाकृष्ण ने लिखा है "हिन्दुओं के व्यवहारनियमों में कामनाओं के क्षेत्र को अनन्तत्व की सम्भावना के साथ जोड़ दिया है। उसने इहलौकिक और पारलौकिक तत्त्वों को साथ–साथ जोड़ दिया है।"[4] श्रीरंगस्वामी आयंगर का कहना है "एक अमानवीय स्रोत से समाज–व्यवस्था का सनातन आधार प्राप्त होने के कारण समाज–व्यवस्था दार्शनिक के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाती है और दर्शनशास्त्र सामाजिक विचारक के क्षेत्र के अन्तर्गत। दर्शनशास्त्र के लेखक स्मृतियों को अधिकृत मान कर उनके उद्धरण देते हैं जबकि धर्मशास्त्र के लेखक मानव–सम्बन्धों और कर्तव्यों के आध्यात्मिक आधार का उल्लेख करते हैं। एक परमात्मवादी

पद्धति में नैतिकता और दर्शन को पृथक किया जा सकता है।"[5] भारतीय समाज–व्यवस्था दर्शन पर आधारित है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह केवल एक आदर्श की ही वस्तु रही है तथा उसका व्यावहारिक उपयोग नहीं रहा। धर्मशास्त्रों ने अपनी प्रत्येक व्यवस्था के व्यवहार पर पूरा जोर दिया है और उसे पालन करने की आवश्यकता बतायी है।[6] धर्मशास्त्रों ने श्रेष्ठ आदर्श स्थिति का वर्णन किया है, फिर भी व्यवहार की दृष्टि से जो उस आदर्श तक नहीं पहुँच सकते उनके लिये व्यवस्था की गयी है। इसी कारण चार वर्ण बनाये गये हैं, क्योंकि प्रत्येक वर्ण ब्राह्मण निर्धारित श्रेष्ठ जीवन का पालन नहीं कर सकता। ब्राह्मणों के लिये भी परिग्रह की अर्थात् दान लेने की निन्दा की गयी है फिर भी ब्राह्मणों की जीविका चलती रहे, इसके लिये उनकी वृत्ति के तीन साधनों में दान भी एक साधन है।[7] इस प्रकार आदर्श का ध्यान रखते हुए भी व्यावहारिकता को नष्ट नहीं किया गया है। धर्मशास्त्रों में यह व्यवस्था रखी गयी है कि प्रत्येक अपनी सर्वण भार्या से ही विवाह करे[8] और प्रतिलोम विवाह की तो बहुत निन्दा की गयी है[9] परन्तु फिर भी प्रतिलोम सम्बन्धों से उत्पन्न जातियों का वर्णन किया गया है और उन्हें समाज में (चाहे छोटा ही क्यों न हो) स्थान दिया गया है।[10] राधाकृष्ण ने भारतीय दर्शन पर विचार करते हुए लिखते हैं– "पश्चिम में दर्शन एक ऐसी वस्तु है जो कि दार्शनिकों के मस्तिष्क तक ही सीमित है। उसकी व्यावहारिक जीवन में कोई उपयोगिता नहीं है। भारत में दर्शन को व्यवहार में लाया गया है।" दर्शन और व्यवाहर का इतना श्रेष्ठ समन्वय है कि एक ओर जहाँ आदर्शवाद अपने चरम रूप में दिखाई देता है, दूसरी ओर व्यावहारिकता भी उतनी ही उत्कृष्ट है। जब व्यक्ति के सामने निर्गुण ब्रह्म से एकता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा जाता है, उस निर्गुण ब्रह्म से जो कि इन्द्रियों को अग्राह्य है और दृष्ट अनुभव से परे है, अथवा उस सम्पूर्ण विश्व के अन्दर के सभी जड़ और चेतन तत्त्वों की मूलभूत एकता को सामने रख कर उसके आधार पर जीवन में व्यवहार करने की बात की जाती है तो यह एक ऐसा आदर्शवाद है जो केवल कल्पना की ही बात प्रतीत होती है। जब कि संन्यासी का और ब्राह्मण का ऐसा त्यागमय आदर्श सामने रखा जाता है जिसकी समता आज मिलना बहुत–ही दुर्लभ है, तब वह एक कोरा आदर्शवाद (Utopia) ही समझा जा सकता है। जब प्रत्येक गृहस्थ के दैनिक जीवन के लिये बहुत कड़ा अनुशासन निर्धारित किया गया है और उसके सम्पूर्ण दिन की बड़ी कड़ी दिनचर्या बताई गयी है तब यह विचार उठता है कि इस पर कभी व्यवहार भी किया जा सकता है अथवा नहीं ? परन्तु दूसरी ओर व्यावहारिकता भी इतनी अधिक है कि मनु का यह कथन कि "न मांस खाने में दोष है, न मदिरा पीने में, न मैथुन में, क्योंकि यह

प्राणियों की (स्वाभाविक) प्रवृत्ति है," साधारण नैतिकता में विश्वास रखने वाले व्यक्ति को अखर जाता है। राजधर्म में जब शत्रु के साथ व्यवहार करने के, अथवा राजपुत्रों को वश में रखने के, अथवा विभिन्न साधनों से धन प्राप्त करने के नियम बताये गये हैं, तब उन नियमों की अनैतिकता देख कर यह स्वाभाविक है कि साधारण व्यक्ति उन नियमों के प्रति हृदय में तुच्छ भावों को धारण करे। जब वेश्याओं के विषय में स्मृतिकारों ने नियम दिये हैं[11] तब उन स्मृतिकारों की समाज–व्यवस्था के प्रति निरादर का भाव उत्पन्न हो जाना बहुत–ही स्वाभाविक है। यह सत्य है कि भारत ने ऐसी समाज–व्यवस्था बनायी जिसके द्वारा धीरे–धीरे एक आदर्श स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न किया, परन्तु यह भी सत्य है कि व्यावहारिक जीवन की सभी कमियाँ और आवश्यकताएँ भी स्वीकार की गयीं और व्यावहारिक जीवन में परिपूर्णता निर्माण करते हुए मनुष्य के दार्शनिक लक्ष्य को भी व्यावहारिक स्वरूप देने का प्रत्यन किया गया।[12]

जहाँ तक भारतीय दर्शन का प्रश्न है, भारत में छः दर्शन विख्यात हैं। परन्तु वह छः दर्शन भी परस्पर–विरोधी नहीं हैं। भारत का 'दर्शन' शब्द 'दृश्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'देखना' अतः दर्शन वह पद्धति है जिससे 'सत्य' का अथवा 'ब्रह्म' का साक्षात्कार किया जाये। इस दृष्टि से वह अंग्रेजी के Philosophy शब्द का पर्यायवाची नहीं हो सकता। मैक्समूलर जैमिनि की पूर्वमीमांसा को पश्चिमी दृष्टि से Philosophy नाम देने में हिचकता है क्योंकि उसमें वेद के कर्मकाण्ड–सम्बन्धी मन्त्रों का एकीकरण करने का प्रयत्न है फिर भी भारतीय दृष्टि से वह दर्शन ही है, क्योंकि उसमें कर्मकाण्ड के मार्ग से मनुष्य को ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग दिखाया गया है। मैक्समूलर ने यह स्वीकार किया है कि हमारी Philosophy की धारणा भारतीय दर्शन की धारणा से भिन्न है। इस भेद के कारण जहाँ पश्चिम में दर्शन की विभिन्न पद्धतियाँ परस्पर–विरोधी हो सकती हैं, कम–से–कम सब स्वतन्त्र विचारधाराएँ रखती हैं, वहाँ भारत में ऐसा नहीं है। भारत में सभी एक सत्य को देखने के विभिन्न प्रकार–मात्र हैं जिनमें मूलतः कोई भेद स्वीकार नहीं किया जाता है।[13] विभिन्न दर्शनों के विषयों का विवेचन करने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। न्यायसूत्रों में तक्र के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति (मोक्ष–प्राप्ति) का साधन बताया गया है। इन सूत्रों का प्रारम्भ यहीं से किया गया है कि निःश्रेयस् की प्राप्ति प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि सोलह तत्त्वों के ज्ञान से होती है। इसमें आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करते हुए तथा आत्मा अनित्य है यह बताते हुए कर्मफल की प्राप्ति का कारण ईश्वर को बता कर ब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। वैशेशिक में आधिभौतिक

तत्त्वों का विवेचन है और इस सबके मूल में ब्रह्म है तथा इनकी विवेचना से मोक्ष ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए यह दिग्दर्शित किया है। वैशेशिक सूत्रों में कणाद का कहना है[14] "द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, नामक पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य का तत्त्वज्ञान धर्म–विशेष (वैशेशिक) से उत्पन्न होने के कारण निःश्रेयसकारी है" और उसमें प्रारम्भ में धर्म को अभ्युदय तथा निःश्रेयसकारी बता कर इस सब धर्म के प्रमाण के रूप में वेद बताये गये हैं क्योंकि वे परमात्मा (ब्रह्म) के शब्द हैं। इतना ही नहीं इन सूत्रों में आत्मा की स्वीकृति है तथा यह कह कर कि इन्द्रियों के अनुभव सर्वगम्य न होने के कारण इन्द्रियों तथा उनकी अनुभूत वस्तुओं से परे भी कुछ है, ब्रह्म को स्वीकार किया गया है। न्याय में बुद्धि के द्वारा तथा वैशेषिक में प्रत्यक्ष संसार के विवेचन से–अर्थात् दोनों पद्धतियों में भौतिक साधनों से–इस संसार से मुक्ति की विवेचना की गयी है।

धर्म वह साधन है जो मनुष्य द्वारा अर्थ और काम के उपभोग को मर्यादित करता हुआ उसे मोक्ष की ओर ले जाता है। इसीलिये धर्म की विषेषिक सूत्र में व्याख्या की गयी है "जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।"[15] इससे श्रेष्ठ और पूर्ण धर्म की व्याख्या हो ही नहीं सकती। वायुपुराण में भी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है "स्मृतियों ने कुशल करने वाले कर्म को धर्म तथा अकुशल करने वाले कर्म को अधर्म बताया है। धर्म का धारणा और धृति अर्थ होने के कारण जो धारण करता है जिससे व्यवस्था बनी रहती है उसे धर्म कहा जाता है। जिससे धारणा नहीं होती और जिससे महत्व (सुयष अथवा सम्मान) प्राप्त नहीं होता उसे अर्धम कहते हैं। इस प्रसंग में आचार्य लोग उसे धर्म कहते हैं जिसके आचरण से इष्ट की प्राप्ति हो।"[16] इस व्याख्या में भी इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की कुशलता अथवा दोनों प्रकार की सिद्धि की ओर संकेत किया गया है। क्योंकि धर्म शब्द 'धारणा' का अर्थ व्यक्त करने वाली 'धष' धातु से बना है इसलिये धर्म का यह भी भाव है कि उससे समाज की धारणा होती है। अर्थात् धर्म के आधार पर व्यक्ति तो अर्थ और काम का मर्यादित उपभोग करते हुए मोक्ष की ओर बढ़ता है परन्तु क्योंकि धर्म के द्वारा अर्थ और काम के उपभोग की मर्यादाएँ निश्चित रहती हैं इसलिये उसके द्वारा समाज के अन्दर व्यवस्था भी स्थापित होती है और अर्थ और काम के अनियंत्रित उपभोग से समाज में अधिकाधिक प्राप्ति की लालसा के कारण उत्पन्न पारस्परिक प्रतियोगिता और संघर्ष रुक कर समाज के सुखी और समन्वयात्मक जीवन की व्यवस्था का साधन है। धर्मशास्त्रों में जिस धर्म का अर्थात् जिस समाज–व्यवस्था का वर्णन किया गया है वह ऐसा ही धर्म

है जो अर्थ और काम के नियन्त्रित उपभोग की अनुमति देते हुए मनुष्य की वृत्ति मोक्ष की ओर मोड़ देता है और समाज–जीवन में व्यवस्था उत्पन्न करता है।

सन्दर्भ सूची

रंगस्वामी आंगर–हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एकॉर्डिंग टु धर्मशास्त्राज पृ. 254

मैकड़ोनल–हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ.189

इण्डियन स्कीम ऑफ लाइफ, पृ. 83

रंगस्वामी आंगर–हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एकॉर्डिंग टु धर्मशास्त्राज पृ. 79

रंगस्वामी आंगर–हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ एकॉर्डिंग टु धर्मशास्त्राज पृ. 25

मनुस्मृति 1 |108

मनुस्मृति 1 |17

आप० 2 |6 |13 |1

मनु० 10 |41, गौतम 4 |20

याज्ञ० 1 |91–96

कौटिल्य–अर्थशास्त्र अधिकरण 13, 1 |5,1 |7,5 |2 शान्तिपर्व 140 अध्याय

मनुस्मृति 2 |209

सिक्स सिस्टम्स ऑफ फिलॉसोफी, पृ. 197

न्यायसूत्र 1 |1 |1, 3 |1 |19

महाभारत 1 |2

महाभारत 59 |27–28

◆◆◆

जे. कृष्णमूर्ति जी के विचारों में वर्णित मानवीय मूल्यों की वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में सार्थकता

मन्जू बघेल और प्रीती

शोधछात्रा, शिक्षा संकाय,दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) आगरा

प्रस्तावना

जे0 कृष्णमूर्ति जी को सम्पूर्ण विश्व में अब तक के महानतम धार्मिक शिक्षकों में से एक माना जाता है। फिर भी उन्होनें स्वयं को किसी धर्म,सम्प्रदाय तथा किसी राजनैतिक विचाधारा से नहीं जोड़ा इसके विपरीत उनका मानना था कि ये सब चीजे मनुष्य–मनुष्य के बीच अलगाव पैदा करती है। इस प्रकार इनकी शिक्षा मानव निर्मित सारी दीवारों, धार्मिक, विश्वासों राष्ट्रीय बटवारों और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से मानवता का सन्देश देती है। जे0 कृष्णमूर्ति जी की मृत्यु सन–1986 में 17 फरवरी को 90 वर्ष की अवस्था में अमेरिका के कैलिफोर्निया स्थिति ओजाइ वैली, ओजाइ शहर मे हुई। उन्होंनें ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के गहन प्रयास किये। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा, धर्म संस्कृति, समाज, जीवन, सभ्यता, मुक्ति, सदाचार, मूल्य, आदर्श, कल्याण, परोपकार तथा आध्यात्म से लेकर जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गहन चिन्तन–मनन किया तथा शिक्षा व्यवस्था में जीवन के इन सास्वत मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने व्यक्ति की शिक्षा के सन्दर्भ मे मुक्तमन, आन्तरिक सौन्दर्य, चिरन्तन जीवन, प्रेम, अनुभूति नूतन संस्कृति तथा समग्र मानव के निर्माण की बात की । भारतीय प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को न केवल बढ़ावा दिया बल्कि विदेशों मे प्रचार–प्रसार किया इन्होने अपने दार्शनिक चिन्तन के आधार पर शिक्षा की एक नई रुपरेख निर्मित की। आधुनिक भारतीय चिन्तकों मे जे0 कृष्णमूर्ति जी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा के माध्यम से अपने दिशा निर्देषो को मूर्तरुप प्रदान किया कृष्णमूर्ति विधालयो की वैश्विक स्तर पर स्थापना की । कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की स्थापना 1928 मे हुई जो शिक्षा मे आमूल–चूल सुधार लाने के लिए निरन्तर प्रयासरत है। अतः इस तथ्य को निर्विवाद रुप से स्वीकारा जा सकता है कि वर्तमान समय मे जे0 कृष्णमूर्ति जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना देश की वर्तमान पीढ़ी एवं भावी पीढ़ी के लिए नितान्त आवश्यक होगा क्योंकि जे0 कृष्णमूर्ति जी ने भारतीय सभ्यता संस्कृति को

वर्तमान सभ्यता संस्कृति की नवीन धारा के साथ जोड़ने का प्रयास किया । इन्होंने आदिकालीन भारतीय जीवन दर्शन को नए रुप में परिभाषित कर शिक्षा को समसामयिक समाज की नवीन धारा मे समान गति से प्रवाहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । इस दृष्टिकोण से शोधकत्री के द्वारा जे0 कृष्णमूर्ति जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन कर उनकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सार्थकता को जानने हेतु सम्बन्धित विषय को अध्ययन का आधार माना।

अध्ययन के उद्देश्य

मानव जीवन में सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए उद्देश्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है उद्देश्यों से हमें किसी भी कार्य को करने का निर्देश प्राप्त होता है किसी भी दार्शनिक चिन्तक का चिन्तन जीवन के मूल उद्देश्यों को प्रस्तुत करा है शोध समस्या के सन्दर्भ मे उद्देश्य निम्न प्रकार से है–

(1) जे॰ कृष्णमूर्ति जी के विचारों में वर्णित मानवीय मूल्यों का अध्ययन कर उनके शिक्षा के स्वरूप को जानना।

(2) जे॰ कृष्णमूर्ति जी के विचारों में यथा शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण पद्वति, पाठ्यक्रम और विधालय प्रबन्ध की शैक्षिक दृष्टिकोण से व्याख्या करना।

(3) जे॰ कृष्णमूर्ति जी के विचारों में वर्णित मानवीय मूल्यों की शिक्षा में समसामयिक उपादेयता ज्ञात करना।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा

जे0 कृष्णमूर्ति जी ने कहा कि शिक्षा का सर्वोत्तम कार्य समग्र व्यक्तित्व का विकास करना है । 'एजूकेशनल ड़ाइलेक्टिव ' (1991) जो जीवन के सभी पक्षों को उचित प्रकार से समग्रता के साथ प्रयोग कर सके। वर्तमान की शिक्षा तकनीकी पर अधिक केन्द्रीयकरण के कारण पूरी तरह से विफल है। क्योंकि यह मानव को विनाश की ओर ले जा रही है। द होल मोमेण्ट ऑफ लाइफ इज लर्निग (1856) नामक पुस्तक में कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा को जीवन वास्तविकता के सन्दर्भ में जोड़ा है। कि असली शिक्षा क्या है, क्या धर्म और कर्मकाण्डीय ग्रन्थ रटना वास्तविक शिक्षा है या अपने अनुभवों से सर्वमान्य ज्ञान का सृजन। यहां पर कृष्णमूर्ति जी ने जीवन के प्रत्येक क्षण को सीखना बताया है। एजूकेशनल ड़ाइलेक्विव (1991) नामक

पुस्तक में कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा के सन्दर्भ मे राजघाट स्कूल (राजघाट कोर्ट वाराणसी) के शिक्षक और छात्र और से प्रत्यक्ष शैक्षिक संवाद किए है। जिसमें शिक्षा के स्वरुप, शिक्षा के कार्य, शिक्षा का उपयोग बताया है जो विभिन्न परिस्थितियों मे स्वयं को सामंजित करने, समस्याओं का समाधान करने तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने से है जो व्यक्ति की आन्तरिक, बाह्य सभी प्रकार की सीखी गयी अभियोग्यताओं के उत्कृष्ट रुप से प्रयोग करना सम्मिलित है। एजूकेशन इस द सिग्नीफिकेन्स ऑफ लाइफ (तृतीय संकलन–2000) नामक पुस्तक में कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षण और अधिगम उपागमो पर विस्तृत चर्चा की है तथा होलिस्टिक एजूकेशन को दिया तथा शिक्षण और अधिगम के होलिस्टिक उपागम की बात की है।

आधुनिक शिक्षा के सन्दर्भ में जे0 कृष्णमूर्ति जी के विचार

आधुनिक शिक्षाविदों जे0 कृष्णमूर्ति जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है जॉन जैक पी0 मिलर(1995)कृष्णमूर्ति एण्ड होलिस्टिक एजूकेशन ;ऑन्टारियो इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन, टोरन्टो कनाड़ा । जे0 कृष्णमूर्ति जी ने एक महान वैश्विक शिक्षक के रुप में आजीवन शैक्षिक संवाद किए और को निरन्तर व व्यापक सन्दर्भ में अभिव्यक्त किया। जे0 कृष्णमूर्ति जी तत्कालीन अर्थात आधुनिक शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं थे उन्होने अपने शैक्षिक जीवन अनुभव किया कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली वैज्ञानिक और तकनीकी की अति के परिणामस्वरुप पूरी तरह से भौतिकवादी होती जा रही है जिससे सम्पूर्ण मानवता खतरे मे पड़ चुकी है। उन्होंने शिक्षा के स्वरुप को परिवर्तित करने के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था विकसित की जो आगे चलकर जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की अन्तर्गत उत्कृष्ट शिक्षण संस्थाओं मे संचालित है।

शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यक्ति अन्तिम सत्यता की पहचान कर सके सही और गलत के सन्दर्भ मे उचित विवेक प्राप्त कर सके, अपने स्व का आत्मसाक्षात्कार कर सके तथा आत्मानुभूति का अनुभव कर सके। जे0 कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य के संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों का एकीकृत रुप से सन्तुलित विकास करना। जे0 कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य इस प्रकार से है–

(1) व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना।

(2) समन्वित रुप से तकनीकी, वैज्ञानिक और मानवीय गुणों का विकास करना।

(3) जीवन की सार्थकता से अभिभूत कराना।

(4) आपसी भेदभाव को दूर करना।

(5) एक सर्व सक्षम मानव का निर्माण करना।

(6) सामाजिक और राष्ट्रीय बाधाओं को दूर करना।

(7) प्राप्त किए गए ज्ञान को समन्वित करने की क्षमताओं का विकास करना।

(8) पूर्वाग्रह रहित शिक्षण कार्य के वातावरण का निर्माण करना।

(9) अपने आसपास की चीजों को विश्लेषित करने की क्षमता (आत्मज्ञान) का विकास करना।

(10) अपने स्व का आत्मसाक्षात्कार करा सके।

(11) आत्मानुभूति का अनुभव करा सके।

शिक्षा के जींवनोपयोगी सिद्धान्त

जे0 कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षा के सैद्धान्तिक स्वरुप को अधिक महत्व नहीं दिया उनका मानना था कि दैनिक जीवन की क्रियाओं को यदि प्रत्यक्ष रुप से शिक्षा से जोड़ दिया जाएगा तो इस प्रकार की शिक्षा अधिक उपयोगी व सार्थक होगी। प्रचलित शिक्षा व्यवस्था मे जीवन की क्रियाओं को प्रत्यक्ष रुप से शिक्षा से नहीं जोड़ा गया है। द सिग्नीफिकेन्स ऑफ एजूकेशन (1953) मे शिक्षा को जीवन की वास्तविकता के सन्दर्भ में जोड़ा है। इस विषय पर जे0 कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षक, छात्र तथा अभिभावकों से प्रत्यक्ष रुप से व्यापक संवाद किए है । व्यापक संवादों के आधार पर निष्कर्षित शिक्षा को एक नए स्वरुप मे कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे अनुप्रयोग किया गया है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का सिद्धान्त

जे0 कृष्णमूर्ति जी ने अनुभव किया कि वर्तमान मे सम्पूर्ण विश्व मे

जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली प्रचलित है वह व्यक्तित्व के कुछ पक्षों का विकास अधिकतम रुप से करती है वही कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाता जिससे व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। द सिग्नीफिकेन्स ऑफ एजूकेशन (1953) मे शिक्षा को जीवन की वास्तविकता के सन्दर्भ में जोड़ा है। इस पुस्तक मे उन्होने शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास के लिए कहा है उन्होने मानव के चारित्रिक निर्माण पर ध्यान दिया है कि वर्तमान भौतिकवादी समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए एकीक्रत उपागमों का प्रयोग करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।देश विदेशो में संचालित जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास के लिए एकीक्रत शिक्षण उपागमों का प्रयोग किया जाता है ।

जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं के रुप मे शिक्षा की नवीन संकल्पना :

जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन द्वारा देश विदेशों में संचालित कृष्णमूर्ति की शिक्षण संस्थाओं शिक्षा नवीन संकल्पना को विकसित किया गया है जो विभिन्न प्रकार की शिक्षण क्रियाओ और उपागमों का एकीक्रत ,समन्वित स्वरुप है जो कि शिक्षा की पूर्णता को दर्शाता है। जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाऐं आवासीय पद्धति पर आधारित है जिनमे विशेष देखरेख और शिक्षा के माध्यम से बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिए एकीक्रत शिक्षण उपागमों का प्रयोग किया जाता है । इन शिक्षण संस्थाओं का संचालन 1928 मे स्थापित कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन के द्वारा किया जाता है।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रमः

शिक्षा के पाठ्यक्रम के सन्दर्भ मे जे0 कृष्णमूर्ति जी ने कहा कि वर्तमान जो पाठ्यक्रम चल रहे हैं वह उबाऊ तथा बोझिल है। पाठ्यक्रम का निर्माण मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक सिद्वान्तों के एकाकृत उपागम के आधार पर करना चाहिए। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने पहले से प्रचलित किसी प्रकार के पाठ्यक्रम को नकारा नहीं बल्कि परिवर्तित रुप मे लागू किया है । उन्होने जीवन से प्रत्यक्ष रुप से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का नया स्वरुप विकसित किया। जे0 कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम निम्न प्रकार से होना चाहिए–

(1) पाठ्यक्रम कार्य करने की क्षमताओं को विकसित करने, तथा बढ़ाने मे

सहायक हो।

(2) पाठ्यक्रम नवीन तकनीकी विकास और शोधकार्यो को बढ़ावा दे व देशभक्ति और मानवीय गुणों का विकास करे।

(3) पाठ्यक्रम समस्या समाधान के कौशलों और ज्ञान का विकास करे व पाठ्यक्रम शोध को बढ़ावा दे तथा उनमे रुचि उत्पन्न करे।

(4) पाठ्यक्रम छात्रों मे स्वअभिव्यक्ति की क्षमता को विकसित करे।

(5) पाठ्यक्रम छात्रों मे राष्ट्रीय समग्रता और राष्ट्रीय मानवता का विकास करे।

(6) पाठ्यक्रम छात्रों मे सीखने की रुचि और उत्सुकता का विकास करे।

(7) पाठ्यक्रम छात्रों मे सौंन्दर्यात्मक निर्णय निर्माण की क्षमता का विकास करे।

(8) पाठ्यक्रम छात्रों मे आत्मज्ञान और आत्मअभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करे।

शिक्षण पद्वतियॉ

शिक्षण पद्वतियॉ शिक्षा का रुप निश्चित करती है जे0 कृष्णमूर्ति जी ने पुस्तक केन्द्रित, विषय केन्द्रित, शिक्षक केन्द्रित तथा बोझिल प्रकार की शिक्षण पद्वतियों को दोषपूर्ण बताया। उन्होनें स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित शिक्षण पद्वतियों के द्वारा ही उत्कृष्ट शिक्षा पद्वति को विकसित किया जा सकता है। जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षण व्यवस्था में छात्र केन्द्रित, क्रिया केन्द्रित और स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित शिक्षण पद्वतियों के प्रयोग द्वारा ही उत्कृष्ट शिक्षा पद्वति को विकसित किया गया है। ये शिक्षण संस्थाऐं सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा केन्द्रों के रुप में अपनी आलौकिक शिक्षण पद्वतियों के लिए विख्यात है।

कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षण विधियॉ

जे0 कृष्णमूर्ति जी ने किसी भी प्रकार की शिक्षण विधियों की आलोचना नहीं की है।'एजूकेशनल ड़ाइलेक्विअव' (1991) बल्कि उन्होनें व्याख्यान विधि के परिवर्तित स्वरूप संवाद विधि का अधिकतम प्रयोग किया इनका मानना था कि शिक्षा केवल शिक्षक द्वारा दिए व्याख्यान से पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकती बल्कि इसमे छात्र को भी अपनी अभिव्यक्ति की पूर्ण

स्वतंत्रता हो तभी शिक्षा पूर्णता को प्राप्त कर सकती है इसलिए न तो छात्र केन्द्रित शिक्षण विधियाँ हो और न ही शिक्षक केन्द्रित शिक्षणविधियों का प्रयोग किया जाय बल्कि इनको एकीकृत रुप मे आवश्यकता के अनुरुप प्रयोग किया जाय। जे0 कृष्णमूर्ति जी के अनुसार शिक्षा की निम्नलिखित शिक्षण विधियॉ होनी चाहिए–

(1) चर्चा विधि के द्वारा पाठ्यक्रम को संशोधित करके पढ़ाया जाना चाहिए तथा छात्र शिक्षक के मध्य किसी प्रकार की ऑथोरिटी नहीं होनी चाहिए।

(2) संवाद शिक्षणविधि ।

(3) स्वतंत्र कक्षाकक्ष वार्तालाप शिक्षण विधि।

(4) स्वतंत्र वातावरण में करके सीखना विधि।

(5) प्रोजेक्ट या योजना विधि।

(6) कहानी या व्याख्यान विधि।

(7) प्रयोगात्मक विधि।

(8) दार्शनिक शिक्षण विधि।

(9) श्रवण–मनन विधि।

(10) विश्लेषण विधि के द्वारा अपने आसपास की चीजों को विष्लेशित करने की योग्यता का विकास।

विभिन्न विषयों की शिक्षा के सन्दर्भ मे विचार

जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षण व्यवस्था में छात्रों के संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक विकास के विभिन्न प्रकार के शिक्षण विषयों को करके सीखने के सिद्वान्त के आधार पर प्रयोग किया जाता है। 'ऑन एजूकेशन जिद्दू कृष्णमूर्ति(1974)'जे0 कृष्णमूर्ति जी के विभिन्न विषयों की शिक्षा के सन्दर्भ मे विचार निम्नलिखित प्रकार से है–

शारीरिक क्रियाकलाप के सन्दर्भ मे विचार

"स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। "यह अत्यंन्त

पुराना वाक्यांश है लेकिन जे0 कृष्णमूर्तिजी का स्कूल भ्रमण क्रिया आधारित अधिगम इसी वाक्यांश की पूर्ति के सन्दर्भ मे है जिससे छात्रो का मानसिक विकास के साथ–साथ शारीरिक विकास भी होता है जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की संचालित शिक्षण संस्थाओं में आवासीय शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

कला और सौन्दर्यात्मक मूल्य के सन्दर्भ मे विचार

जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षण व्यवस्था में छात्रों में कला और सौन्दर्यात्मक मूल्यों विकास के लिए कृष्णमूर्ति जी ने अपनी शिक्षण व्यवस्था मे छात्रों आन्तरिक, कलात्मक और भावात्मक विकास के लिए कला और सौन्दर्यात्मक मूल्यों की शिक्षा पर ध्यान दिया है।

कार्य सहभागिता एवं उत्तरदायित्व के सन्दर्भ मे विचार

कार्य सहभागिता एवं उत्तरदायित्व की भावना के विकास जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षण व्यवस्था में छात्रों को विभिन्न प्रकार के कार्य और उत्तरदायित्व को दिया जाता है जिससे छात्रों को अपने सामाजिक कौशलो का विकास और निर्वाहन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। शायःकालीन वार्ता और सभा मे छात्रों कार्यो का आवंटन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

तकनीकी एवं विज्ञान के सन्दर्भ मे विचार

वर्तमान परिदृश्य वैश्विक ग्राम की परिकल्पना पर आधारित है इसलिए शिक्षा में विज्ञान और तकनीकी पर बल दिया जाना चाहिए। जे0 कृष्णमूर्तिजी ने अपने विचारों को संवाद और लेखन के द्वारा व्यक्त किया जिन्हें विज्ञान व तकनीकी की सहायता से वीडियो –आडियो मे संरक्षित किया गया है। जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षण व्यवस्था में छात्रों विज्ञान और तकनीकी विकास के लिए उत्तम प्रकार की कम्प्यूटर प्रयोगशाला तथा अन्य प्रयोगशालाओं का उपयोग वैश्विक शिक्षण व्यूह रचनाओं और शिक्षण विधियों के द्वारा प्रयोग किया जाता है।

भाषा के सन्दर्भ मे विचार

भाषा आपसी समझ और व्यवहार के लिए सम्प्रेषण का प्रमुख

माध्यम है जे0 कृष्णमूर्ति जी ने अपने प्रकार विचारों और ज्ञान को सम्प्रेषित करने के लिए संवाद शैली का प्रयोग किया है चाहे वह शिक्षक, छात्रों या अभिभावकों के साथ संवाद हो या किसी सभा में इसलिए भाषा का विकास अत्यंत आवश्यक है। विभिन्न भाषाओं का ज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय बाधाओं को दूर करता है।

अध्ययन की आवश्यकता सम्बन्धी निष्कर्ष

वर्तमान में हमारी शिक्षा के समक्ष जीवन के विभिन्न पक्षों–सामाजिक, राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक आदि से सम्बन्धित अनेक जटिल समस्याओं के समाधान तथा समाज और राष्ट्र के विकास की अनेक चुनौतियों हैं, आज विश्व के सामने जो चुनौतिया आयी हैं हमें उनका समाधान जे0 कृष्णमूर्ति जी के शिक्षण विचारों कों व्यावहारिक रूप में लाने के कारण वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानवीय मूल्यों के विकास द्वारा हल किया जा सकता है इसी कारण से जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन की शिक्षण संस्थाओं मे संचालित शिक्षा व्यवस्था में प्रमुख स्थान दिया गया। जे0 कृष्णमूर्ति जी का शैक्षिक दर्शन संरचनावाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद तथा अन्य सभी शैक्षिक दर्शनों का एकीकृत रुप है जे0 कृष्णमूर्ति जी के शैक्षिक दर्शन मे आध्यात्मिकता और भौतिकता का एकीकृत और समन्वित रुप है । कृष्णमूर्ति जी ने एक वैश्विक शिक्षक के रुप मे शिक्षाशास्त्री समाजसुधारक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक गुरु के रूप मे कार्य करते हुए हुए धार्मिक और राजनैतिक संकीर्णताओ से स्वयं को दूर रखा। जे0 कृष्णमूर्ति जी ने शिक्षाको जे0 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं के रुप मे एक विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को विकसित किया है जो उनके शैक्षिक विचारों की उपज ही उपज है। जे0 कृष्णमूर्ति जी के शैक्षिक मूल्यों से प्रेरित होकर बालकों में मानवीय मूल्यों की चेतना विकसित कर सकते हैं –शिक्षक स्वयं को छात्रों के समक्ष एक आदर्श के रूप में विकसित करे।

(1) बालक विद्यालय में सर्वाधिक समय व्यतीत करता है और वह शिक्षक से सर्वाधिक प्रभावित होता है अतः शिक्षक को अपने व्यवहार के प्रति सजग एवं सचेत रहना चाहिए।

(2) छात्र–छात्रों को सद्गुणी बनाने के लिए पाठ्य–सहगामी क्रियाओं द्वारा बालकों में इन में वर्णित मानवीय मूल्यों को विकसित किया जा सकता है ।

(3) बालकों को क्रिया आधारित शैक्षणिक वातावरण में जीवन की

वास्तविकताओं से सम्बन्धित सभी प्रकार सम्भावी क्रियाओं का ज्ञान करना चाहिए ।

(4) बालकों में ध्यान क्रियाओं के द्वारा स्वअनुभूति और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना चाहिए।

(5) छात्रों में एकीकृत उपागमों की सहायता से धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों सभी प्रकार के मानवीय मूल्यों विकास करना चाहिए।

(6) पाठ्यवस्तु का निर्माण एकीकृत उपागमों की सहायता से करना चाहिए तथा शिक्षण की एकीकृत शिक्षण विधियों का उपयोग प्रयोजन के अनुसार करना चाहिए।

(7) विद्यालय छात्रों सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न प्रकार की धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक गतिविधियों के साथ मानवीय मूल्यों को अवसर उपलब्ध कराने वाले समागम केन्द्रो के रूप में होने चाहिए।

(8) शिक्षक तथा छात्रों के बीच किसी प्रकार की झिझक नहीं होनी चाहिए।

अतः विद्यालय में एकीकृत शैक्षणिक गतिविधियों के द्वारा सम्पूर्ण शैक्षणिक वातावरण का निर्माण किया जा सके जिससे छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त आवश्यक शैक्षिक दशाओं का निर्माण कर विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक मूल्यों का निर्माण किया जा सके जिससे अन्तर्राष्ट्रीय भेदभाव और बाधायें समाप्त हो जाऐं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

कृष्णमूर्ति जे0,एजूकेशन इस द सिग्नीफिकेन्स ऑफ लाइफ, (1876) कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया,वसंत विहार प्रकाशनः 124 ग्रीनवेज रोड चेन्नई 60008

कृष्णमूर्ति जे0,एजूकेशनल ड़ाइलेक्विव,(1991) राजघाट शिक्षा संस्थान कोर्ट प्रकाशन कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, राजघाट कोट वाराणसी :221001

कृष्णमूर्ति जे0, द होल मोमेण्ट ऑफ लाइफ इज लर्निंग, (1856) कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया,वसंत विहार प्रकाशनः 124 ग्रीनवेज रोड चेन्नई 60008

कृष्णमूर्ति जे0,एजूकेशन इस द सिग्नीफिकेन्स ऑफ लाइफ, तृतीय संस्करण

(2000) कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया,वसंत विहार प्रकाशनः 124 ग्रीनवेज रोड चेन्नई 60008
कृष्णमूर्ति जे0, ऑन एजूकेशन जिद्दू कृष्णमूर्ति, (1974) कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन कैलीफोर्निया प्रकाशनः ओजाइ वैली कैलीफोर्निया अमेरिका ।
जॉन जैक पी0 मिलर, (1956) कृष्णमूर्ति एण्ड होलिस्टिक एजूकेशन ; ऑन्टारियो इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन, टोरन्टो कनाड़ा
होरेन लॉरेन्स किक्र, (1971) "द स्ट्रक्चर ऑफ कृष्णमूर्ति फिनोमिनोलॉजीकल आब्जरवेषन एण्ड इट्स साइकोलॉजीकल इम्पलीकेशनस", पीएच0 डिस0 यूनाइटेड स्टेट्स एजूकेशनल यूनिवर्सिटी यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका)।
जॉन फ्रान्सिस पी0, (1990)"द स्टिलनैस ऑफ माइण्ड जिद्दू कृष्णमूर्ति चैलेन्ज टू साइकोलॉजी" साइकोलॉजी डजर्टेषन द स्कूल ऑफ प्रोफ0 साइकोलॉजी ऑफ राइट स्टेट यूनिवर्सिटी (अमेरिका)।
गान्धी फिरोज देशभाई, (1973) "द साइकोलॉजीकल फिलोसॉफी ऑफ जिद्दू कृष्णमूर्ति" एम0 एड0 इन एजूकेशन डजर्टेषन यूनिवर्सिटी ऑफ इलीनियस एट अर्बन कैम्पेन (अमेरिका)
www.jkrishnamurti.orgèworldwide-informationèfoundations.php
www.theschoolkfi.org www.kfionline.orgen.wikipedia.org\wiki\ Krishnamurti_Foundation
www.youtube.comèuser\KFoundation
www.theschoolkfa.org
www.kfistudy.org
jkrishnamurti.orgèdefault.php

◆◆◆

धर्म, दर्शन एवं मानवीय मूल्य

डॉ० अर्चना गिरि

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बरेली कालेज(उ०प्र०)

धरति विश्वं यः सः धर्मः ये धर्म शब्द की शाब्दिक उत्पत्ति है जिसका अर्थ है जो विश्व को धारण करे वह धर्म है। जो मनुष्य की रक्षा करे वह धर्म है। श्रुति और स्मृति में जो बताया गया है वह धर्म है। वैषेषिक दर्शन भी ऐहलौकिक अभ्युदय और परम कल्याण की प्राप्ति को धर्म मानता है। **(1)** वेद ने भी अनेक दृष्टान्त धर्म के बताये हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया है–

वेदःस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतत् चतुर्विधं पाहु साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्।।(2)

अर्थात् वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अनुसार कार्य करना–यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण कहा गया है। आगे इनके गुणों को बताते हुए कहा गया है कि–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।(3)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम (अपने मन को वष में रखना), अस्तेय (चोरी न करना) शौच (बाहरी और आन्तरिक पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वष में रखना), धी (बुद्धि), विद्या (अध्यात्म विद्या), सत्य (वाणी और मन की यथार्थता) और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं। वेदोक्त धर्म का पालन करने के कारण ही हमारा देश सनातन धर्म का केन्द्र माना जाता है। धर्म का अद्भुत प्रभाव है। इसी के प्रभाव से यह ब्रह्माण्ड स्थित है। इसी के प्रभाव से मानव ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति करता है। इसी से मनुष्य का उच्च आचरण, उच्च विचार और उच्च चरित्र से युक्त उच्च जीवन बनता है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य धर्म पालन को अपना परम धर्म समझता है। धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक का क्षत्रिय उत्सर्ग कर देते थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने धर्म के कारण ही समस्त पृथ्वी का त्याग कर दिया था। महाभारत के उद्योगपर्व में भी धर्म के विषय में कहा गया है कि–

न जातु कामात् न भयात् न लोभात्,
धर्म त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः।
नित्योधर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये,
जीवो नित्यो हेतु रस्य त्वनित्यः।।(4)

अर्थात् मनुष्य काम, लोभ, भय अथवा जीवन के लिए भी धर्म का त्याग न करे क्योंकि धर्म नित्य (स्थायी है) सुख और दुःख दोनो हीं अनित्य हैं। जीव नित्य है उसका शरीर धारण करने का कारण अनित्य है। मनुस्मृति में तो यहाँ तक कहा गया है कि–

नामुत्र हि सहायार्थ पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिः धर्मतिष्ठति केवलः।।(5)

अर्थात् पिता, माता, पुत्र, धर्मपत्नी और जाति वाले कोई भी परलोक में मरने वाले की सहायता नहीं करता, केवल एक धर्म ही सहायता करता है। वही साथ जाता है। इसलिए परलोक के सहायतार्थ प्रतिदिन धर्म का संचय करना चाहिये। इस प्रकार के वचन महाभारत तथा पुराणों में भरे पड़े हैं। क्योंकि धर्म के विरूद्ध आचरण करने वाला सुख नहीं पाता है। शास्त्रों में धर्महीन मनुष्य को पशु कहा गया है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन पशुओं में भी है केवल धर्म ही है जो पशु से विशेष है। शंकराचार्य ने भी कहा है कि वह मनुष्य पशु है जो धर्म नहीं करता–

पशोः पशु को न करोति धर्मम्।(6)

धर्म हमारे जीवन से इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि हमारे देवी देवता भी उसका अनुसरण करते दिखाई पड़ते हैं। ''ऋग्वेद में गणपति को सत्कर्मों का पूरक कहा गया है, वे अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियों के अधिष्ठाता हैं।''(7) आराध्य–आराध्यक के मध्य ददाति प्रतिगरस्ह्याति की उदात्त भावना ही धर्म को जन्म देती है। मनुष्य के सामने जब तक निश्चय की स्थिरता, कर्म करने की शक्ति और कोई आदर्श न हो तब तक उसका धर्म स्पष्ट नहीं हो सकता है। व्यावहारिक भाषा में देखा जाये तो धर्म का मुख्य अर्थ है कार्य करने की कुशलता जो स्वयं के लिए और दूसरों के लिए कल्याणकारी हो। धर्म के गुणों को राक्षसी स्वभाव भी पहचान लेता है जैसा कि–मारीच ने बाल्मीकि रामायण में राम को धर्म का मूर्तिमान शरीर कहा है।(8) यदि आपको श्रेय चाहिए तो धर्म की शरण में जायें क्योंकि असत्य, अज्ञान और अधर्म ही आपके जीवन का वह अन्धकार है जो आपको प्रकाश की ओर नहीं ले जा सकता है। हम सभी को अपने शरीर और मन से सत्य और ज्ञान का युद्ध लड़ना ही पड़ेगा। तभी धर्म का स्वरूप स्पष्ट होगा।

मायामोह के पाश से बँधा जीव मृगमरीचिकामय पद का, प्रतिष्ठा का, अधिकार, ऐश्वर्य आदि का इतना लोभी हो गया है कि उसको अपने अन्दर का अवगुण दिखाई नहीं दे रहा है। आज आवश्यकता इस बात की

है कि षिषु धर्म की शिक्षा संस्कार के रूप में परिवार से ही प्राप्त करे। जाति विशेष में न बँधकर वह धर्म की मूल भावना को ही समझे। श्रीराम में धर्म का ज्ञान भी उनके कुलगुरू वशिष्ठ ने ही कूट–कूट कर भरा था। यद्यपि वे महामानव थे परन्तु ज्ञान बिना गुरू को प्राप्त ही नहीं होता है। आज उन्हीं के चरित्र का अनुसरण संसार कर रहा है। आज मातृ पितृ भक्ति, बन्धुजन स्नेह, प्रजावात्सलय आदि गुण प्रषंसनीय और अनुकरणीय हैं। स्वकर्म ही स्वधर्म है। ऐसा महात्मा गाँधी कहते हैं। लोभ ही रावण बन कर घूमता है। शान्ति ही सीता है जो प्रत्येक मनुष्य का कल्याण करती है। इस संसार में प्रत्येक जीव कर्म करने के लिए ही आया है। इसलिए मानवीय गुणों का ग्रहण प्रथम प्रयास होना चाहिए। दया, शान्ति, धैर्य आदि गुण मानव जीवन को सुखमय बनाते हैं। मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। इसी से दानवी शक्तियों का संहार होता है। राम और रावण का चरित्र सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा उदाहरण है।

धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक हैं। दर्शन शब्द दृष् धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय लगाकर बना है। इसका अर्थ होता है जिसके माध्यम से देखा जाये। यहाँ देखने से तात्पर्य ज्ञान प्राप्त करने से है। ज्ञान प्राप्ति के अनेक साधन हैं। वे सभी प्रत्यक्षतः प्रमाणित है। तत्वज्ञान इतने सूक्ष्म हैं कि वे अनुभूत ही हो सकते हैं। धर्म और मानवीय मूल्यों को भली–भाँति विवेचित करने के लिए सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों तत्वों को जानना आवश्यक है। इसी कारण दर्शन भी अलग–अलग तत्वों की व्याख्या करते हैं। ज्ञान चक्षु एवं प्रज्ञाचक्षु जैसे शब्द कठिन तपस्या के बाद ही अवतरित होता है। दिव्यचक्षु का वर्णन गीता में भी आता है। जहाँ कृष्ण ने अर्जुन को विराट स्वरूप का दर्शन कराया। दर्शन ही यह बताता है कि सुख दुख मोह प्रवृत्ति को लेकर ही प्रत्येक जीव आता है। इसी में व्यवस्था बनाने के लिए मानवीय मूल्यों की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि कर्मों का फल भोगना अवश्यभांवी है। अज्ञानी मनुष्य ही अहंकार के वशीभूत होकर अपना वैचारिक पतन करता है और कर्म भोग को भोगता है। इसलिए दर्शन अज्ञानता को दूर करने में सहायक होता है।

आज मानवीय मूल्यों की शिक्षा पुनः सामाजिक धरातल पर अनुभव का विषय बनी हुई है। मानव से मानव का सम्बन्ध प्रेमपूर्ण हो इसी का प्रयास किया जा रहा हे। इसमें धर्म और दर्शन ही वह सेतु है जो बड़े साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जीवन का परम लक्ष्य ही शान्ति है। दुःख को दूर करने का ही प्रयास दर्शन में प्रकट है। मानव असीम आनन्द की प्राप्ति के लिए अनैतिक और अधर्म युक्त कर्मों की ओर भागने लगता है

और अपने दुःख का कारण स्वयं बनता रहता है। गीता भी कहती है कि–

तत्र च बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरूनन्दन।।(9)

यहाँ ज्ञानियों के अनुभव और वेदांग ज्योतिष अंग को भी मान्यता दी गई है। सभी दर्शन यही स्वीकार करते हैं कि पूर्व जन्मों के कर्म को भोगना पड़ता है। उसी से सुख दुःख का निर्धारण होता है। कभी–कभी मानव कष्टों को झेलता हुआ मानवीय मूल्यों से गिर जाता है उसका धैर्य साथ छोड़ देता है क्योंकि मनुष्य उसे अपनी नियति मान बैठता है। यहीं आकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि मानवीय मूल्यों का आधार कर्म ही है। अभिमान रहित होना स्वयं ही व्यक्ति को सफल, ईमानदार और नैतिक बना देता है। अभिमान ही नाश का कारण होता है। गीता में बताया गया है कि अर्जुन को अपने पराक्रम पर अभिमान था साथ ही युद्ध के समय मोह भी उत्पन्न हो गया। तभी कृष्ण को विरक्ति लाने में उपदेश देना पड़ा तथा सही धर्म का पालन करते हुये कर्म को करना पड़ा। जैसा कि–

नष्टो मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादान्म्याच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।(10)

सही कर्तव्य भी मानवीय मूल्यों की गरिमा को बढ़ा देते हैं। ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य ही है निष्काम कर्म भाव। इसमें कामना और अहंकार का त्याग करना पड़ता है। तभी मानवीय मूल्यों का सृजन होता है। शान्ति का मार्ग प्रषस्त होता है–

विहाय कामान्य सर्वान्पुमांष्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरह[1]कारः सह शान्तिमधिगच्छति।।(11)

यहाँ कृष्ण ने मानवीय मूल्यों में अहंकार की सर्जना कैसे होती है। बताया है कि– निष्काम कर्म योगी मेरी शरण में रहकर कर्म करता है, जबकि ज्ञानयोगी अपने ज्ञान को आगे रखकर कार्य करता है। अपनी हानि का विचार नहीं करता है। काम क्रोधादि पर विजय नहीं प्राप्त कर पाता है। अतः उसका नैतिक पतन व मूल्यों में गिरावट होना निश्चित हो जाता है। इसलिए मानवीय मूल्यों की प्राप्ति निष्काम कर्म भाव से ही संभव है। जहाँ अहंकार लेषमात्र भी नहीं रहता है। जैसा कि कहा है–

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धयेत कर्मणः।।(12)

इस शरीर यात्रा में कर्म करना एक यज्ञ है। इसमें वही कर्म आता है जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक है। इसकी व्याख्या दार्शनिकों ने भी की है। जैन दर्शन के अनुसार– "**आचार तथा तपश्चर्या बहुत कठोर विचार है। फिर भी इनको अपनाना आवश्यक है।** इससे अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अविद्या के नाश से स्वतः ही चारित्रिक मूल्यों का शरीर में प्रवेष होता है। **इसीलिए आचारमापक साधुओं के लिए अलग है और गृहस्थों के लिए अलग है।**"(13) बौद्ध दर्शन भी मानवीय मूल्यों की व्याख्या में व्यवहार को ही प्रमुखता देता है। इसी से हित–अहित, सत्य–असत्य, पाप–पुण्य पर विचार होता है। संसारी वस्तुयें ही हमें उन नैतिक मूल्यों की दिशा देती हैं जो कल्याणकारी होती हैं। नागार्जुन ने मध्यक शास्त्र में कहा है–

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देथ्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते।।(14)

मानवीय मूल्यों को ही आधार बनाकर लौकिक व्यवहारों के द्वारा न्यायदर्शन भी ज्ञानप्राप्ति को विस्तार देता है। उसके पदार्थ ज्ञान यही कहते हैं कि जब तक ज्ञान प्रमाणित नहीं होता है। या मानवीय मूल्य की श्रेणी में नहीं आता तब तक वह वाद, तक्र, संषय, इत्यादि कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। उसके अनुसार कोई भी गुण आत्म उन्नति में तभी सहायक होता है जब वह व्यावहारिकता की कसौटी पर जाँचा जाये। इसमें स्मरणरूप ज्ञान और अनुभवरूप ज्ञान दोनों ही अन्तिम निष्कर्ष मानवी कल्याण के लिए ही देते हैं। न्याय यही मानता है कि जीव जब तक संसार में है उसमें अनेकानेक गुण प्रकट होते रहते हैं, परन्तु सही ज्ञान से ही उसे मानवीय मूल्य की श्रेणी में रखा जाता है।

धर्म, दर्शन और मानवीय मूल्यों के लिए ही महात्मा गाँधी का सत्याग्रह सिद्धान्त अहिंसा की स्थापना करता है। अहिंसा का यह गुण दर्शनशास्त्र का सर्वोच्च गुण है। "**सत्याग्रह का अर्थ है सत्य पर आग्रह करते हुये अत्याचारी का प्रतिरोध करना और उसके सामने सिर को न झुकाना अर्थात् असत्य का साथ न देना**"(15) गाँधी जी ने कहा है कि सत्याग्रह के लिए शुद्ध आत्मबल का होना आवश्यक है। इसमें ही सत्चरित्र के गुण विद्यमान होते हैं। यही वो मानवीय मूल्य हैं जो धैर्य के साथ बड़े से बड़े युद्ध जीत सकता है। ये मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। ये एक पवित्र अधिकार है, इसलिए अहिंसा अनेकानेक मानवीय मूल्यों की जननी कहलाने योग्य है। इसके लिए गाँधी जी ने कुछ कठोर अनुशासन भी बनाये थे जैसे– ईश्वर में अटूट विश्वास, मन में धन और यश का लालच न होना, हठयोग से शरीर को बल देना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, धैर्यनिष्ठ होना, शुद्ध

संसाधनों का प्रयोग करना आदि। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्यों की प्राप्ति यदि कठिन साधना है तो उसका फल भी अलौकिक सुखकारी एवं विश्वशान्ति में सहायक होगा।

धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं। दोनों ही मानवीय गुणों को उत्पन्न करते हैं। उत्तम तर्कों से मन के अज्ञान को काटते हैं। जब तक मानव में असन्तोषक होगा तब तक वैमनस्य बढ़ेगा। **''डॉ० राधाकृष्णन ने भी कहा है कि जब तक धर्म है तभी तक मनुष्य का अर्थ एवं अस्तित्व है। यही मनुष्यों को जोड़ता है। हमें नित नये धर्मों की आवश्यकता नहीं है। प्राचीन धर्मों के ही नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है।''(16) मानवीय मूल्यों में सहिष्णुता का भी बहुत बड़ा योगदान है। स्वामी विवेकानन्द ने भी इस गुण की बड़ी प्रथंसा की है। उनके अनुसार– ''सभी धर्म सत्य हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने से गर्व अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता एवं सार्वभौमिकता की शिक्षा दी है। सभी धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार किया है। मुझे ऐसे देश के व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को शरण दी है कृकृकृ कृ।''(17)** ये मानवीय मूल्य ही हैं जो स्वयं के सुखी होने पर दूसरों के सुख के लिए व्यग्र हो उठते हैं। उनकी आध्यात्म शक्ति जाग्रत हो उठती है और नर ही नारायण है ऐसा मानकर सेवाभाव को प्राथमिकता देने लगते हैं। गुरूनानक देव जी इसके सबसे बड़े मिसाल हैं जिन्होंने संसार को सेवाभाव का रास्ता दिया। वही धर्म है, वही पूजा है, वही कर्म है। आज मानवीय मूल्यों में सेवाभाव आपदा के समय भी दिखाई देता है। किस तरह एक देश दूसरे देश की सहायता करते हैं। मानवाधिकारों को समझने का युग है। आज उसे बखूबी जाना और समझा भी जा रहा है। परन्तु कहीं–कहीं वर्चस्व की लड़ाई में उसका हनन भी हो रहा है।

संस्कृत साहित्य धर्म, दर्शन एवं मानवीय मूल्यों के नायक के रूप में मर्यादा राम की प्रशंसा धर्म के स्थापना के रूप में करता आ रहा है। संस्कृत का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि धर्म की मर्यादा और मानवीय मूल्यों का आंकलन सबसे ज्यादा संस्कृत भाषा में हुआ है। महर्षि बाल्मीकि जी कहते हैं कि–

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रथासति।।(18)

अर्थात् रामराज्य में लोग धर्मपरायण थे। प्रजा राम की ही चर्चा करती थी। सारा जगत श्रीराममय हो रहा था, ज्ञान और मानवीय मूल्यों का

यदि कहीं प्रत्यक्ष अनुभव होता है तो रामचरित में ही होता है। तभी वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्त को भारत देश अपना गौरव मानता है। यही वह भावना है जो प्रेम, पवित्रता और अहिंसा को धारण करके मानव मानव से प्रेम करना सिखाती है।

सहायक सन्दर्भ सूची

वैषेषिक दर्शन–1/2

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।

मनुस्मृति–2/12

मनुस्मृति–6/92

महाभारत उद्योगपर्व–40/12–13

मनुस्मृति–4/239

शंकराचार्य–मणिरत्नमाला

ऋग्वेद–10/112/9

रामो विग्रहवान धर्मः–बा०रा० 3/27/13

गीता–षष्ठम् अध्याय, 43वाँ श्लोक

गीता–18वाँ अध्याय, 73वाँ श्लोक

गीता–द्वितीय अध्याय, 71,72 श्लोक

गीता–तृतीय अध्याय, 8वाँ श्लोक

जैनदर्शन–म०म०म० ड़ा० उमेष मिश्र

(भारतीय दर्शन–हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश शासन) पृष्ठ संख्या–767

नागार्जुन–मध्यमकारिका–24

यूथ कॉम्पिटिषन टाइम्स, पत्राचार दर्शन–पृ० 649

यूथ कॉम्पिटिषन टाइम्स, पत्राचार दर्शन–पृ० 737

यूथ कॉम्पिटिषन टाइम्स, पत्राचार दर्शन–पृ० 738

बाल्मीकि रामायण–युद्धकाण्ड 128/102

◆◆◆

धर्म, दर्शन में वर्णित मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता 'वेदान्त दर्शन के परिप्रेक्ष्य में'

संगीता राठौर

शोध छात्रा, वीरांगना रानी अवन्ती बाई लोधी रा०म० महाविद्यालय, बरेली

धर्म और दर्शन मानव जीवन के दो पूरक स्तम्भ है भारतीय दर्शनों ने मानव मूल्यों की अलग से पहचान कराई है। उसमें भी वेदान्त दर्शन का सामाजिक, धार्मिक एवं आचार की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि वेदान्त दर्शन मानव जीवन के हर क्षेत्र में अहम भूमिका निभाता है चाहे वह आध्यात्मिक या व्यावहारिक क्षेत्र से सम्बन्धित हो। वेदान्त प्रधानतः आध्यात्मिक दर्शन है फिर भी वह व्यावहारिक ज्ञान का अक्षय सागर है। क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य व्यावहारिक ज्ञान में सफल हो सकता है।

आधुनिक युग में संसार के अज्ञानी मानव सांसारिक भोग विलास व आसुरी प्रवृत्ति से इस प्रकार ग्रस्त हो गया है कि वह अपने मानवीय मूल्यों का निरन्तर ह्रास करता हुआ अज्ञान रूपी अंधकार की ओर बढ़ रहा है जिसके कारण वह संसार जनित समस्त दुःखों को भोग रहे हैं। मानव इस संसार में दुःखों को न भोगे, इसीलिए जगद्गुरू आद्य शंकराचार्य ने मनुष्य को वेदान्त का निरन्तर चिन्तन–मनन करना चाहिए। क्योंकि सर्वोच्च व सर्वोत्तम ज्ञान संसार से प्रत्येक दुःखों का समूल नाश हो जाता है। जैसा कि कहा गया है–

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमय।
तेनात्यन्तिक संसार दुःखनाशो भवत्यनु।।(1)

वेदान्त में ज्ञान और कर्म का विवेचन किया गया है, ज्ञान मानव जीवन में प्रकाश के समान है जो अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करता है। ज्ञान के बिना मनुष्य पशुतुल्य माना जाता है ज्ञान ही मनुष्य को प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ बनाता है। कर्म मनुष्य को अभ्युदय की ओर ले जाता है। कर्म से ही यह संसार गतिशील होता है यदि मनुष्य कर्म न करे तो यह संसार षिथिल हो जायेगा। इसीलिए वेदान्त ने ज्ञान और कर्म को विशेष महत्व दिया गया है कर्म यदि निष्काम भावना से किया जाये तो कर्म मनुष्य को जन्म–मृत्यु रूपी बन्धन से मुक्ति दिलाता है और कर्म यदि कामना हेतु किया जाये तो वह जन्म–मरण के भव बन्धन में फँस जाता है– ज्ञान के

लिए गीता में कहा गया है—

न हि ज्ञानेन सदृथं पवित्रमिह विद्यते।(2)

परब्रह्म परमात्मा ने ईश्वर और माया की मोहासक्ति से इस नश्वर व भौतिक संसार का निर्माण किया है—जैसा कि कहा गया है—

माया तु प्रकृति विद्यामायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत।।(3)

ईश्वर की इस भौतिक संसार के प्राणी जगत में मानव सबसे सुन्दर रचना है। मानव जाति की उत्पत्ति स्वयं व दूसरे प्राणियों के हित के हेतु हुई है, भोग हेतु नहीं। मानव को सभ्य व संस्कार बनाने के लिए प्राचीन भारतीय ऋषि—मुनियों ने मानवीय मूल्यों का निर्माण किया है। इनका प्रेरणा स्रोत भारतीय संस्कृत वाद्मय ही है, इन मानवीय मूल्यों को विश्व के समक्ष रखकर भारत विश्वगुरू के रूप में स्थापित हुआ। सर्वोच्च ज्ञान के रूप में मानव व्यवहार को अधिक वरीयता दी गई है। मानव व्यवहार का आधार यह मानवीय मूल्य ही है— सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य निष्काम भावना, तप, श्रद्धा, प्रेम, दान अपरिग्रह, आत्मज्ञान अस्तेय त्याग आदि। वेदान्त दर्शन में इन्हें यम—नियम कहा गया है—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्या परिग्रह यमा,
शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायथ्वरप्रणिधानानि।(4)

मानवीय मूल्य से तात्पर्य मनुष्य के मन में समाहित उन उच्चतम् गुणों से है जो उसे उसके उद्देश्य व लक्ष्य प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। यही मूल्य मानव के चरित्र का निर्माण ही नहीं अपितु देश के चरित्र का भी निर्माण करते हैं। वेदान्त में मनुष्य की प्रवृत्तियाँ दो प्रकार की बताई हैं—

दैवीं प्रवृत्ति और आसुरी प्रवृत्ति।
द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।(5)

मानवीय मूल्य इसी दैवी प्रवृत्ति के अन्तर्गत आते हैं और आसुरी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अहंकार, मिथ्या, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, काम, लोभ, बल, ईर्ष्या, मोह आदि दुर्गण आते हैं—जैसे गीता में कहा है—

अहंकारं बलं दर्प कामें क्रोधं च संश्रिताः।(6)

ये दुर्गण मनुष्य को पवन की ओर ले जाते हैं। आज संसार इन्हीं विकारों से लिप्त है यही विकार समाज में अत्याचार, अनैतिकता, अभद्रता,

हिंसा, अधर्म, बलात्कार, हत्या आदि अपराध निरन्तर अपनी सत्ता समा रहे हैं। क्योंकि आज समाज का प्रत्येक प्राणी भौतिक सांसारिक सुख–सुविधा के पीछे पागल की भाँति दौड़ रहा है इसका कारण है कि मनुष्य का शाश्वत सत्य की खोज में संलग्न न होना। उसे यह ज्ञान होना अत्यावश्यक है कि ये सभी वस्तुएँ क्षणिक भर के लिए हैं अथवा नश्वर हैं। यदि इस संसार में कोई शाश्वत है तो वह ब्रह्म ही है– वेदान्त कहता है ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह संसार मिथ्या है जीव (आत्मा) और ब्रह्म एक ही है अन्य नहीं। गीता में भी कहा है– अविनाशी और दिव्य जीव ब्रह्म कहलाता है– **अक्षरं ब्रह्म परमें स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते**(7) कठोपनिषद में भी कहा गया है कि एकमात्र आत्मा ही अजर अमर और शाश्वत है यह किसी के द्वारा मारी नहीं जा सकती है–

न जायते म्रियते वा कदाचिन नायं भूत्वा भवितावान भूया।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।(8)

सृष्टि का प्रारम्भ 'काम' से हुआ है और 'काम' मन से जनित है, मूलतत्व में मन ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ है।(9) इसलिए वेदान्त में मानवीय मूल्यों में निष्काम भाव से कर्म करने को विशेष महत्व दिया गया है।

कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।(10)

मानव मन बहुत ही चंचल होता है मन ही शुभ और अषुभ कार्य करने के लिए प्रेरित करता है गीता में कहा है चंचल हि मनः(11) मानवीय मूल्यों का विकास व पतन का कारण मन ही होता है जब मन कामना से अभिभूत होता है तो काम से क्रोध–क्रोध से हिंसा जैसी भावनायें उत्पन्न होती हैं जैसा कि कहा गया है–

काम एष क्रोध एष रजोगणसमुद्भव्।
महारानो महापाप्मा विद्धेनमिह वैरिणमें(12)

काम क्रोध लोभ मोह ईर्ष्या जैसे विकारों से मानवीय मूल्यों का पतन न हो इसलिए वेदान्त में मन को वष में करने के लिए साधनचतुष्टय का मार्ग बताया है विवेक वैराग्य, शटसम्पत्ति (षम, दम, उपरति तितिक्षा श्रद्धा, समाधान) मुमुक्षत्व।

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानी मनीषिभिः
येशु सत्स्वेव सन्निष्ठा यद्भावेन न सिद्धयति।।(13)

इन्हीं साधनों को धारण कर अपने मानवीय मूल्यों की रक्षा करने में समर्थ होता है। विवेक सोचने समझने की शक्ति है किन्तु विकारों से पीड़ित होने के कारण मानव अपनी सोचने समझने की शक्ति से विक्षुब्ध हो गया है सत् असत् सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म के मध्य अन्तर समझना ही विवेक है जब तक मानव विवेक और वैराग्य को धारण नहीं करता तब तक वह सांसारिक भोगों का त्याग नहीं करता। वैराग्य का अर्थ कर्म का त्याग कर वैरागी या सन्यासी बनना नहीं है। अपितु संसार में रहते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए इस लोक और परलोक के भोगों के प्रति अनासक्ति ही वैराग्य है। गीता में भी मनुष्य को विवेक और वैराग्य धारण करने के लिए कहा गया है।

असंथयं यहाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।(14)

विवेक व वैराग्य जाग्रत होने पर अन्य साधन अपने आप ही जाग्रत होने लगते हैं, इस प्रकार मनुष्य विकारों से निकल कर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन का निर्वाह करने में सक्षम हो सकता है– जैसा कि कहा गया है–

वैराग्य च मुमुक्षत्व तीव्रं यस्य तु विद्यते।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः।।(15)

मनुष्य का यह शरीर नश्वर है यह संसार क्षण भंगुर है इसीलिए वेदान्त से मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ कर्म ज्ञान की भी शिक्षा दी है–

ऊँ ईथावास्यामिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।(16)

अर्थात् इस संसार में जो भी चल–अचल है वह सब ईश्वर से व्याप्त है इसलिए मनुष्य को त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए, किसी का धन का लालच मत करो क्योंकि धन की तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती धन लोलुपता मनुष्य की तृष्णा को और भी बढ़ा देती है। कठोपनिषद में कहा भी है–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।(17)

जहाँ तृष्णा है वहीं संसारीजन दुःखी हैं जैसा कि अष्टावक्र गीता

में कहा गया है—**यत्र यत्र भवेत तृष्णा संसारं विद्धि तत्र।**(18) इसलिए वेदान्त ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है अपनी इन्द्रियों को रोकना। परा विद्या, सत्य, तप, वेदान्तज्ञान ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होता है।

तैत्तिरीय उपनिषद तो मानवीय मूल्यों का सार है— इसमें आचार्य शिष्यों को शिक्षा देते हुए कहते हैं, सत्य बोलो **सत्यंवद्**। धर्म का आचरण करो, **धर्मं चर**। स्वाध्ययन् में मनुष्य को प्रमाद नहीं करना चाहिए। **स्वाध्यायान्मा प्रमदः।** मनुष्य को उन्नति के साधन को न छोड़ने का सन्देह दिया है **कुशलान्न प्रमदितव्यम्**। भारतीय संस्कृत वांग्ड्मय में सभी सुखों का मूल धर्म है—**(19)** क्योंकि मानव जीवन में धर्म का विशेष महत्व है इसीलिए वेदान्त ने धर्म का आचरण करने को कहा है—वेदान्त में धर्म का अर्थ किसी जाति विशेष से नहीं है बल्कि मनुष्यों द्वारा किये गये कर्तव्यों से है किन्तु आज मनुष्य ने जाति विशेष को ही धर्म मान लिया है। अतः मनुष्य को यह ज्ञात होना अत्यावश्यक है कि धर्म क्या है—धर्म कहता है— माता—पिता की सेवा करो, **मातृ देवो भव। पितृ देवो भव।** अतिथि को देवतुल्य समझना चाहिए **अतिथि देवो भव। आचार्य देवो भव** अपने गुरूजनों को देवतुल्य समझकर तथा उनकी आज्ञा को मानना व श्रद्धापूर्वक सेवा करना मनुष्य का वास्तविक धर्म है।**(20)**

वेदान्त में हमेशा से ही सत्य की महिमा बताई गई है—

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।(21)

सत्य ही विजय को प्राप्त होता है। झूठ की नहीं सत्य से ही देवयान मार्ग का विस्तार होता है। यदि मनुष्य जीवन में असफल होता है या देश को पराजय का मुख देखना पड़ता है तो सम्भवतः कहीं न कहीं सत्य का गला घोंट कर असत्य को सींचा गया है। आज चारों ओर असत्य का बोलबाला है। प्रश्नोपनिषद में भी कहा है— सत्य ही जीवन का मूल है—

समूलो वा एषु परिभुष्यति योऽनश्तमभिवदित।(22)

जीवन वृक्ष संवर्धित करने वाला रस है जो झूठ बोलता है उसका जीवन समूल शुष्क हो जाता है— सत्य एक सिद्धान्त है तो अहिंसा उसका व्यावहारिक रूप है। अहिंसा एक ऐसा शब्द है जो विश्व को एकता के सूत्र में बांधने का माध्यम है। हिंसा से समाज को कभी कुछ नहीं दिया अपितु उसने मानव से सब कुछ छीन लिया है मानव ने अपने आप को शक्तिशाली बनाने के लिए कितनी बार धरती को रक्तरंजित किया है। यहाँ तक कि

जल व वायु को भी दूषित किया है। हिंसा कभी भी समाज व राष्ट्र के लिए फलित नहीं हुई है। हिंसा क्रोध और अहंकार से उत्पन्न होती है हिंसा में मस्तिष्क और हृदय दोनों गंदे होते हैं हिंसा मनुष्य के हृदय के गुण नष्ट हो जाते हैं। वह दूसरे के दुःख को देखकर प्रसन्न होता है। हिंसा तीन प्रकार की होती है– मानसिक, वाचिक और कायिक। जो मनुष्य मन ही मन किसी के हिंसा भाव रखता है, वह मानसिक हिंसा है, जो वाणी के द्वारा मन को आघात पहुँचाने का कार्य करता है, उसे वाचिक और जो किसी व्यक्ति पर हाथ से प्रहार करता है उसे कायिक हिंसा कहा जाता है। मन से वचन से और शारीरिक कार्यों से किसी को कष्ट न पहुँचाना अर्थात् मानव को पीड़ित न करना ही अहिंसा है। भारतीय दर्शनों में अहिंसा को परम धरम माना है– महाभारत में अहिंसा की बहुत प्रशंसा की है– **अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः। अहिंसा परमें सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।।**

अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर हिंसक जीव जन्तु प्राणी भी स्वाभाविक रूप से हिंसा का त्याग कर देते हैं। मनोनिग्रह के विषय में उपनिषद मानव को सावधान करते हुए कहती है कि जिस प्रकार धैर्यपूर्वक कुषा के अग्रभाग से एक–एक बूँद द्वारा सागर को भी उलीचा (पानी निकालना) जा सकता है, उसी प्रकार स्वेदषून्य रहकर (खिन्नता का त्याग) कर मन का निग्रह किया जा सकता है–

उत्सेक उदधैर्यद्वत् कुथाग्रेणैकविन्दुना।
मनसो निग्रहस्तद्वद्मवेद परिखेदतः।। (23)

वेदान्त में तप को ब्रह्म बताया गया है '**तपो ब्रह्मोति**' तप न केवल शरीर मन और बुद्धि की शुद्धि करता है(24) तप के माध्यम से ही परमब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। तप ही कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता प्रदान करता है और जीवन में मानवोचित मानवीय गुणों का विकास करता है। ब्रह्मचर्य, अहिंसा को शारीरिक तप में समाविष्ट किया गया है– गीता में तप का महत्व बताया है– **ब्रह्मचर्यमहिंसा चशारीरं तप उच्यते।।**(25)

वेदान्त कहता है कि श्रद्धा के बिना यज्ञ दान तप के रूप में जो भी किया जाता है वह सब नश्वर होता है। जैसा कि कहा गया है–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत। 28/17(26)

भारती संस्कृत साहित्य में पंचमहायज्ञ का विशेष महत्व है जो प्रत्येक ग्रहस्थ के लिए अनिवार्य है देव यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ, पितृ यज्ञ, नश्यज्ञ

तथा भूतयज्ञ तब तक मनुष्य इन यज्ञों के प्रति श्रद्धा नहीं रखता तब तक वह फलित नहीं होते। इसी प्रकार दान मनुष्य को श्रद्धापूर्वक देना चाहिए और अपनी सामर्थ के अनुसार देना चाहिए। गीता में कहा है कि दान देना मानव का कर्तव्य है निष्काम भाव से दिया जाने वाला दान सात्विक है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।(27)

श्रद्धा को ही प्रेम का स्वरूप प्रेम मानते हैं। जब ब्रह्म में श्रद्धा परिपक्व होती है, तो इसे ईश्वर प्रेम कहते हैं, यही प्रेम समस्त प्राणियों का चरम लक्ष्य होनी चाहिए। ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धा परमावश्यक है। वेदान्त में श्रद्धा के लिए आहार शुद्धि का होना अतिआवश्यक होता है। क्योंकि आहार पर ही मनुष्य की प्रवृत्ति का पता लगता है–गीता में कहा है–अधपका, रस रहित, दुर्गन्धयुक्त तथा वासी और झूठ व अपवित्र भोजन नहीं करना चाहिए ये आसुरी लोगों को प्रिय होते हैं–

यातयाम गतरसं पूति पर्युशितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्य भोजनं तामसप्रियमें।(28)

छन्दोग्योपनिषद में भी शारीरिक शुद्धि के लिए शुद्ध आहार अत्यावश्यक बताया है। **आहारशुद्धौ सत्त्वथुद्धि**(29) किन्तु आज मनुष्य निरन्तर दूषित आहार का भक्षण कर रहे हैं। विभिन्न प्रकार की बीमारियों से पीड़ित है। चीन में वुहान शहर में '**कोरोना वायरस**' इसी का परिणाम है यह वायरस जीव आदि के मांस से उत्पन्न हुआ है, जिससे आज पूरे विश्व की मानवजाति खतरे में पड़ गयी है। मनुष्य इन भयंकर बीमारियों से पीड़ित न हो इसीलिए वेदान्त में शुद्ध आहार ग्रहण करने पर बल दिया गया है–वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए वेदान्त दर्शन की आवश्यकता है। क्योंकि वेदान्त दर्शन में हर सम्भव मानवीय मूल्यों पर विशेष बल देकर उसे धारण करने की बात कही है। आज अश्लील चलचित्र, अश्लील वीडियो, अश्लील साहित्य (पत्र–पत्रिकायें) की बढ़ती प्रतिस्पर्धा मन में और भी उत्तेजित कर जघन्य अपराध करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय मूल्यों का हनन कर रहे हैं। वर्तमान में जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली अपनायी जा रही है उसमें कहीं भी मानवीय मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जाती है। जिससे आज बालक व युवा अपने मानवीय मूल्यों से अनभिज्ञ है वेदान्त के माध्यम से समाज के प्रत्येक मनुष्य को शिक्षा दी जा सकती है। क्योंकि महाविद्यालयों, शिक्षण संस्थाओं, सामाजिक संस्थाओं पर अधिकांश उपनिषदों के वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। अतः पतन की ओर जाते

हुए मानवीय मूल्यों को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि इन वाक्यों को मनोरंजन वाक्य के रूप में न देखकर उन्हें आत्मसात् भी किया जाये। उपनिषद वाक्य है– **सत्यमेव जयते, सर्वेशां श्रेयषे विद्या, असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योर्तिगमय**, **योगः कर्मसु कौशलम्, योगक्षेमें वहाम्यहम्, हिंरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखम् आदि** जो मानव समाज की इहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति का मार्ग प्रषस्त करते हैं। आज मनुष्य सांसारिक भोग विलास रूपी नदी के प्रवाह रूप में निरन्तर बहता जा रहा है। धन पद तथा प्रतिष्ठा आदि का लोभ होने के कारण वह मानवीय मूल्यों से विस्मित हो गये हैं मनुष्य इस सांसारिक भोग विलास की मृगमरीचिका में न फंस कर आध्यात्म ज्ञान की ओर प्रेरित हो यही वेदान्त शिक्षा देता है। इस शिक्षा पर विश्व की स्थिति निर्भर है। क्योंकि यही मानव समाज को सुरक्षित रखकर पर्यावरण के साथ मैत्रीपूर्ण व्यावहारिक का दर्पण बन सकता है। क्योंकि वेदान्त में ही विश्व–बन्धुत्व एवं संसार के प्रत्येक प्राणी में समानता का भाव रखने का सिद्धान्त पाये जाते हैं।

समं पश्यन्त हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परा गतिम्।।(30)

सहायक सन्दर्भ सूची

विवेक चूड़ामणि, 47, स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द स्वामी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान।

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 38/4, अनुवादक–श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद– भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुम्बई।

श्वेताष्वतरोपनिषद, 10/4

वेदान्तसार, 200, 201, पृ०सं० 127, ड़ॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, साहित्य भण्ड़ार

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 6/16

वही, 18/16

वही, 3/8

कठोपनिषद, 20/2

वृह०उप०, 1/2/1

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 47/2

वही, 34/6

वही, 37/6

विवेक चूड़ामणि, 18

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 35/6

विवेक चूड़ामणि, 30, स्वामी प्रखर

ईषावस्योपनिषद, 1

कठोपनिषद, 1/1/27

सदाचार अंक 1, अष्टावक्र गीता (10/3), पृ०सं० 77, गीता प्रेस, गोरखपुर

तैत्तिरीयोपनिषद, 1

वही, 2

मुण्डकोपनिषद, 3/1/6

प्रश्नोपनिषद, 6/1/

माण्डूक्योपनिषद, 4

तैत्तिरीयोपनिषद, 1/2/3

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 17/14

वही, 28/17

वही, 27/17

वही, 17/10

छन्दोग्योपनिषद, 7/26/2

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 29/13

◆◆◆

भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य

डॉ. अश्विनी कुमार
विभाग– इतिहास, बीसलपुर जिला पीलीभीत (उ०प्र०)

भारत को विविधताओं वाला देश कहा जाता है, जहां भारत में अनेक प्रान्त हैं। वही अनेक धर्म एवं भाषाएं भी देखी जाती हैं। भारतवर्ष कदाचित संसार का एक ऐसा देश है जहां इतनी अधिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं कि भारतवर्ष को विविधताओं का देश कहा जाने लगा है। भारतवर्ष में विभिन्नताओं के कारण अनेक समस्याएं जैसे–जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद आदि अनेक विघटनकारी शक्तियां एवं प्रवृत्तियां क्रियाशील हो रही हैं । इन सबके परिणाम स्वरूप राजनेता अपना उल्लू सीधा करने के लिए इन समस्याओं का सहारा लेकर जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते हैं। भारतवर्ष में राष्ट्रीय एकता की समस्या एक प्रमुख समस्या बन गई है। किसी भी राष्ट्र की समृद्धि की कल्पना राष्ट्रीय एकता के अभाव में नहीं की जा सकती है। यदि भारत को समृद्ध एवं शक्तिषाली राष्ट्र बनाना है तो जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना आवश्यक है। राष्ट्रीय एकता का सम्बन्ध राष्ट्र तथा उस राष्ट्र में निवास करने वाले व्यक्तियों से होता है। राष्ट्र केवल भूखण्ड को नहीं कहते बल्कि जब किसी सीमित भू प्रदेश में निवास करने वाले व्यक्ति सामान्य इतिहास, सामान्य पूर्वज, सामान्य परम्परा, सामान्य संस्कृति और सामान्य आकांक्षाओं पर आधारित एक सामान्य जीवन–शैली का निर्माण करते हैं और पारस्परिक एकता का अनुभव करते हैं तब हम इस जन समूह को राष्ट्र कहते हैं। इस प्रकार राष्ट्र एक चेतन तथ्य की ओर संकेत करता है। एक राष्ट्र का अपना देश अर्थात अपनी भूमि होती है जिस पर उसकी सम्प्रभुता होती है। राष्ट्र में निवास करने वाले व्यक्तियों का लगाव अपने देश की मिट्टी के साथ उसकी प्रत्येक वस्तु पर्वत, नदियां, पुष्प, तीर्थस्थल इत्यादि से होता है। इन सामान्य वस्तुओं और संस्कृतियों, मान्यताओं की रक्षा करने के लिए जनसमूह में बलिदान की भावना पाई जाती है। इस भावना का आधार राष्ट्रीयता है। इस भावना को हम राष्ट्रीयता की भावना कह सकते हैं। राष्ट्रीयता की भावना के आधार पर किसी भी राष्ट्र के लोग आत्मीयता और एकता का अनुभव करते हैं। राष्ट्रीय एकता में राजनैतिक एकता का तत्व ही प्रधानता होती है। भारतवर्ष के सम्बन्ध में राष्ट्रीय एकता से अभिप्राय कशमीर से लेकर कन्याकुमारी तक और बंगाल की खाड़ी से लेकर कच्छ तक फैले हुए विशाल–भू प्रदेश में निवास करने वाली कोटि कोटि जनता के हृदय में

एकात्मकता और आत्मीयता की अनुभूति के आधार पर इसके कण–कण के प्रति श्रद्धा और भक्ति भाव रखते हुए इसमें उत्पन्न माहपुरूषों से प्रेरणा लेते हुए इसमें गौरवपूर्ण इतिहास पर गर्व करते हुए तथा इसमें विकसित तथा पोशित सांस्कृतिक परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति लगाव रखते हुए तथा इस भू–भाग में बसने वाले प्रत्येक व्यक्ति के सुख–दुख को अपना सुख–दुख समझते हुए राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति से लिया जा सकता है। आधुनिक भारत के अनेक विद्वान यह कहने का दुस्साहस करते हैं कि भारत में कभी भी राष्ट्रीय एकता नहीं रही और इसी के आधार पर वे यह भी प्रचार करते हैं कि भारत न तो कभी राष्ट्र था और न राष्ट्र है। इसके लिए वे भारतवर्ष के विवधतापूर्ण जीवन को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता से तात्पर्य भारत वर्ष में निवास करने वाले विभिन्न समूह एवं सामुदायों में पाई जाने वाली भावनात्मक एकता से है।

राष्ट्रीयता का विकास करने में सबसे अधिक योगदान अमरीकी शासनकाल में होने वाले विभिन्न प्रकार के सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों ने दिया है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा विशिष्ट वर्ग ने पाश्चात्य देशों के राष्ट्रीय जीवन का अध्ययन किया । राष्ट्रीय एकता का अर्थ स्पष्ट समझा जा सके इससे पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्र शब्द की स्पष्ट व्याख्या कर दी जाये । देश और राष्ट्र एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। यह एक भ्रमपूर्ण धारणा है कि वास्तव में देश से तात्पर्य भौतिक वस्तुओं जैसे नदी, पहाड़, आदि से होता है। किन्तु जब हम राष्ट्र के विषय में बात करते हैं तब उसका तात्पर्य उसके गुणों से लगाया जाता है। इसके लिए हमें राष्ट्रीयता के गुणों को देखना आवश्यक होता है। किसी भी राष्ट्र की विशेषताएं जिनसे वह राष्ट्र की संज्ञा प्राप्त करता है। वे निम्न प्रकार से हैं।

1. एकता का अभाव
2. साथ रहने की इच्छा
3. निर्भरता की विचार धारा
4. भारतीयता का भाव

राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्र के उपरोक्त गुणों को बी.एस. माथुर ने मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक रूप से सम्मिलित किया है । इस सम्बन्ध में बी. एस. माथुर ने परिभाषित करते हुए लिखा है – "राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक तरीका है जिसमें मनुष्य के मन में एकता की

भावना, रूचियों की घनिष्ठता तथा लगाव तथा राष्ट्र के प्रति सामान्य नागरिकता तथा देश के प्रति सम्मान का भाव रहता है'' । राधाकमल के अनुसार – ''राष्ट्रीयता राष्ट्र शब्द की भाववाचक संज्ञा है जिसका अर्थ जन समुदाय की समूह चेतना है। यह एक मनोवैज्ञानिक मनोविकार है जो किसी जनसमूह के मानस में सामुहिक चेतना के रूप में विद्यमान रहता है, जिसमें एकता तथा विचार साम्य के तत्वों का अस्तित्व रहता है।''

राष्ट्र के भावनात्मक स्वरूप का अभिप्राय है मानव के अन्दर एक सामूहिक चेतना । यह चेतना एकता तथा विचारों की समानता के द्वारा ही लाई जा सकती है। इस प्रकार राष्ट्र के भाव वाचक राष्ट्र के सम्पूर्ण लोगों के मनो से विचार तथा एक से भावों को महत्व दिया गया है। जिस राष्ट्र में यह भावना रहेगी वही राष्ट्रीय एकता की कसौटी पर खरा उतरेगा। राष्ट्रीय एकता को परिभाषित करते हुए जिर्मन ने लिखा है – ''राष्ट्रीयता धर्म की भांति आत्मपेक्षी मनोवैज्ञानिक, मन की द्वितीय, आध्यात्मिक सम्पत्ति तथा विचार जीवन की एक पद्धति है।'' राष्ट्रीयता का सम्बन्ध मन की स्थिति से अधिक होता है। धर्म निरपेक्षता और सभी वर्ग के लोगों में सामूहिकता की भावना का विकास करने में सहयोग देती है। जब लोगों में सामूहिकता की भावना जागरूक होती है तभी लोगों के विचार और चिन्तन में समानता पाई जाती है और वह बाद में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय एकता को जन्म देती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समस्त देश में एक संविधान लागू किया गया । एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों तथा छोटे क्षेत्रों को संगठित किया गया । एक ही राष्ट्रीय ध्वज से सम्पूर्ण देशवासियों का श्रद्धा केन्द्र घोषित किया गया । लोकतंत्र शासन की व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश के प्रत्येक नागरिक के लिए समान अधिकारों की व्यवस्था की गई और प्रत्येक व्यक्ति को सम्पूर्ण देश के सर्वोच्च पद पर पहुंचने की स्वतंत्रता दी गई। मदरास और कशमीर तथा गुजरात, पंजाब और बंगाल सब प्रषासनिक और राजनैतिक दृष्टि से एक दूसरे के निकट आ गये। प्रत्येक वर्ग के आर्थिक, सामाजिक प्रगति के लिए और सामान्य सुविधाओं की व्यवस्था की गई। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत के निवासियों में पारस्परिक एकत्मता की अनुभूति हुई। भारत को स्वतंत्र हुए लगभग 72 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं फिर भी राष्ट्रीय एकीकरण की चर्चा की जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रीय एकात्मता या एकीकरण देश से विलुप्त हो गया । किन्तु यह सत्य है कि विघटनकारी शक्तियां देश में पुनः तेजी से सक्रिय हो रही है। परिणाम स्वरूप अनेक दर्दनाक एवं भयावह दुर्घटनाएं देश में निरन्तर घटित

हो रही है। वास्तव में इन सबका कारण राष्ट्रीयता की भावना का अभाव ही है। इसी ओर संकेत करते हुए 19वें गणतन्त्र दिवस पर राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने कहा था कि समाज के कुछ हताष लोक हमारी लोकतान्त्रिक जीवन–पद्धति और हमारे धर्म निरपेक्ष समाज के मूल ढांचे को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। हममें से प्रत्येक को उचित प्रकार से अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है। लेकिन किसी को भी प्रत्येक मामले में सड़कों पर ले जाना, भावनाओं को उभारने, कानून और व्यवस्था की अवहेलना की हिमायत करने, हिंसा करने, हिंसा को भड़काने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। मामूली बातों की आड़ लेकर उकसाने वाली कार्यवाहियों से अनावश्यक टकराव की स्थिति लाने की नीति एक ऐसी चुनौती है जिसका कि हमें स्वतंत्र देश के नागरिक होने के नाते से सामना करना चाहिए।

राष्ट्रीय एकीकरण, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि भारतीय समाज के लिए यह आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि इस देश में भौगोलिक प्रजातीय, धार्मिक और भाषा सम्बन्धी अनेक प्रकार की विविधताएं देखने को मिलती है। यदि देखा जाये तो भारत में एक ओर बर्फ से ढकी हुई पर्वतमालाएं और दूसरी ओर समुद्रतट और यदि एक ओर नीग्रो प्रजाति के लोग रहते हैं तो दूसरी ओर अन्य प्रजातियां निवास करती हैं। हमारे देश में हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन सभी धर्म को मानने वाले रहते हैं। यहां पर असम, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, मलयालम, मराठी, कशमीरी, तमिल, तेलगु, उर्दू इत्यादि अनेक भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। हमारे यहां परम्परा, रहन–सहन, खान–पान इत्यादि में अनेक विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं। इस स्थिति में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाये रखने में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना बहुत आवश्यक है।

इस प्रकार राष्ट्रीय एकता में मूल्यों की एकता, रूचि, इच्छाएं, विश्वास और राष्ट्रों के मनुष्यों की अभिवृत्तियों को एकता के सूत्र में बांधने की शक्ति होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में इतनी अधिक विभिन्नताएं होने के बावजूद यहां आधारभूत एकता पाई जाती है।

संदर्भ

आचार्य विनोभा भावे – अल्पसंख्यकों की रक्षा पर आजादी निर्भर

श्रीकृष्ण दत्त भट्ट – सामाजिक विघटन और भारत

डिस्कवरी ऑफ इंडिया – पं0 जवाहर लाल नेहरू

◆◆◆

भारतीय संस्कृति का आधार रामायण में प्राप्त मानवीय मूल्य

अजय कुमार

शोध छात्र, बरेली कालेज, बरेली (उ०प्र०)

संस्कृति और मानवीय मूल्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि संस्कृति शब्द के शाब्दिक अर्थ को देखते हैं तो इसका निर्माण सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन प्रत्यय लगाने पर होता है। जिसका अर्थ सुधरी हुई स्थिति से है, यही सुधरी हुई स्थिति मानवीय मूल्यों का समूह है। किसी भी समाज की स्थिति तभी सुदृढ़ होगी जब उसके प्रत्येक व्यक्ति में दया, परोपकार, सत्यभाषिता, करूणा, विश्वकल्याण, अहिंसा, आत्मरक्षा, धर्म, अर्थ काम, मोक्ष का विधिवत् समायोजन आदि गुणों का स्थायित्व हो। जब ये गुण किसी मनुष्य में स्थाई रूप से निवास करने लगते हें तो वह व्यक्ति मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत हो जाता है।

भारतीय संस्कृति के आधारभूत नायक श्रीराम पर आधारित आदि काव्य श्री वाल्मीकि कृत रामायण में तो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को परिभाषित किया गया है। इसके प्रत्येक कथानक में भारतीय संस्कृति के मूलतत्व विद्यमान हैं। यही कारण है कि आज भी इस संसार में रामायण की सर्वत्र चर्चा है। यह आज भी मानवीय मूल्यों की व्याख्या करती है कि व्यक्ति को किस परिस्थिति में किस गुण का प्रयोग करना चाहिए तथा किसका त्याग। रामायण में यदि मानवीय मूल्यों की चर्चा करें तो सम्भवतः इस विषय पर चर्चा समाप्त होगी क्योंकि जिस महाकाव्य का प्रारम्भ ही मानवीय मूल्यों से हुआ हो तो उस काव्य में मानवीय मूल्यों का न होना, संसार में ईश्वर नहीं है जैसी अर्थविहीन कल्पना करने के समान होगा। जब महर्षि वाल्मीकि नदी के तट पर कौंच पक्षी के मिथुनरत, मरणशील, सरभेदित शरीर को देखते हैं तो उनके मानवीयमूल्य उसकी रक्षा के लिए तत्पर हो जाते हैं किन्तु उसके प्राण जाने को अग्रणी है तभी ऋषि क्रोधित होकर उस बहेलिये को श्राप देते हैं। क्योंकि जिस आनन्दानुभूति के समय उस कौंच पक्षी का वध किया गया वह एक मानवीय मूल्यों पर धब्बा के समान है। तो भला ऋषि को क्रोध क्यों न आता क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति में पशु–पक्षी आदि प्राणीनाम की रक्षा करना हमारा धर्म है। इसी कारण वे कहते हैं–**(1)**

''मा निषाद। प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।''

ये वाक्य उस ऋषि के मुख से निकला जो पूर्व में एक दस्यु था। ऐसा दया भाव पक्षी प्रेम भारतीय संस्कृति में पोषित उस मानवीय मूल्य का ही परिणाम है। तदन्तर ब्रह्म उन्हें एक श्रीराम चरित्र लिखने का आदेश देते हैं और एक अथक साधना के बाद रामायण की रचना हुई।(2) इसका प्रारम्भ ही एक हृदयानुभूति से हुआ है तो इस सम्पूर्ण काव्य में मानवीय मूल्यों का पग–पग पर वर्णन है।

बालकाण्ड में राजा दशरथ के राज्य की प्रजा का स्वभाव उनके सुखों आदि का वर्णन देखकर प्रतीत होता है कि उस समय समाज में मानवीय मूल्य यत्र तत्र देखने को मिल रहे थे। राजा दशरथ के दरबार में सभी योग्य मन्त्री रहते थे। सभी मन्त्री सदा सत्य ही बोलते थे वे कभी काम, क्रोध व स्वार्थ के वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलते थे।(3) कुषनाभ जब अपनी कन्याओं के क्षमाशील व्यवहार का वर्णन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय महिलाओं में भी मानवीय मूल्यों का अभाव न था।(4) कुषनाभ क्षमा को ही सम्पूर्ण संसार का मूल बताते हुए कहते हैं–

''क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञथ्च पुत्रिकाः।
क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठित जगत्।।''

जब नीलकण्ठ का विवाह उमा से हुआ तब वे सौ दिव्य वर्षों तक उमा के साथ सम्भोग में लिप्त रहे परन्तु कोई सन्तान न उत्पन्न होने पर देवताओं एवं ब्रह्म ने नीलकण्ठ से प्रार्थना करते हुए कहा भगवन्। आप के तेज को कोई धारण नहीं कर सकता है। काम ही सब नहीं है संसार के कल्याण के लिए आप उमा के साथ वेद अध्ययन एवं तप करें। नीलकण्ठ ने संसार के कल्याण के लिए काम को त्याग कर तप प्रारम्भ किया। कामवासना में ही डूबा रहना मानवीय मूल्य नहीं है।(5) विश्वामित्र राजा जनक के दरबार में जाते हैं तो वे राजा के गुणों के अनुसार अपनी प्रजा का पालन–पोषण करते हैं या नहीं ऐसा प्रश्न करते हैं–हे राजन्। क्या आप धर्मपूर्वक प्रजा को प्रसन्न रखते हुए राजोचित रीति–नीति से प्रजा वर्ग का पालन करते हो।(6) यहाँ मनुष्य की कर्तव्य परायणता का वर्णन है। राजा जनक को हल चलाते समय एक कन्या का प्राप्त होना, उस कन्या को अपनी पुत्री की तरह पालन–पोषण कर शास्त्रज्ञ बनाना मानवीय मूल्यों का चर्मोत्कर्ष है।(7) धनुष के तोड़ने पर परशुराम द्वारा राम को अपशब्द कहना तथा उन्हें युद्ध के लिए उत्तेजित करना एवं अपने तप का गर्व करना आदि

को देखकर श्रीराम ने बाण से परशुराम को न मारकर उनके घमण्ड को नष्ट कर दिया।(8) और सन्देश दिया कि अहं ही विनाश का कारण है हमें शान्ति का पाठ पढ़ना चाहिए।

अयोध्याकाण्ड में मन्थरा जब कैकेयी को राम के विरूद्ध बोलने को कह रही थी उस समय कैकेयी ने भी श्रीराम के गुणों का व्याख्यान कर योग्य के अधिकार को श्रेष्ठ मानकर उन्हें ही राजा होना चाहिए, ऐसा भाव दर्शाया। अगर ऐसा मानवीय गुण विद्यमान रहे तो संसार में अपराध ही न होंगे।(9) कैकेयी राजा दशरथ से अपने वर मांगते हुए कहती हैं कि हे राजन! आपने मुझे वर देने की प्रतिज्ञा की थी आप भी महादानी राजा शैव्य के समन अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। राजा शैव्य ने एक कबूतर की जान बचाने के लिए षिकारी पक्षी बाज से कहा आप इसे न मारे। तभी बाज ने कहा राजन! यह मेरा भोजन है, और किसी को भी किसी के भोजन को छीनने का अधिकार नहीं है। राजा चाहते तो बाज का वध कर कबूतर की जान ले सकते थे परन्तु ये नैतिकता का अपमान होगा। अतः राजा ने मानवीय मूल्यों का परिचय देते हुए बाज को भोजन के रूप में उस कबूतर के भार समतुल्य अपनी भुजा देने का प्रण किया।(10) और इसी प्रकार महादानी राजा अलक्र ने वेदों के पारCत विद्वान ब्राह्मण को उसके याचना करने पर मन में खेद न लाते हुए अपनी दोनों आँखे निकाल कर दे दी।(11) सत्य ही प्रणवरूप शब्द ब्रह्म है। सत्य को प्राप्त समुद्र कभी भी अपनी तट रेखा को नहीं छोड़ता। सत्य ही अविनाशी वेद हैं। सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसीलिए आप भी सत्य का अनुसरण कीजिए।(12) परन्तु मानवीय मूल्यों के उपदेश देकर कोई अनिष्ट कार्य कराना मानवीय मूल्यों की हत्या है जो कैकेयी ने की। मानव में पितृभक्ति भी एक अनोखा गुण है, जो अन्य प्राणियों से अलग करता है यह राम के चरित्र में सर्वत्र दिखाई देता है जब वे कैकेयी के भवन में राजा दशरथ से मिलने गए और उनके न बोलने पर व्याकुल होकर कहते हैं कि मनुष्य जगत में जिसके कारण आता है उस प्रत्यक्ष देवता के अनुकूल बर्ताव क्यों न करेगा ?(13) इसी प्रकार माता अनुसूया भी सीता को उपदेश देते हुए भारतीय नारी में विद्यमान गुणों को बताते हुए पत्नी धर्म, पति की सेवा, पति को गुरू मानना आदि का व्याख्यान करती है।(14)

अरण्यकाण्ड में राम जब लक्ष्मण एवं सीता के साथ वन में जा रहे होते हैं तो मार्ग में विराध नामक राक्षस उन्हें रोक कर कहता है– तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो फिर भी तुम्हारा युवती स्त्री के साथ रहना कैसे सम्भव हुआ ? अधर्मपरायण पापी तथा मुनि समुदाय को कलbित करने वाले

तुम दोनों कौन हो।(15) उसके इस वचन से ज्ञात होता है कि राक्षस होते हुए भी उसे सभी आश्रमों के नियमों एवं गुणों का ज्ञान था। सीता जी राम को वन में अहिंसा का पालन करने को कहते हुए कहती है कि– एकबार एक मुनि वन में निवास करता था उसकी तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र ने उनके आश्रम में आकर खड्ग धरोहर के रूप में रख दी। फिर क्या मुनि जहाँ भी जंगल में जाते खड्ग को साथ ले जाते थे। धीरे–धीरे उन्होंने तप को छोड़कर अपनी बुद्धि को क्रूरतापूर्ण बना लिया और नरक को प्राप्त किया। हे राम! आप से भी निवेदन है कि आप भी हिंसा न करें, राक्षसों को भी अकारण न मारे क्योंकि–(16)

''क्व चशस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देथधर्मस्तु पूज्यताम्।''

जब रावण मारीच के पास जाकर सीता हरण में मदद करने को कहता है तब मारीच स्वयं राक्षस होकर मानवीय मूल्यों से पूर्ण जान पड़ता है वह रावण से कहते है– राजन! परायी स्त्री के संसर्ग से बढ़कर दूसरा कोई महान पाप नहीं है। तुम्हारे अन्तःपुर में हजारों युवती स्त्रियाँ है, उन अपनी ही स्त्रियों में अनुराग रखो। अपने कुल की रक्षा करो। राक्षसों के प्राण बचाओ तथा अपनी मान, प्रतिष्ठा, उन्नति, राज्य और प्यारे जीवन को नष्ट न होने दो।(17) अर्थात् पर नारी मर्दन पाप है। मानव के गुणों के विपरीत है।

किष्किन्धा काण्ड में जब राम वाली को छुपकर मार देते हैं तब वाली राम को फटकारते हुए कहता है कि रघुनन्दन! आप राजा दशरथ के सुविख्यात, सत्वगुण सम्पन्न, तेजस्वी, उत्तमवृत का आचरण करने वाले, करूणा का अनुभव करने वाले, प्रजा के हितैषी, सदाचार के ज्ञाता सभी राजत्व के गुणों से सम्पन्न हो फिर आप ने मुझे छल से क्यों मारा। मैं तो आप से लड़ा भी नहीं। राजन! इन्द्रिय निग्रह मनका संयम, क्षमा, धर्म, सत्य, पराक्रम तथा अपराधियों को दण्ड देना ये सभी राजा के गुण हैं मैं इन सभी गुणों का विश्वास करके ही सुग्रीव से लड़ने आया था। परन्तु आज हमें मालूम हुआ कि आप की बुद्धि मारी गई है आप दिखावे के लिए धर्म पर चल रहे हैं वास्तव में आप अधर्मी हैं।(18) राजन! साम, दान, क्षमा, धर्म, सत्य धृति पराक्रम ये भूपतियों के गुण है। हम फल फूल खाने वाले वनचारी मृग हैं यही हमारी प्रकृति है किन्तु आप तो मनुष्य है फिर भी आप ने मुझसे छल किया।(19) वाली के प्रश्नों का उत्तर देते हुए राम कहते हैं हे वानर! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचार को तुम स्वयं ही नहीं जानते हो फिर मेरी

निन्दा क्यों कर रहे हो। बड़ा भाई, पिता तथा जो विद्या देता है वह गुरू ये तीनों धर्म के मार्ग पर चलने वाले के लिए पिता तुल्य है तथा छोटा भाई, पुत्र और गुणवान शिष्य ये तीनों पुत्र के समान समझे जाए यही धर्म है। और तुम अपने छोटे भाई की पत्नी पुत्रवधू तुल्य का उपभोग करते हो तुमने धर्म को त्यागा है। अतः तुम मृत्यु के पात्र हो।[20] वाली अंगद से कहता है बेटा! देशकाल को समझो। कब और कहाँ कैसा आचरण करना चाहिए इसका निश्चय करके ही आचरण करो। समयानुसार प्रिय–अप्रिय सुख–दुःख जो आ पड़े उनको सहन करो। अपने हृदय में क्षमाभाव रखो। यही मानवीय गुण है।(21) वाली एवं श्रीराम के वचनों मानवीय गुणों का मनोरम वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान के द्वारा अषोक वाटिका में उत्पात मचाने पर उन्हें बन्दी बनाकर रावण के सामने पेष किया जाता है तो रावण राजत्व के गुण का परिचय देते हुए आमात्यों से कहता है कि बिना किसी दण्ड के सर्वप्रथम इस वानर से यहाँ आने का कारण पूछो।(22) रावण की बात सुनकर प्रहस्त नामक आमात्य ने हनुमान से कहा यह राजदरबार तुम डरों नहीं, घबराओ मत, धैर्य रखो, तुम्हारा भला होगा यदि तुम सत्य बता दोगे कि तुमको किसने भेजा है तो तुम जीवन को प्राप्त करोगे अन्यथा नहीं। तभी हनुमान भी सत्य का आचरण करते हुए यह शिक्षा देते हैं कि कभी झूठ का सहारा नहीं लेना चाहिए।(23)

युद्धकाण्ड में रावण अपने मन्त्रियों से कर्तव्य निर्णय के लिए उचित सलाह देने का अनुरोध करता है और मन्त्रियों की महत्वा को बताता है। इसी प्रकार वह पुरूषों के गुणों के आधार पर उनके तीन भेद बताता है जो उत्तम मध्यम और अधम है। जो व्यक्ति मन्त्रनिर्णय में समर्थ, मित्रों समान सुख–दुःख में समान भाव रखता है और देव के सहारे कार्य प्रारम्भ करता है वही उत्तम मनुष्य है, सभी गुणों से सम्पन्न है।(24) विभीषण रावण को युद्ध न करने की सलाह देते हुए क्रोध रूपी शत्रु का वर्णन करते हुए रावण को सीता वापस करने की सलाह देते हैं और कहते हैं कि भैया! आप क्रोध को त्याग दो। क्योंकि यह क्रोध सुख एवं धर्म का नाश करता है। यह मानव के गुणों को समूल नष्ट कर देता है।(25) राक्षस कुल में उत्पन्न होने पर भी विभीषण एक मानवीय गुणों का प्रतिरूप है।

रावण कुम्भकरण के पास सहायता माँगने के लिए जाता है तो कुम्भकरण स्वयं राक्षसी प्रवृत्ति का होने के बावजूद रावण को एक मानवीय मूल्यों से हीन राजा बताकर उसे लज्जित करता है और कहता है कि दशानन! जो तुमने छिपकर छलपूर्वक पर स्त्री हरण किया है वह महान

पापा है। जो राजा सब राजकार्य न्यायपूर्वक करता है उसकी बुद्धि निश्चयपूर्ण होती है और उसे पश्चाताप नहीं करना पड़ता है और किन्तु जो उचित कर्म किए बिना शास्त्रों के विपरीत होते हैं वे पाप को प्राप्त कराते हैं।(26) आप ने अनुचित कार्य किया है फिर भी मैं राजधर्म एवं भ्रातृधर्म का पालन करते हुए आप के साथ युद्ध में चलूँगा। भीषण युद्ध में जब रावण घायल हो जाता है तब उसका सारथी उसके प्राणों की रक्षा करने के लिए रावण को उसकी आज्ञा के बिना ही शत्रु सम्मुख से हटा देता है तभी रावण क्रोध पूर्वक उसे ड़ाँटकर युद्ध के नियमों के विपरीत बताता है।

रामायण में यदि मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है तो सिर्फ राक्षसों के चरित्र पर ही लाँछन नहीं लगाया जा सकता है। राम के चरित्र में भी इसे देखा जा सकता है। वह राम जो धर्म परायण कर्तव्यपरायण, प्रजापालक, सत्यप्रिय, सदाचारी और सभी गुण सम्पन्न हैं फिर भी लोकपवाद के कारण शम्बूक नामक शूद्र मुनि का वध उनके चरित्र पर एक कलंक से कम नहीं है।[27] फिर गर्भवती सीता को वन में छोड़ना किसी पाप से कम नहीं है। क्या किसी स्त्री को लोकापवाद के कारण ही कठिन समय में भी त्याग देना उचित था। परन्तु हम फिर भी कह सकते हैं कि श्रीराम सभी मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण थे। रामायण आज भी संसार में सर्वत्र पढ़ी, सुनी जाती है। श्रीराम के चरित्र की प्रशंसा की जाती है किन्तु खेद है कि वर्तमान में लोग सिर्फ उसको एक धार्मिक परम्परा समझ कर मात्र रामायण का पाठ करते हैं किन्तु उसमें विद्यमान गुणों का अनुसरण नहीं करते हैं।

संदर्भ सूची

वाल्मीकि रामायण
भारतीय संस्कृति (ड़ा० सत्यप्रकाश शर्मा)
बालकाण्ड, 7 सर्ग, श्लोक
बालकाण्ड, 33 सर्ग, 8 श्लोक
बालकाण्ड, 36 सर्ग, 8—13 श्लोक
बालकाण्ड, 52 सर्ग, 7 श्लोक
बालकाण्ड, 66 सर्ग, 13—14 श्लोक
बालकाण्ड, 76 सर्ग, 7—8 श्लोक
अयोध्याकाण्ड, 8 सर्ग, 14 श्लोक
अयोध्याकाण्ड, 14 सर्ग, 4 श्लोक
अयोध्याकाण्ड, 14 सर्ग, 5 श्लोक
अयोध्याकाण्ड, 14 सर्ग, 6—8 श्लोक

अयोध्याकाण्ड, 18 सर्ग, 16 श्लोक
अयोध्याकाण्ड, 118 सर्ग, 1–8 श्लोक
अरण्यकाण्ड, 2 सर्ग, 11 श्लोक
अरण्यकाण्ड, 9 सर्ग, 16–22 श्लोक
अरण्यकाण्ड, 38 सर्ग, 30–31 श्लोक
किष्किन्धाकाण्ड, 17 सर्ग, 16–23 श्लोक
किष्किन्धाकाण्ड, 17 सर्ग, 29–31 श्लोक
किष्किन्धाकाण्ड, 18 सर्ग, 13–20 श्लोक
किष्किन्धाकाण्ड, 22 सर्ग, 20 श्लोक
सुन्दरकाण्ड, 50 सर्ग, 5 श्लोक
सुन्दरकाण्ड, 50 सर्ग, 7–13 श्लोक
युद्धकाण्ड, 6 सर्ग, 6–8 श्लोक
युद्धकाण्ड, 9 सर्ग, 22 श्लोक
युद्धकाण्ड, 12 सर्ग, 28–33 श्लोक
उत्तरकाण्ड, 75 सर्ग, 1–4 श्लोक

◆◆◆

भारतीय संस्कृति का प्रतीक संगीत एवं मानवीय मूल्य

डॉ0 मोनिका दीक्षित

विभागाध्यक्ष – संगीत विभाग, किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा (उ०प्र०)

परम्परागत रुप से शिक्षा का दृष्टिकोण हमेशा यही रहा है कि इससे सामाजिक जागृति हो और जीवन को सुन्दर व मर्यादित बनाया जाए। महान जर्मन शिक्षा शास्त्री जॉन फ्रेडरिक हरबर्ट ने अपने दर्शन में यह विचार रखा है कि '' शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य नैतिकता की धारणा में समाहित किया जा सकता है।''

बौद्धिक चिन्तन के द्वारा सत्य की खोज करते हुए मानव प्रेम व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास '' सत्यम् शिवम् सुन्दरम् '' की संस्कृति का मूल मंत्र है। दिनकर के शब्दों में –'' संस्कृति ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में व्याप्त है।'' यह एक जातिगत गुण है जो मानव के स्वभाव में उसी तरह समाया हुआ है जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता युग–युग में होता है। संस्कार हजारों सालों में निर्मित होते हैं अतः प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है।

मनुष्य ने दार्शनिकों के सिद्धांतों के आधार पर जीवन के प्रति जिस दृष्टिकोण को जन्म दिया उसे ही हम ''भारतीय संस्कृति'' के नाम से पुकारते हैं। हर राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है जिसमें वहां के समाज की आत्मा निवास करती है। ऐसे गुण जो समाज व जाति विशेष को संस्कारों के रूप में प्राप्त होते हैं और जिनका समाज के डर से उल्लघंन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के मान्यता प्राप्त नैतिक, मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक आदर्श जो पीढी दर पीढी चलते हैं संस्कृति कहलाते हैं।

किसी भी देश की संस्कृति की झलक वहां की कलाओं से स्पष्ट होती है। संस्कृति सभ्यता का ही रूप है। जहां इन दोनो में गहरा संबंध है वहां भिन्नता भी है। यदि सभ्यता हमारा शरीर है तो संस्कृति हमारी आत्मा। सभ्यता हमारे बाहरी रूप को उजागर करती है तो संस्कृति हमारी आत्मा, विचारों तथा संस्कारों का उल्लेख करती है। संस्कृति में मनुष्य के मनोविकारों के संस्कार, रूढीवादी रहन–सहन, आचरणगत परम्पराऐं, धार्मिक, सामाजिक

तथा नैतिक मूल्य, बौद्धिक विकास आदि सभी विद्यमान रहते हैं।

वर्तमान समय में ऊँची आकांक्षाओं का दबदबा है, जिससे भौतिक प्रगति के लिए तकनीकी ज्ञान पर सारा बल दिया जा रहा है। बदलते भौतिकवादी समाज में व्यक्ति के मूल्य लुप्त हो गए है। अर्थ पहले अन्य काम बाद में। धन ने मूल्यों पर अतिक्रमण कर लिया है ऐसे में विद्यालय विद्या के आश्रय न रहकर अर्थ के आलय बन गये है। आज आवश्यकता है मूल्य व मान्यताओं को विवेक की कसौटी पर कसने की। मूल्य हमारे वे सिद्धांत एवं जीवन निर्वाह के नियम है जो हमारे जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु दिशा निर्देश करते हैं। व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने वाली संश्लेषणात्मक शक्तियों को मूल्य कहा जाता है। वस्तुतः आज भी शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान को उत्पन्न कर विस्तृत करना ही है।

ड़ॉ. सत्यकेतु के शब्दों में– '' चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिये मनुष्य जो प्रयत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।''

संस्कृति द्वारा मनुष्य के सोचने का ढंग, विचार, धार्मिकता, सामाजिकता आदि सभी अवस्थाओं का ज्ञान होता है। संस्कृति समाज का दर्पण है और कला संस्कृति का। संगीत एक कला है और उसमें संस्कृति की झलक, अनुरूपता, मान्यताओं और परम्पराओं आदि का वहन होना चाहिये। संगीत में भारतीय संस्कृति के इन आदर्शो मान्यताओं और परम्पराओं को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

किसी भी कला के प्रति अनुराग मनुष्य की विशेषता है। इस दिशा में संगीत कला का शिक्षा में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का संपूर्ण विकास तथा सुप्त गुणों की अभिव्यक्ति है। महान संगीत जब महान विचार मे बदल जाता है तो वह हमें एक अद्भुत ताकत देता है। मन को विषाद–अवसाद से मुक्ति दिलाता है। जीवन को अर्थ पूर्ण बनाता है और अपनी रचनात्मकता को निखारने के अवसर देता है।

संगीत का प्रभाव सर्वव्यापी है। चराचर जगत संगीत के द्वारा किसी न किसी रूप में प्रभावित होता है। मानव के समस्त भाव–व्यवहार को वहन करने की क्षमता संगीत में ही है। जब भावाभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों (संकेत व भाषा आदि) की सामर्थ्य एक सीमा पर पहुँचकर समाप्त हो जाती है तब स्वर, लय और छन्द का आश्रय लेकर अनेकानेक भाव–व्यंजनाएं संगीत के माध्यम से ही निःसश्त हुआ करती हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत का धर्म से घनिशठ संबंध है। भारत में जितना धार्मिक चिन्तन हुआ है उतना विश्व के किसी अन्य देश में नहीं हुआ। यहाँ अनेक धर्म है लेकिन उनके बीच कटुता नहीं, धर्म–निरपेक्ष नीति अपनाऐ जाने के कारण सभी के बीच समन्वय कायम है। संगीत ने हर धर्म व हर जाति को स्थान दिया है। यही कारण है कि गुरूद्वारे में गुरूवाणी, मस्जिद में कव्वाली, मेंदिर में आरती तथा चर्च में प्रार्थना के रूप में संगीत हर जगह विद्यमान रहा।

सांस्कृतिक एकता का मूल आधार विज्ञान, भाषा, कला, जाति या धर्म नहीं है। इसका मूल आधार आत्मा है। यही वह शाश्वत सत्य है जो युगों से मानवीय मूल्यों को पुष्ट करता रहा है। इसी बल पर भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे अधिक समन्वयवादी संस्कृति के रूप में उभरती है। वास्तव में हमारी संस्कृति में जो एकीकरण की, नैतिकता की भावना है वह कलाओं से ही प्राप्त हुई है। संगीत व्यक्ति को जगत की चिन्ताओं के झगड़ों से उठाकर ऐसे लोक में पहुँचा देता है जहाँ न द्वेष है, न दुःख है, न मलीनता है और न कोई स्पर्धा।

संगीत एक उच्च कोटि की कला है। इसके श्रवण और साधना से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है और उसकी मनोवृत्तियों का परिष्कार होता है। हिंसात्मक और क्रूर ह्रदय वाले व्यक्तियों पर संगीत ने ऐसे प्रभाव ड़ाले हैं कि वे हिंसा के मार्ग को छोडकर सेवा व दया आदि सद्‌गुणों से सम्पन्न हो गये हैं। संगीत के संपक्र में आया हुआ मनुष्य विशाल ह्रदय वाला हो जाता है। उसकी जातिगत व देशकाल आदि की संकीर्ण भावनाऐं समाप्त हो जाती हैं। वह संवेदनशील हो जाता है और सभी सम्बन्धों एवं समस्याओं पर समग्र रूप से विचार करता है।

एक कलाकार के मेंच प्रदर्शन को असंख्य श्रोता एकाकार होकर सुनते है। कहीं कोई संकीर्ण विचार नहीं, जाति, धर्म, वंश, देश सब भूलकर उस ब्रह्मानन्द को पाने में लीन रहते हैं। संगीत हमें उस उच्च मानसिक धरातल पर सहज ही ले जाता है। एक संगीत कलाकार मानवीय मूल्यों के प्रति, राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता के प्रति चेतना जाग्रत करने में सफल हो सकता है। वह समाज का प्रेरक है। एक संगीत के द्वारा जो कार्य हो जाता है वह सैंकड़ो व्याख्यानों से नहीं होता। '' इंसाफ की डगर पे, बच्चों दिखाओ चल के '' जैसे गीतों के द्वारा बच्चों को मानवता का पाठ पढाया जाता रहा है।

एक प्राचीन उक्ति भी है कि '' साहित्य संगीत कला विहीनः,

साक्षात पशु पुच्छ विषाणहीनः '' अर्थात संगीत, साहित्य एवं कला से विहीन व्यक्ति साक्षात् पशु के समान है। संगीत जहाँ एक ओर मानव के मनोरंजन का साधन है वहीं दूसरी ओर मानव के आत्म–साक्षात्कार के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त करने का भी श्रेष्ठ श्रेयकर मार्ग है। संगीत में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगें जो हिन्दू गुरू के मुस्लिम शिष्य और मुसलमान गुरू के हिन्दू शिष्य हुए है। संगीत सम्मेलनों में पाकिस्तान व हिन्दुस्तान के गायक सम्मिलित होकर मैत्री भाव से एक मेंच पर बैठकर एक साथ सरस्वती माँ की आराधना करते हैं। साम्प्रदायिक भावों को दूर कर मानवीय मूल्यों को जगाने की भावना संगीत द्वार विकसित की जा सकती है।

गाँधी जी का ''वैष्णव जन तो तेन्हे कहिये'' तथा '' रघुपति राघव राजा राम '' गीत जन समूह के ह्रदय में शान्ति का संचार कर मानवता को जन्म देने का काम करते हैं। विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण, ज्ञानवर्धन, देश व समाज के प्रति प्रेम, अनुशासन आदि प्रवृत्तियों के संवर्धन में संगीत हमेशा से ही सहायक रहा है।

भारतीय संस्कृति में शांति, प्रेम व सहयोग को विशेष महत्व दिया गया है। ''जिओ और जीने दो'' के सिद्धांत को मान्यता दी गई है। दूसरों को दुःख देना, बैर की भावना रखना, अपने से हीन समझना, आदि बातों को अनैतिक, अधार्मिक माना गया है। दूसरों से प्रेम करना, निस्वार्थ किसी की मदद करना, किसी को दुःख न पहुँचाना ये हमारे जीवन के आदर्श रूप माने जाते हैं। अतः संगीत का उद्‌देश्य मानव को कल्याण की ओर ले जाना है। भारतीय संगीत में वह शक्ति है कि वह मानव में नैतिक गुणों का विकास कर सके।

आज के युग में भौतिक प्रगति के बावजूद मानव मानसिक कुण्ठा और मानसिक द्वन्द वितृष्णा में जी रहा है। रंग, भेद, भाषा और विभिन्न वादों को लेकर विश्व भर में तनाव पूर्ण स्थिति चल रही है। ऐसे समय में संगीत एक सार्वभौमिक भाषा के रूप में मानव मात्र के लिये शांति का संदेश दे सकता है। संगीत विश्वबंधुत्व की भावना को उजागर करता है। विशेषकर ''भारतीय संगीत'' जो आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, विश्व को इस तनावपूर्ण स्थिति से उबार सकता है। आज विभिन्न देशों से जो सांस्कृतिक आदान–प्रदान हो रहे हैं उनमें भारतीय संगीतज्ञों ने अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है।

वर्तमान समय की मांग के अनुसार अनेक कुप्रथाओं व कुरीतियों को दूर करने के लिये अनेक लोकगीतों व गीतों की रचना हुई है। ऐसे

उपदेशात्मक गीत मनुष्य को कुकर्म प्रवृत्तियों से हटाकर सुकर्म करने की प्रेरणा देते हैं। बुरे कार्य करने वाले व्यक्तियों को यदि उपयुक्त संगीत सुनने को मिले तो उनके मानसिक विचारों में परिवर्तन लाया जा सकता है। समाज में समय–समय पर अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम होते रहते हैं जिससे आपसी भाईचारे की भावना प्रबल होती है। नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। अतः संगीत अपने सर्वगुणों के कारण समाज में अच्छे, सुसभ्य नागरिकों का निर्माण करने में सक्षम है।

संदर्भ पुस्तकें

हमारा आधुनिक संगीत– ड़ॉ. सुशील कुमार चौबे पृष्ठ संख्या 1 से 29
संगीत– सूफी इनायत खाँ पृष्ठ संख्या 86 से 93
संगीत निबंध मंजरी–पं. भगवत शरण शर्मा पृष्ठ संख्या 1 से 18
संगीत का समाजशास्त्र–सत्यवती शर्मा पृष्ठ संख्या 55 से 85
सांगीतिक निबंध माला–ड़ॉ. सीमा जौहरी पृष्ठ संख्या 27 से 43
संगीतायन– सीमा जौहरी पृष्ठ संख्या 26 से 42

◆◆◆

महर्षि वात्स्यायन का दर्शन और शिक्षा

डॉ० प्रदीप कुमार[1] एवं नितिन कुमार त्यागी[2]

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर(उ०प्र०), Ph.D. शोधार्थी,, चौ० चरण सिंह विवि०, मेरठ

प्रस्तावना

षिक्षा के भारतीयकरण की चर्चा करने से पहले दो प्रष्नों पर विचार किया जाना आवष्यक है : (1) भारत क्या है, और (2) क्या वैदिक भारत और वर्तमान भारत समरूप हैं या दोनों के स्वरूप में स्पष्ट भिन्नता है जिसके कारण परम्परागत भारतीय षिक्षाप्रणाली को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता? कहने की आवश्यकता नहीं कि वैदिक भारत विषुद्ध ''आर्य एवं एकात्मक भारत'' था, जबकि वर्तमान भारत ''विविधात्मक भारत'' है जहाँ आर्य और अनार्य, आक्रान्ता और आक्रान्त, धर्म और पन्थ, आस्तिक और नास्तिक, धर्मसापेक्ष और धर्मनिरपेक्ष साथसाथ रहते हैं। षिक्षा का भारतीयकरण करते समय भारत की इस विविधात्मक जनसंख्या और उसके विभिन्न तत्त्वों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और जीवनमूल्यों का ध्यान रखना होगा और एक सर्वमान्य जीवनदर्षन का विकास करना होगा। यही नहीं, एक ऐसे ''मिश्रित समाज'' की षिक्षाप्रणाली कर्मकाण्डों से मुक्त और सर्वमान्य जीवनमूल्यों पर आधारित होगी। इसके अतिरिक्त, ऐसे मिश्रित भारतीय समाज के धर्मप्रधान एवं धर्माग्रही होने के कारण वह षिक्षाप्रणाली ''धर्मसापेक्ष'' भी होगी। मिश्रित भारतीय समाज की आत्मा धर्मनिरपेक्ष जीवनदर्षन और षिक्षाप्रणाली को कदापि स्वीकार नहीं करेगी। अतः हमें सर्वमान्य धार्मिक मूल्यों का भी वरण करना होगा। इस दषश्टि से, भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित मूल्य पर्याप्त नहीं हैं और उनके परिवर्धन की बड़ी आवश्यकता है। यह परिवर्धन विभिन्न धर्मों और पन्थों के धर्मग्रन्थों में उल्लिखित मूल्यों में से निकाले जा सकते हैं। हमें यह स्पष्ट रूप से समझलेना चाहिए कि षिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण वैयक्तिक और सामासिक विकास करने के लिये वैयक्तिक और सामासिक दोनों प्रकार के मूल्यों की आवश्यकता होती है और वे दो पष्थक्–पष्थक् स्रोतों से प्राप्त होते हैं : (1) वैयक्तिक मूल्य धर्मषास्त्र से प्राप्त होते हैं, और (2) सामासिक मूल्य संविधान और समाजषास्त्र से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार धर्मषास्त्र और संविधान दोनों जीवनमूल्यों के सर्वमान्य स्रोत होते हैं। किन्तु मूल्यस्रोतों का यह विभाजन एकान्तिक और अपवर्जक नहीं है क्योंकि वैयक्तिक और

सामासिक जीवनमूल्य दोनों स्रोतों में हो सकते हैं अथवा कुछ जीवनमूल्य वैयक्तिक और सामासिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

अनुसन्धाता का सुझाव है कि राष्ट्रीय षिक्षाप्रणाली के पुनर्निर्माण के लिये अपेक्षित युगानुरूप जीवनमूल्यों का चयन व्यक्ति, समाज और राश्ट्र के सर्वांगीण विकास, उनकी समस्याओं के समाधान और उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति को ध्यान में रखकर किया जाये।

शैक्षिक पक्ष

(1) शिक्षा के उद्देश्य

1. इस विशय में, वैदिकमत सर्वथा निर्दोश, उदार और व्यापक प्रतीत होता है। वैदिक दर्षिट से, षिक्षा का अन्तिम, आधारभूत उद्देष्य वेद के ''मनुर्भव'' आदर्ष में सन्निहित है। इस आदर्ष का विवेचन करके हम षिक्षा के अन्तिम, आधारभूत उद्देष्य को निम्न प्रकार षब्दबद्ध कर सकते हैं :

> ''षिक्षा का अन्तिम, आधारभूत उद्देष्य ''मानवनिर्माण'' अर्थात् मानव को आदर्ष पुरुश और उसके माध्यम से समाज को आदर्ष समाज बनाना है। आदर्ष मानव और आदर्ष समाज के उद्देष्यों की सिद्धि मानव और समाज का सर्वांगीण, सन्तुलित विकास करके ही कीजासकती है।''

2. व्यक्ति के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास का तात्पर्य है, उसकी षारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और सामासिक **क्षमताओं एवं दक्षताओं का विकास करना** और समाज के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास का तात्पर्य है, व्यक्ति की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं षैक्षिक **क्षमताओं एवं सम्बन्धों का विकास।**

3. व्यक्ति के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास के अन्तर्गत उसकी समस्त षारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और षैक्षिक क्षमताओं और दक्षताओं का समावेष हो जाता है। षिक्षा के यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देष्य हैं जिन्हें षिक्षाविद् भिन्न–भिन्न नामों से पुकारते हैं, यथा सामाजिक दक्षता, आर्थिक दक्षता, राजनीतिक दक्षता आदि। अब प्रष्न उठता है कि षिक्षा संस्थानों में इन क्षमताओं और दक्षताओं के लिये क्या किया जा सकता है? इस प्रष्न का संक्षिप्ततम उत्तर यही है कि षिक्षा संस्थाओं को चाहिए कि वे पाठ्यक्रियाओं

के द्वारा छात्रों को इन क्षमताओं एवं दक्षताओं के महत्त्व का सैद्धान्तिक ज्ञान करायें और पाठ्येत्तर क्रियाओं के द्वारा उनको इन क्षमताओं एवं दक्षताओं के विकास के लिये व्यावहारिक, प्रायोगिक एवं क्रियात्मक प्रषिक्षण प्रदान करें।

(2) पाठ्यक्रम

1. सर्वविदित है कि राष्ट्रीय षिक्षाप्रणाली के दो ही आधार या केन्द्रबिन्दु होते हैंः व्यक्ति और समाज। इनमें भी समाज की अपेक्षा व्यक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वही समाज के निर्माण और विकास का वास्तविक माध्यम होता है। अतः षिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण व्यक्ति और समाज दोनों के अभ्युदय एवं विकास की दषि्ट से किया जाना चाहिए।

2. अनुसन्धाता का सुझाव है कि भारतीय षिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम तीन भागों में विभक्त होना चाहिए : (1) दार्षनिक–सांस्कृतिक पाठ्यक्रम, (2) वैज्ञानिक पाठ्यक्रम, और (3) तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम। दार्षनिक–सांस्कृतिक पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में जीवन के प्रति एक सम्यक् दार्षनिक दषि्ट का, वैज्ञानिक पाठ्यक्रम के द्वारा वैज्ञानिक दषि्टकोण का और तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम के द्वारा श्रम, कलाकौषल, हस्तकार्य, व्यवसाय तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना का विकास कियाजाना चाहिए। संस्कारविहीन, अन्धविश्वासाक्रान्त, श्रमविरोधी स्वतन्त्र भारत के अभ्युदय का बस यही एकमात्र राजपथ है।

3. पाठ्यक्रम में सिद्धान्तज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक क्रियाकलापों को अधिक महत्त्व प्रदान कियाजाना चाहिए। उदाहरण के लिये, षिक्षक–प्रषिक्षण के पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक तथ्यों की अपेक्षा अभ्यास षिक्षण, कक्षाषिक्षण और हस्तकौषल पर अधिक बल दियाजाना चाहिए। सम्प्रति भारतीय प्रषिक्षण–संस्थाओं में प्रायोगिक प्रषिक्षण की घोर उपेक्षा की जाती है जो उचित नहीं।

(3) शिक्षणविधि

1. भारतीय परिस्थिति के लिये उपयुक्त षिक्षणविधि में श्रवण, मनन, निधिध्यासन तत्त्वों का समावेष अवष्य होना चाहिए। भारतीय षिक्षाविदों को इस प्रष्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि

इन तत्त्वों को प्रचलित व्याख्यान या प्रवचन विधि (Lecture Method) में प्रभावी प्रयोग किस प्रकार कियाजाय? वैसे ये सब तत्त्व वैदिककालीन चतुश्पद षिक्षणविधि (जिज्ञासा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन) में पहले से ही विद्यमान हैं। गीता में मनन को परिप्रष्न कहागया है। उपनिशदों में चतुश्पद षिक्षणविधि का प्रभावी प्रयोग हुआ है। भारतीय षिक्षाविदों को पाश्चात्य षिक्षणविधियों का अन्धानुकरण न करके वैदिक षिक्षणविधि की उपादेयता पर पुनर्विचार करना चाहिए।

2. पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों और षिक्षाविदों की यह मान्यता पूर्णतया निराधार एवं भ्रामक है कि वैदिककाल के ऋशि–मुनि मनोविज्ञान से अपरिचित थे क्योंकि उस समय एक स्वतन्त्र विशय के रूप में मनोविज्ञान का विकास नहीं हुआ था। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि अध्यात्मषास्त्र और मनोविज्ञान का जितना विकास प्राचीन भारत में हुआ, उतना अन्यत्र आज तक नहीं हो पाया।

3. अनुसन्धाता भारतीय और पाश्चात्य षिक्षणविधियों एवं षिक्षणसिद्धान्तों के समन्वय पर विशेष बलदेना आवष्यक समझता है। भारतीय षिक्षणकला की उपेक्षा और पाश्चात्य षिक्षणकला के अन्धानुकरण से भारतीय षिक्षा का उद्धार कदापि न होगा। भारत को भारतीय परिस्थिति के अनुरूप षिक्षणविधि का विकास करना ही होगा। आजकल भारतीय षिक्षक–प्रषिक्षण–संस्थाओं में षैक्षिक प्रौद्योगिकी (Educational Technology) और पाश्चात्य षिक्षणविधियों (हरबार्ट की पंचपदप्रणाली, पैस्टालॉजी के षिक्षणसिद्धान्त, किण्डरगार्टन एवं मॉण्टेसरी षिक्षणपद्धतियाँ, डाल्टनप्लान, प्रोजेक्टमैथड, षिक्षणप्रतिमान (Teaching Models) आदि के नाम से जिन षिक्षणविधियों का ज्ञान करायाजारहा है, वे भारतीय परिस्थिति में कितनी व्यावहारिक हैं? इन षिक्षणविधियों की उपयोगिता एवं अनुकूलता का अनुसन्धान होना चाहिए।

4. हमें प्रत्येक विशय की प्रकृति के अनुसार षिक्षणविधि का चयन करना होगा और आवश्यकतानुसार नयी विधियों का आविश्कार करना होगा। समन्वय और अनुसन्धान इस लक्ष्य की सिद्धि के राजपथ हैं। उदाहरण के लिये, मानव या चरित्रनिर्माण की दृश्टि से खेल और अनुषासन में समन्वय की बड़ी आवश्यकता हैं।

(4) गुरुशिष्य सम्बन्ध

1. भारतीय संस्कृति ने गुरु और शिष्य के मध्य जो भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है, उसका विच्छेद किया जाना असंभव है। तथापि, यह सत्य है कि अब भारतीय समाज में दिव्यगुरु का स्थान पहले–जैसा नहीं रहा है और गुरू शिष्यों की आलोचना का वाद विशय बन गये हैं। किन्तु समाज को यह सोचना चाहिए कि वह उपेक्षित अपमानित एवं असन्तुश्ट गुरु से अपनी सन्तानों का निर्माण किस प्रकार करा सकेगा? समाज को चाहिए कि वह आलोचना के बजाय मानवनिर्माता गुरुजनों की समस्याओं को समझे और उनका समाधान करे। समाज के बच्चों की षिक्षा का दायित्व वहन करनेवाले गुरु को समाज का सम्मान और सहयोग मिलना ही चाहिए।

2. अनुसन्धाता का सुझाव है कि या तो ऐसी षिक्षक–प्रषिक्षण–संस्थाओं को आदर्ष षिक्षक–प्रषिक्षण के लिये सक्षम एवं कर्त्तव्यपरायण बनायाजाये अथवा उन्हें समाप्त करदिया जाये। विद्वतापूर्ण सैद्धान्तिक संस्तुतियों द्वारा इन भ्रश्ट षिक्षक–प्रषिक्षण–संस्थानों को सन्मार्ग पर लाया जाना सर्वथा असंभव है।

(5) महिला शिक्षा

1. षिक्षा के क्षेत्र में समानता सिद्धान्त के साथ–साथ व्यक्तिगत भेदों के सिद्धान्त को भी अपेक्षित महत्त्व प्रदान कियाजाना चाहिए और इस प्रष्न पर गंभीरतापूर्वक विचार विमर्ष होना चाहिए कि क्या स्त्री का स्त्री के रूप में और पुरुश का पुरुश के रूप में नैसर्गिक विभेदीकरण अकारण एवं निश्प्रयोजन है? अनुसन्धाता का मत है कि यह विभेदीकरण सकारण और सप्रयोजन है। अतः वह विश्वविद्यालय षिक्षा आयोग (1948–49) की इस संस्तुति से सहमत है कि स्त्रीपुरुश की क्षमतात्मक समानता के बावजूद स्त्री की षिक्षा स्त्री के रूप में और पुरुश की षिक्षा पुरुश के रूप में होनी चाहिए।

2. भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित आदर्ष मानव के स्वरूप और जीवनमूल्यों की दष्टि से भारतीय परिस्थिति में सहषिक्षा की प्रासंगिकता पर गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार किया जाना चाहिए।

अनुसन्धाता किसी कारणवष इस संस्तुति की विषद व्याख्या करना उचित नहीं समझता।

3. अनुसन्धाता इस संस्तुति पर विशेष बल देना आवष्यक समझता है कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में सब महिलाओं के लिये षिक्षा और नियोजन के क्षेत्रों में आरक्षण की समस्त सुविधाएँ सुलभ होनी चाहिए और उन्हें जातीय एवं वर्गीय आरक्षण की परिधि से बाहर रखाजाना चाहिए। अन्य षब्दों में, महिलाओं को आरक्षण की सुविधाएँ महिलाओं के रूप में मिलनी चाहिए।

4. महिला वर्ग में अधिकतम षिक्षाप्रसार की दषि्ट से अनिवार्य षिक्षा अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए और उनकी षिक्षा को निर्बाध बनाने के लिये उन्हें अधिकतम षैक्षिक सुविधाएँ सुलभ करायीजानी चाहिए, किन्तु महिला–षिक्षा का आधार मुख्यतया वैदिक पारिवारिक आदर्ष ही होने चाहिए।

(6) अन्तिम निर्णायक संस्तुति

पूर्वगत पंक्तियों में प्रस्तुत संस्तुतियाँ षिक्षाप्रणाली के भारतीयकरण की दषि्ट से की गयी हैं। अनुसन्धाता का सम्पूर्ण अनुसन्धान इस मूलभूत मान्यता पर आधारित है कि **थिक्षाप्रणाली के भारतीयकरण का तात्पर्य उसके समस्त पक्षों को सर्वमान्य भारतीय जीवनमूल्यों पर आधारित करना है।** उपर्युक्त विवेचन में परीक्षाप्रणाली, षिक्षा का व्यवसायीकरण आदि पक्षों के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ नहीं की गयी हैं क्योंकि अनुसन्धाता की मान्यता है कि इन पक्षों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय षिक्षा आयोगों द्वारा की गयी संस्तुतियाँ पर्याप्त हैं और उन्हें यथाषीघ्र कार्यान्वित किया जाना चाहिए। यहाँ इन पक्षों के भारतीयकरण की दषि्ट से इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि षिक्षाप्रणाली के अन्य पक्षों की तरह परीक्षाप्रणाली आदि पक्ष भी सर्वमान्य जीवनमूल्यों की उपेक्षा न करें। सर्वमान्य जीवनमूल्य षिक्षा और उसके समस्त पक्षों के लिये मुख्य आधार मानेजायें और षिक्षा का प्रत्येक पक्ष उन मूल्यों पर आधारित हो। मूल्यषिक्षा मात्र सच्ची षिक्षा ही नहीं, अपितु षिक्षा के भारतीयकरण का एकमात्र सर्वोत्तम राजपथ भी है। मूल्यहीन मानव मानव नहीं, मूल्यहीन समाज समाज नहीं, मूल्यहीन राश्ट्र राश्ट्र नहीं, मूल्यहीन धर्म धर्म नहीं, मूल्यहीन संस्कृति संस्कृति नहीं और मूल्यहीन षिक्षा षिक्षा नहीं। मूल्य नहीं तो कुछ नहीं।

वस्तुतः मूल्यसंकट ही स्वतन्त्र भारत का वास्तविक राष्ट्रीय संकट है।

संदर्भ

1. पण्डित माधवाचार्य : कामसूत्रम् (भाग–2), खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, बम्बई–4, 1999
2. डॉ0 रामचन्द्र वर्माशास्त्री : कामसूत्र, मनोज पब्लिकेशन, चाँदनी चौक, दिल्ली–6, 2008
3. जीवन के लिए शिक्षा, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों हेतु पारिवारिक स्वास्थ्य एवं जीवन–कलाओं की शिक्षा का गाइड, उ0प्र0 शासन
4. राज्य माध्यमिक शिक्षकों की कार्य–पुस्तिका : विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम, यूनिसेफ, यूनिसेफ भवन 73, लोधी एस्टेट, नई दिल्ली
5. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
6. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

7- Research in Education, Best J.W., New Delhi

8- S.V.C. Arya : The Fourth Indian Year Book of Education, New Delhi, Jan. 1972.

9- Encyclopedia X. Xarris, Chistrew : Encyclopedia of Educational Research, New York, The Macmillan Company, Third Edition, 1960.

10- Educational Ideas and Institutions in Ancient India : Janki Prakashan, Patna, 1979.

◆◆◆◆

जल–प्रकृति की प्रेरक शक्ति

डॉ0 विजय कुमार[1], डॉ0 मुजाहिद अली[2] एवं डॉ0 जगजीवन राम[3]
[1]राजकीय महाविद्यालय बबराला गुन्नौर सम्भल, [2]राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर, [3]ड़ॉ0 बी0 आर अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय मैनपुरी

पृथ्वी पर पीने योग्य जल की सीमित मात्रा उपलब्ध है। औद्योगिक क्षेत्र का जिस गति से विस्तार हुआ है, उससे भूजल की मांग में अप्रत्याशित वृध्दि के चलते धरती की कोख में समायें पानी का अनियोजित असीमित एवं अधांधुध दोहन हो रहा है। इसके चलते देश के कई क्षेत्रों में भूजल दोहन की स्थिति वहाँ पर वर्षा की वार्षिक प्रतिपूर्ति से अधिक है । जल स्तर में आ रही निरन्तर गिरावट के कारण दलदली तथा तराई भूमि का क्षेत्र दिन –ब– दिन कम होता जा रहा है जिस के फल स्वरूप विभिन्न बनस्पतियाँ तथा जन्तुओं की अनेक प्रजातियॉ लुप्त हो चुकी है और अनेक लुप्त होने की कगार पर है। पारिस्थितिक तंत्र गड़बड़ा रहे हैं।

अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो रही है। बीसवीं शताब्दी में हम विश्व के आधे से ज्यादा तराई क्षेत्रों को खो चुके है। अलवणीय जल पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता की हानी, लवणीय जल तथा मृदा परिस्थितिकी तंत्र में उपलब्ध जैव विविधता की तुलना में अधिक हुई है।

यूरोप के तराई क्षेत्र नष्ट होने के कारण वहाँ की जैव विविधता खत्म हो गई है। यूनईटेड नेशन क्लाइमेट रिपोर्ट के अनुसार हिमालय पर्वत श्रंखला के बर्फीले ग्लेशियर एशिया में बहने वाली प्रमुख नदियों में जल स्रोत है। इन नदियों पर लगभग 2.4 बिलियन आबादी आश्रित है। पृथ्वी के बढ़ते ताप के कारण यह अनुमान लगाया गया है कि 2035 तक हम इन ग्लोशीयरों को खो देंगें। जिस कारण भारत, चीन पाकिस्तान, बगंलादेश तथा नेपाल में पहले बाढ़ और फिर सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी। वर्ष 2025 तक 2/3 विश्व की जन संख्या को पेयजल संकट का सामना करना पड़ेगा।

धरती का सीना चीरकर लगातार पानी निकालने से मैक्सिको सिटी, बैंकाक व वेनिस में ज़मीन धंसने की समस्या उत्पन्न हो गई है। यदि यही स्थिति रही तो धरती की कोख सूख जाएगी। हम तो नवीन प्रौद्योगिकी के बल पर जल प्राप्त कर लेगें। लेकिन पृथ्वी को प्राणवान वायु देने वाले

इन पौधो का क्या होगा? क्या इन के बिना हमारा जीवन संभव है!

संयुक्त संघ के अनुसार विश्व के विकासशील देशो के 200 मिलियन लोगो के पास स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। शहरीकरण तथा औद्योगीकरण, के कारण स्वच्छ जल स्रोत प्रदूशित हो रहे हैं। भारत मे पीने के लिए 90ः जल नदियों से आता है जो मानवीय क्रियाकलापों के कारण प्रदूशित हो गई है। गंगा में 873 मिलियन लीटर प्रति दिन दूशित जल ड़ाला जा रहा है। साबरमती नदी में 998 मिलियन लीटर प्रति दिन दूशित जल अहमदाबाद शहर से आता है।

विश्व के जल स्रोत सिकुड़ते जा रहे हैं। जल–वायु परिवर्तन हो रहा है। जिससे जीवधारी प्रभावित हो रहे हैं। इस समय की सब से बड़ी मांग हैं पर्यावरण संरक्षण। यद्यपि कई विकसित तथा विकासशील देश इस दिशा में प्रयत्नशील है और विभिन्न विधिया अपना रहे हैं। जिसमें शामिल है रेनवाटर हार्वेस्टिग, बम्बू ड्रिप सिचांई ,तलाब, कुण्ड़ो का विकास आदि। जल की बढ़ती आवश्यकता तथा घटती उपलब्धता के कारण देशो की सीमाओं के बीच जल संसाधनों को लेकर तनाव तथा विवाद की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

अर्थ–सम्मिट–2002 के अनुसार वर्ष 2015 के मध्य तक आधे पृथ्वी वासियों के पास पर्याप्त जल की उपलब्धता नहीं है। कुछ विकसित देश जैसे उत्तरी अमेरिका, यूरोप, रूस आदि में 2025 तक जल की समस्या नहीं होगी क्योकिं इन देशो की जनसंख्या वृद्धि जल संसाधनों के अनुरूप हैं केन्द्रीय जल आयोग के अनुसार विश्व में भारत ऐसा देश है जहाँ बड़े क्षेत्र की सिचांई की जाती है। जो 59 मिलियन हेक्ट0 है। 1997 में इस क्षेत्र की सिचांई के लिए 501 बिलियन क्यूबिक मीटर जल का उपभोग होता था जो आने वाले वर्षो में और बढ़ा है।

लुधियाना को भारत का मानचेस्टर कहा जाता है। यह भारत के प्रदेश पंजाब का तेजी से विकसित हो रहा शहर है यह दिल्ली से 250 किमी0 की दूरी पर स्थिति है। पंजाब का सबसे अधिक आबादी वाला शहर है। 1991 की जनगणना के अनुसार शहर की आबादी 1 मिलियन को पार कर गई थी। बढ़ती आबादी, औद्योगिक विकास के कारण शहर जल प्रदूषण व भूगर्भ जल के अभाव से ग्रसित है।

विकासशील देशों में देशवासियों को स्वच्छ जल की उपलब्धता के स्तर में 1970 से 2004 तक लगातार वृद्धि हो रही है। विश्व बैंक के

अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति पेय जल उपलब्धता में 15–20 : की कमी आई है।

विश्व बैंक की हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2020 तक भारत की जल की मांग उपलब्ध–स्त्रोत में कुल उपलब्ध जल को पार कर जायेगी। भारत की तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के कारण आने वाले दो दशको में भारत में घोर जल संकट उत्पन्न होने वाला है। भारत में 21: संक्रामक बीमारियाँ असुरक्षित जल से फैलती हैं।

भारत का मुम्बई शहर इस समय 650 मिलियन लीटर प्रति दिन जल कमी झेल रहा है। विश्व बैंक ने भारत की राजधानी दिल्ली को जल उपलब्धता के पैमाने में एशिया का सबसे संकटग्रस्त शहर माना है तथा मुम्बई दूसरे स्थान पर है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 22 मार्च को विश्व जल दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की है। 15 साल से अधिक समय तक चली चर्चा के बाद श्जीम तपहीज जव ेमि ंदक बसमेंत ूंजमत ंदक ेदपजंजपवद तमेवसनजपवदश पारित किया कि मानव अधिकारों की पूर्ती तथा जीवन के पूर्ण आनन्द के लिए यह आवश्यक है।

भारत सरकार ने सूखा तथा बाढ़ से निपटने के लिए अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी और सक्षमता का उपयोग करके सभी प्राणधारियों का समन्वय करके भारत के जल संसाधनों के एकीकृत और दीर्धकालिक विकास और प्रबन्धन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केन्द्रीय जल आयोग का गणन किया गया।

जुलाई 1982 में राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी का गठन किया जिसके उद्देश्यों में जल संतुलन तथा जल संसाधनों का अत्यधिक उपयोग किया जा सके, शामिल है। 1990 में राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी के कार्यक्षेत्र में वृद्धि करते हुए विसतृित प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार कर हिमालय तथा पेनिनसुलर नदियों को जोड़ने की संभावनाओं पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने का दायित्व दिया गया।

भारतीय कम्पनियाँ जल संकट के समाधान के लिए परमाणु अलवणीकरण रिएक्टर से उम्मीदे बांधे हुई है। विश्व नाभकीय संगठन के अनुसार भारत 1970 से अलवणीकरण अनुसंधान में लगा हुआ है। लवणीय जल को पीने योग्य बनाने के प्रयास किए तो जा रहे हैं, लेकिन इस पर

लागत इतनी अधिक है कि कुछ देश ही थोड़ी मात्रा में इस विधि से जल उपलब्ध करा रहे हैं। **इसराइल** लवणीय जल से अलवणीय जल का उत्पादन 53 सेन्ट प्रति क्यूबिक मीटर की दर से कर रहा है। **सिंगापुर**–49 सेन्ट प्रति क्युबिक मीटर। भारत तथा चीन जो विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश है इस विधि को विकसित करने में तत्पर है। 2007 में पाकिस्तान ने संयंत्र के प्लान की घोषणा की तथा बरमूड़ा ने संयत्र के खरीद के लिए हस्ताक्षर किए है।

ट्यूब स्टार ऑयल तथा गैस कम्पनी भारत में परमाणु अलवणीकरण सयंत्र की स्थापना की संभावनाओं को खोज रहा है । यह सयंत्र ऊर्जा के साथ–साथ स्वच्छ जल उपलब्ध कराएगा।

भारत का 3.29 मिलियन कि0 मी0 क्षेत्रफल जो विश्व के क्षेत्र फल का 2.4: है। अनुपात में 1/50जी विश्व भूमि तथा 1/25जी विश्व स्रोत जिन पर 1/6जी विश्व की जनसंख्या आश्रित है। इसलिए जल संसाधनों के संरक्षण तथा इनके नियोजित उपयोग की जिम्मेदारी में हमारी भूमिका मुख्य है। अन्यथा परिणाम बहुत गंभीर होगे। यह किसी विकसित तथा अविकसित देश की समस्या नहीं बल्कि पूरे विश्व की समस्या है जिस में प्रत्येक राष्ट्र व व्यक्ति की सक्रियता व सहयोग की आवश्यकता है क्योंकि बूंद–बूंद से सागर भरता है। इस पहल तथा पवित्र प्रयास के लिए पहले खुद से जल बचाने का संकल्प करना होगा।

◆◆◆

भारतीय संस्कृत साहित्य एवं मानवीय मूल्य पुराणों के सन्दर्भ में

आंचल सक्सेना

शोध छात्रा, वी0रा0आ0लो0रा0म0 महाविद्यालय, बरेली(उ०प्र०)

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में मानवीय मूल्यों का जो उत्तम तथा आदर्श पूर्ण आचरण अथवा स्वरूप दृष्टिगत होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य मानवीय मूल्यों को प्रकट करने वाली एक अनुपम धरोहर है, जो आज भी अपने भीतर उत्कृष्ट रूप में मानवीय मूल्यों को सहेजे हुए है। वर्तमान समय में अनेक बहुमुखी परिवर्तनों के फलस्वरूप भी भारतीय संस्कृति, मनुष्य के जीवन के प्रत्येक पक्ष में अपनी गरिमा एवं प्रासंगिकता को प्रत्येक क्षण सिद्ध करती आ रही है।

साहित्य को संस्कृति का प्रतिबिम्ब अथवा दर्पण माना जाता है यथा–

साहित्य समाज का दर्पण है।

साहित्य के अन्तर्गत भी संस्कृत साहित्य ने इस वसुन्धरा पर मानवीय मूल्यों की ऐसी सुदृढ़ आधारषिला रखी है, जिस पर आज भी सहस्त्र वर्षो के बाद भी हमारी संस्कृति पूर्ण गौरव के साथ विराजमान है।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत पुराण मानवीय जीवन के संदर्भ में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। ये अष्टादश (18) पुराण न सिर्फ मानवीय मूल्यों को स्वीकारते है, बल्कि मनुष्य को अपने जीवन में इन मूल्यों को ग्रहण कर जीवन को उन्नत बनाने हेतु प्रेरित करते हैं। पुराण भारतीय संस्कृति के मूल आधार ग्रन्थ है। पुराण सार्वदेशिक, सर्वागींण तथा सभी जनों के लिए उपयोगी युगों की संस्कृति को अपने अन्दर समाहित किए हुए है। पुराण ही भारतीय संस्कृति में निहित आदर्श, विश्वास, मूल्य आदि को सुदृढ़ एवं व्यवस्थित करते हैं।

पुराणों में मानवीय मूल्य को उस व्यवहार समूह के रूप में इंगित किया गया है, जो मनुष्य के जीवन को उसके आदि बिन्दु से उन्नति के उत्कर्ष तक ले जाने वाले साधन अथवा माध्यम है।

यद्यपि आधुनिक युग वैज्ञानिकता एवं भौतिकता का युग है, जिसमें अनेक अविष्कार हुए तथा भौतिक सुख को प्राप्त कराने में सहायक अनेक

साधनों का निर्माण व विकास हुआ है। तथापि अनेक संघर्षों का सामना करने के बाद भी आज भी विशिष्ट मानवीय मूल्य अपनी महत्ता, सार्थकता एवं प्रासंगिकता को नहीं खो सकते हैं।

मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत उन सभी मूल्यों की गणना की जाती है, जो मनुष्य के जीवन के सभी आवश्यक पक्षों यथा–सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, मानसिक, राजनैतिक आदि से सम्बन्ध रखते है। इन मूल्यों के अभाव में उत्कृष्ट समाज की कल्पना करना व्यर्थ है। विभिन्न पुराणों में देंवताओं के विभिन्न स्वरूपों को लेकर इन मानवीय मूल्यों के स्तर पर विषद विवेचन किया गया है, जो न सिर्फ मानव जाति अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के लिए हितकारी तथा उपयोगी है।

मानवीय मूल्यों में गणित किए जाने वाले **धैर्य** नामक मूल्य को मनुष्य की सन्तोषी प्रवृत्ति से युक्त बताया गया है। यथा–अष्टादश पुराणों में षिरोमणि कहे जाने वाले **श्रीमद् भागवतपुराण** में धैर्य नामक मानवीय गुण (मूल्य) का विवेचन करते हुए धैर्यशाली व ज्ञानी व्यक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा गया है–

इह सन्तो विशीदन्ति, प्रहष्यन्ति ह्यसाधवः।
धत्ते धैर्य तु यो, धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा।।

अर्थात इस युग में सज्जन, महात्मा जन दुखी रहते है तथा जो लोग अधर्म में लिप्त रहते है, सदा आनन्दित रहते है, परन्तु विषम परिस्थितियों में भी जो बुद्धिमान व्यक्ति धैर्य धारण किए रहता है, वही धीरज वाला और ज्ञानी पुरूष कहलाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानवीय मूल्य रूपी अमूर्त भावों को मानव शरीरी पात्र बनाकर उनके द्वारा अभिव्यक्त करवाकर मूल्यों की सार्थकता पुराणों में सिद्ध की गयी।

मानव मूल्यों की स्थापना तथा उनके अनुरूप आचरण मानव जीवन को सुखमय बनाता है। समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास हम मानवीय मूल्यों को धारण करने के उपरान्त ही कर सकते हैं। समाज में व्याप्त बुराईयों, कुरीतियों आदि का एक प्रमुख कारण मनुष्यों में नैतिकता का पतन भी है, अर्थात हम कह सकते हैं कि आज मनुष्यों में नैतिकता सम्बन्धी मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। सभी भौतिकता की दौड़ में स्वंय को श्रेष्ठ सिद्ध करने के प्रयास में दिशाविहीन दौड़ते जा रहे हैं, जिसका अन्त क्या होगा ? ये उन्हें स्वंय भी आभास नहीं है।

धैर्य को उत्तम मानवीय मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हुये गरूड़पुराण मे बताया गया है कि मनुष्य को किसी भी कार्य में शीघ्रता की प्रवृत्ति नहीं अपनानी चाहिए। यथा

शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनै पर्वतमारूहेत्।
शनैः कामें च धर्म च पञ्चैतानि शनै शनै।।

अर्थात विद्या और धन का धीरे धीरे संचय करना चाहिए। धीरे धीरे ही पर्वत पर चढ़ना चाहिए। धर्म और काम दोनो का ही सेवन धीरे धीरे करना चाहिए अर्थात् इन पांचो कार्यो में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।

मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत **दया** एक ऐसा मूल्य या गुण है, जिससे व्यक्ति का चित्त दूसरे के दुख को देखकर द्रवीभूत हो उठता है। दूसरे को कष्ट में देखकर जो मानवीय दशा उत्पन्न होती है, वह दया कहलाती है। दया सदैव परार्थ होती है, यदि मनुष्य में दया का गुण विद्यमान है, तो समाज में कोई भी दुखी व्यक्ति असहाय स्थिति में नहीं पड़ा रह सकता।

इसी क्रम में मनुष्य को अपनी इन्द्रियों पर, अपनी चित्त वृत्तियों पर नियन्त्रण रख अनावश्यक लोभ या संग्रह न करना भी मानवीय मूल्य की श्रेणी में रखा गया है। चित्त वृत्ति पर नियन्त्रण न सिर्फ लोभ नामक दोष को दूर करता है, अपितु समाज में व्याप्त होने वाले वर्ग भेद नामक तत्व को भी दूर करने का प्रयास करता है। इसी वर्ग भेद के कारण ही व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की एक मनुष्य के रूप मे न देखकर किसी विशेष वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले विशेष व्यक्ति के रूप में देखने लगता है। जिसके फलस्वरूप समाज में समायोजन में कमी आने लगती है तथा वैषम्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पुराणों में भारतीय संस्कृति में निहित सभी मूल्यों का निरूपण किया गया है, फिर चाहे वे सांस्कृतिक पक्ष से सम्बन्धित हो या किसी अन्य पक्ष से।

भारतीय संस्कृति मानवीय मूल्यों का जो आदर्श रूप धारण करती है, उसका ज्ञान साहित्य के अध्ययन से ही सम्भव है। प्रायः ऐसा कहा भी जाता है कि यदि किसी देश की संस्कृति के बारें में जानना है तो उस देश के साहित्य के अध्ययन से बेहतर विकल्प कुछ और नहीं है। किसी देश का साहित्य उस देश की संस्कृति को प्रस्तुत करता है, जिससे सभी जन देश की संस्कृति से सुगमतापूर्वक अवगत हो सके।

भारतीय संस्कृति में परोपकार, दान, क्षमा, सत्यनिष्ठा, कर्तव्य

निष्ठा, त्याग आदि अनेकों ऐसे मूल्यों की चर्चा की गयी है, जिनका सांगोपांग वर्णन आज से सहस्त्र वर्षो पूर्व पुराणकार ने पुराणों में किया।

दान ऐसा मानवीय गुण या मूल्य है जो मनुष्य के भीतर विद्यमान होकर उसे दूसरे से अलग या विशेष स्थिति प्रदान करता है। इस मानवीय गुण का वर्णन **मत्स्य पुराण में राजा बलि का आख्यान** विस्तार में वर्णित है राजा बलि ने बामन को तीन पग धरती दान देने का वचन दिया तथा बलि अपनी बात से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

दानशीलता के इस गुण को धारण करने वाले **राजा बलि** के विषय में कहा गया है–

बलि राजा भवतत्रा सर्वेभ्यो दानकर्मणा।
त्यागीं भूत्वातु लोके च कीर्तिमान भवत्रदा।।

मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में ही व्यक्ति का आध्यात्मिक पक्ष भी विवेचित किया जाता है। पुराणों के द्वारा मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने हेतु अनेक आख्यानों का वर्णन किया गया है। आध्यात्मिक पक्ष मनुष्य के धर्म से सम्बन्धित है। धर्म मुनष्य के अस्तित्व का परिचायक है। धर्म व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाली सभी क्रिया कलापो से सम्बन्ध रखता है तथा सभी क्रिया कलापो को नियन्त्रित भी करता है।

ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत प्रयुक्त धर्म शब्द किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है अपितु कर्तव्यपालन के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

धर्म का पालन करना, धर्मानुसार आचरण करना मनुष्य के जीवन में उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करता है। धर्म का पालन करने से मनुष्य न सिर्फ इहलोक अपितु परलोक स्थिति को भी नियमित कर सकता है।

पुराण के अन्तर्गत वर्णित शाष्वत मूल्य सत्यं, षिवम्, सुन्दरम् मनुष्य के धार्मिक पक्ष को न सिर्फ दृढ़ता प्रदान करते हैं बल्कि उसे वास्तविक सुख से भी अवगत कराते है।

श्रीमद्रामायण में माता कौशल्या श्री रामचन्द्र से अपने धर्म का आचरण करने का उपदेश देते हुए कहती है–

यंपालयसि धर्मम् त्वम् धश्त्याच नियमेनच।
सर्वे राघव शार्दूला धर्मम्त्वामभिरक्षतु।।

अर्थात् राम तुम जिस धर्म का आचरण करोगे, वही तुम्हारी रक्षा करेगा।

अपने विचारो को या तक्र को वाणी रूप में प्रकट करना, भी मानवीय मूल्य की श्रेणी में आता है। यदि मनुष्य अत्यन्त ज्ञानी भी है तथापि वह अपने ज्ञान अथवा विचारो को प्रसारित नहीं कर पा रहा है तो उसका अर्जित ज्ञान निरर्थक है

यथा **गरूडपुराण** मे ंकहा गया है–

वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या
शस्त्रं यथा कापुरूथस्य हस्ते।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे
अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः।।

अर्थात् वाणीविहीन मनुष्य की विद्या डरपोक के हाथ में शस्त्र के समान निरर्थक है। उसका उसी भाँति कोई फल नहीं निकलता, जैसे दर्शनीय नारियों के रूप सौन्दर्य का कोई प्रभाव अन्धे मनुष्यों पर नहीं पडता।

सामान्यतः मनुष्य की पहचान उसके व्यवहार अथवा आचरण से की जाती है। संस्कृत साहित्य मे मनुष्य द्वारा अनुकरणीय व्यवहार के प्रतिमान को विस्तृत रूप में वर्णित किया गया है।

मनुष्य के आचरण पर यदाकदा उसकी संगति का भी प्रभाव देखने को मिलता है यदि संगति अच्छी है तो मनुष्य सभी उपयुक्त मानवीय मूल्यों का आदर कर उन्हें अपने जीवन में उतारने को प्रयास करता है। पुराणगत साहित्य भी हमें कुसंगति से बचकर रहने की प्रेरणा देता है

गरूडपुराण मे कुसंगति को लोक विनाशक की संज्ञा देते हुए कहा गया है–

सद्भिः सगं प्रकुर्वीत सिद्धीकामः सदा नर :।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम्।।

अर्थात् सिद्धि की कामना रखने वाले मनुष्य को सज्जनों की संगति करनी चाहिए। असज्जनों की संगति से न तो इस लोक में कल्याण होता है और न ही परलोक में।

गरूडपुराण मे बताया गया है कि विवाद तथा मैत्री भी सज्जनो के साथ ही करना चाहिए क्योंकि दुर्जनो के साथ की गयी मित्रता अथवा ईर्ष्या विनाशकारी परिणाम देती है।

सत्यनिष्ठा, मानवीय मूल्य के रूप में मनुष्य का अलंकार बताया गया है भारतीय संस्कृत साहित्य में मनुष्य को सत्य बोलने तथा प्रिय बोलने की प्रेरणा दी गयी है।

जैसा कि **स्कन्दपुराण** में बताया गया है कि–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानश्ंत ब्रूयादेश धर्मो विधीयत्।।

सत्य बोलना और प्रिय बोलना धर्म के आचरण के अन्तर्गत आता है असत्य भाषण से न सिर्फ धर्म के विरूद्व आचरण करता है वल्कि पाप का भागीदार भी बनता है।

अतः सत्य से पवित्र हुई वाणी ही बोलनी चाहिए और जो मन से पवित्र हो उसी का धर्म पूर्वक आचरण करना चाहिए।

सत्यपूतां वदेद् वाणी मनःपूतं समाचरेत्।

ये सभी मानवीय मूल्य मानवता को गरिमा प्रदान करते हैं मानवीय मूल्यों से युक्त मनुष्य उस श्रेणी में आता है जहां उसका जीवन पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूचीं

कल्याण, अंक नीतिसार, गीता प्रेस, गोरखपुर
कल्याण, अंक नीतिसार, महर्षि वेदव्यास और उनके नीतिपरक वचन, पृष्ठ संख्या–63।
गरूड़पुराण की नीतिसारावली– पृष्ठ संख्या–443।
मानव मूल्य और साहित्य– धर्मवीर भारती।
www.tejastvi astitva.com

◆◆◆

मधुकर अष्ठाना के गीतों में मूल्यचेतना (कुछ तो कीजिए, नवगीत संग्रह के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

डॉ0 मो0 असलम खॉ[1] एवं डॉ0 महाराणा प्रताप सिंह चौहान 'विद्रोही'[2]

[1]प्राचार्य, [2]अध्यक्ष, शोध एवं स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ड़ॉ0 राम मनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, ऑवला, बरेली (उ०प्र०)

गीत आदि हैं, अनादि है, शाश्वत है, कालजयी है, अजर है, अमर है, इसीलिए मानव जाति के उत्स से लेकर अद्यावधि उसका सहचर बना हुआ है। हालॉकि भाव, शिल्प और बन्ध की दृष्टि से उसमें समयानुरूप परिवर्तन होता रहा है। यही उसकी जीवंतता एवं प्रामाणिकता का सबसे बड़ा सबूत है। ऐसे समय में जब गीत को खारिज करने की कोशिशें हो रही थीं, हिन्दी कविता राजनैतिक षड्यन्त्रों और दॉव–पेंचों की शिकार होकर कुछेक सहित्यिक शिविरों में कैद हो गई थी। आलोचकों के अलग–अलग खेमें बन गए थे। ऐसे में गीत को नूतन अन्तर्वस्तु एवं शिल्प के सहारे संजीवनी देकर जब पुनर्जीवन देने का यत्न और प्रयत्न हुआ, तो उसे नवगीत की संज्ञा से नबाजा गया। सातवें दशक में कुछ रचनाधर्मी गीत को लेकर किसी भी प्रकार की समझौतापरस्ती से अलग हटकर आगे आए। उनमें एक नाम मधुकर अष्ठाना का भी था।

अष्ठाना जी की रचनाधर्मिता भागीरथी की तरह प्रवाहित होने वाली है, जो समय एवं परिस्थितियों के साथ अपने रूप–स्वरूप को परिवर्तित करती रही है, वे अड़ियल घोडे के सहारे चलने वाले इक्के के चालक नहीं है, अपितु राणा प्रताप के यषस्वी घोड़े चेतक की सवारी करने वाले नवगीत के यषस्वी 'प्रताप' हैं, इसीलिए अब तक प्रासंगिक बने हुए हैं। उनके गीतों में कहीं पर भी शाब्दिक खिलंदड़ेपन के दर्शन नहीं होते, वे शब्दों को मषक्कत के साथ बुलाकर नहीं बैठाते, बल्कि शब्द तो जैसे उनके सहचर हैं, जो प्रेम और बन्धुत्व के पाष में बँधे हुए उनके पास चले आते हैं। शब्दों के साथ ही अनेक प्रकार के बिम्ब खुद–व–खुद बनते चले जाते हैं, जो उनके गीतों के कथ्य को सुबोध, सरल एवं सरस बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। उदाहरणस्वरूप उनके एक गीत की कुछ पंक्तियॉ प्रस्तुत हैं जिसमें वृद्धावस्थाजन्य दुःख अवसाद, पीड़ा एवं उपेक्षादंष को बड़ी बेबाकी के साथ उकेरा गया है। इन पंक्तियों को पढ़कर बुजुर्गों से जुड़ी सारी स्थितियाँ परिस्थितियाँ किसी चलचित्र की भांति हमारी आँखों के सामने कौंध जाती हैं। ''बूढा सुवा टँगा पिजरें में/धूप लगी तपने/

नयनों में मोतिया / कान भी लगते बहराये / बरामदे में दिवस काटते / दुखड़े गरमाये / हिलते शीष अन्त में आये / राम–राम जपने।''1

अष्ठाना जी जो भी गीत लिखते हैं, ऐसा लगता है कि कागज पर उतारने से पहले उसकी एक सुविचारित योजना उनके अर्न्तमन में काफी पहले रूप ले चुकी होती है। इसीलिए अष्ठाना जी की रचनाएँ ''वाग्विलास' का सुख नहीं देती, अपितु उनमें आत्मा की पुकार मौजूद है। उनके अनुसार ''गीत रागात्मक अन्तष्चेतना के मूल में ही समाहित अनुभूतियों की संवेदना से व्यंजित एक ऐसा शब्द यज्ञ है, जिसके लघुतम छान्दसिक स्वरूप में सामान्यजन की पक्षधरता के साथ समसामयिक भावतत्व व विचारतत्व का समन्वय होता है। जो उक्त संवेदना की चिंगारी का विस्तारकर, उसे विशाल अग्नि भण्ड़ार के रूप में परिवर्तित कर अपूर्व ऊर्जा से परिपूर्ण कर देता है, जिसमें समस्त विसंगति, विषमता, विडम्बना, विरूपता, विघटन आदि के ध्वस्त करने की क्षमता होती है।''2 इन पंक्तियों में पर उपदेश कुशल बहुतेरों की अच्छी खबर ली गई है। ''दे रहे उपदेश, खाली पेट का विश्वास लेकर, लोग जय जयकार में डूबे हुए हैं, ह्रास देकर।''3

अष्ठाना जी अति साधारण से दिखने वाली रोजमर्रा की जिन्दगी से जुडे घटनाचक्र एवं संवेदना को उठाते हैं और फिर उसे गीत के साँचे में ढ़ाल देते हैं। इस दौरान वे किसी प्रकार की कोई सीख नहीं देते और न ही कुछ थोपते हैं, बल्कि संकेतों ही संकेतों में बहुत कुछ कह देते हैं और बह भी ऐसा वैसा नहीं अपितु अकथनीय। नई कविता के पुरोधा ड़ॉ0 जगदीश गुप्त भी कुछ–कुछ ऐसा ही मानते हैं– ''कवि वही जो अकथनीय कहे।''4 इसी अकथनीयता के गुण ने शमशेर को 'कवियो का कवि' बना दिया। यहॉ अकथनीयता का आशय किसी दूर की कौड़ी लाने से नहीं है। अपितु ऐसे कथ्य से है, जो सामान्य जीवन और समाज से गृहीत होने पर भी अनेक सीमाओं के बावजूद अपने वैशिष्ट्य का बोध कराए यही 'अकथनीयता का सच्चा अर्थ है और यही उसकी परिधि। इस कसौटी पर मधुकर जी पूर्णतः खरे उतरते हैं। बात को कहने का उनका अपना अन्दाज और सलीका है; कुछ पंक्तियाँ देखने लाइक हैं– ''दिन दिहाड़े लुट गई दुकान बाबू जी, जी रहे हैं जिन्दगी बे जान बाबू जी।''5

आज पारस्परिक विश्वास का इतना अभाव हो गया है कि समाज में हमारा चरित्र निरन्तर एकांगी और छोटा होता जा रहा है। समूहगत भावना के लोप से व्यक्ति स्वयं में ही संकुचित होकर अपनी प्रगति को अवरूद्ध कर रहा है। कुएँ का मेंढ़क बनकर गरिमापूर्ण प्रतिष्ठा, विद्वता और

सुयश की कामना का कोई मूल्य नहीं होता है।'' फिर भी हर किसी में आवेश उत्तेजना एवं मूल्यों के प्रति अनास्था का भाव दिन–प्रतिदिन गाढ़ा होता जा रहा है। इतना ही नहीं कुकुरमत्तों की तरह मनोनुकूल मूल्यों को गढ़ने की होड़ सी लग गई है। कुछ–कुछ यूँ–

''मरा ऑख में, किन्तु खून में, उतर गया पानी, कथा श्रवण की,
युवा ह्रदय को, लगती नादानी, काँपने लगी, दीप की बाती,
पुलक लगी ढ़ँपने।''

शासन सत्ता से जुडे लोगों की अयोग्यता को उजागर करती ये पंक्तियॉ दृष्टव्य हैं–

''राज महल तो, हुआ बपौती, सारे दागी दरबानों का,
हुक्म चल रहा, कमरे–कमरे, सारे अंधो पर, कानों का–''

आज अधिकांश लोगों का दाम्पत्य जीवन जड़ता एवं उबाऊपन का शिकार हो गया है। न चाहते हुए भी साथ–साथ रहने की विवशता उन्हें अन्दर से तोड़े ड़ाल रही है। इन स्थितियों से निस्तार का कोई रास्ता दूर–दूर तक दिखाई नहीं दे रहा है। इन्हीं स्थितियों पर प्रकाश ड़ालते हुए अष्ठाना जी लिखते हैं–

''अजगर बना, लगा कसने, मर्यादा का बंधन, चार पलों का लगन,
हुआ स्वाहा पूरा जीवन, अनचाहीं गंधो का आसपास निर्दय पहरा।''

दाम्पत्य जीवन में व्याप्त कटुता का एक बड़ा कारण–संशयग्रस्तता भी है। स्त्री–पुरूष के मध्य विश्वास रूपी बुनियाद किसी कारण से जब एक बार हिल जाती है, ता फिर शक शुब्हा का कुहासा उस घर–परिवार का अपनी जद में ले लेता है। दाम्पत्य जीवन में व्याप्त इसी संषयग्रस्तता एवं अविश्वास की एक समूची तस्वीर को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है–

''समा गई सपनों में/चुम्बन आलिंगन की बातें/दिन तो घनी हुए वैभव से/निर्धन लगती रातें/देर–सबेर लौटनें पर है/लेकिन बहुत बवाल/''

अष्ठाना जी प्यार, चाटुकारिता और किसी दरबार में सलाम बजाने वाले कवि नहीं हैं। वे तो आम आदमी के दुःख–दर्द के प्रवक्ता हैं। वे सहानुभूति के नहीं, समानुभूति के कवि हैं। उनकी कविताएँ भोगे सच का बयान जैसी हैं। जैसा कि इन पंक्तियों से ध्वनित है–

'वदेना के खेत में आँसू उगाने आ गए/हम समय की त्रासदी के

गीत गाने आ गए'11

'मिड डे मील' जैसी सरकारी लोक लुभावन योजनाओं के यथार्थ को बड़ी निडरता से व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—

'कीड़ों का दलिया/खिचड़ी पर नंग–धडंगे बच्चे/षोर बहुत/साकार नदारद/षब्द हो गए कच्चे/भीतर हाहाकार/मौन मुख बाहर भरी नजर।'12

नहीं शासन–प्रशासन में ऐसे लोग बहुतायत में हैं, जो करते–धरते तो कुछ नहीं हैं, केवल झूठें आष्वासन देते रहते हैं या घोषणाएँ करते रहते हैं। ऐसे ढ़ोगियों और पाखंडियों की खबर लेते हुए वे कहते हैं—

''करते नहीं छटाँक/किन्तु चिल्लाते हैं, मनभर और सोचते हैं/अभारी उनके हो जीवन भर।''

वास्तव में बच्चों को लेकर पाली गई बड़ी–बड़ी महत्वाकांक्षाएं, रट्टाफिकेशन एवं किताबों के भारी बोझ के तले दबाकर हम उन्हें जीते–जागते आदमी की जगह एक यंत्र बना देने पर तुले हुए हैं। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की पोल खोलन के लिए यह पंक्तियॉ काफी हैं—

ढ़ोता रह/जन्म से सबकी/इच्छाओं की गठरी/होमवक्र की चिंताओं ने/बना दिया है ठठरी/हर पल का हिसाब है/रटरटाया उत्तर

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता बोध के षिकार आज के आदमी की जिंदगी का इससे बेहतर शब्द चित्र क्या हो सकता है—

''सबकी दृष्टि रही धरती पर/लेकिन वह तो सोचे अम्बर/चिन्ता रही न भूख–प्यास की/नाम वस्त्र के रहा दिगम्बर/संतापों का धन जोड़ा है।''

समग्र रूप में देखें, तो अष्ठाना जी प्रगतिवादी पक्षधरता के कवि हैं, कहीं वे धूमिल के साथ खड़े दिखाई देते हैं, तो कहीं कबीर के साथ, तो कहीं दबे कुचले लोगों के घांव पर निराला की भांति भावना का मरहम लगाने में संलग्न दिखते हैं। तो कहीं उनमें त्रिलोचना की छवि दिखाई देती है। अन्त में, उनकी इस पंक्ति के साथ इस आलेख को विराम देता हूँ—

''रोजी रोटी दे न सके, जो केवल भाषण को,
आग लगे ऐसे सिंहासन को।''

सन्दर्भ

मधुकर अस्थाना : कुछ तो कीजिए (नवगीत संग्रह) पु0 29

मधुकर अस्थाना : कुछ तो कीजिए (पुरोवाक) पृ0 8

वहीं, पु0 34

प्रतिश्रुति (ड़ॉ0 हेतु जैन) अंक मार्च वर्ष 2000, पृ0 01

मधुकर अस्थाना : कुछ तो कीजिए, पृ0 42

वही पृ0 7

वही पृ0 32

वही पृ0 41

वही पृ0 44

वही पृ0 51

वही पृ0 105

वही पृ0 55

वही पृ0 63

वही पृ0 82

वही पृ0 56

वही पृ0 91

◆◆◆

हिन्दी साहित्य की सन्त काव्यधारा में अभिव्यक्त मानवीय मूल्यों का तात्त्विक विश्लेषण

डॉ. ज़ेबी नाज़
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (*उ०प्र०*)

महान और कालजयी साहित्य वही होता है जो मनुष्य, उसके अस्तित्व व अस्मिता के समक्ष संकट उत्पन्न करने वाले और मानवीय मूल्यों को विस्मृत करने वाले तत्वों के समक्ष प्रश्न चिह्न लगाता है तथा मानवीय मूल्यों को अंगीकार कर लोकमगंल की अवधारणा को साकार करता है। यही नहीं शाष्वत साहित्य मानवीय एकता तथा सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक समन्यवादिता की भावना को विस्तार देती है और सम्पूर्ण मानवता कल्याण की पक्षधरता के स्वर को मुखर करती है। इसमें कदापि संषय नहीं है कि मध्ययुगीन भक्तिकाल साहित्य की उक्त मानवीय मूल्यपरक दृष्टिकोण को पूर्णतः आत्मसात करता और साहित्य के मार्ग से लोककल्याण की विचारधारा का बखूबी निर्वहन करता है।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकालीन काव्य सर्वश्रेष्ठ है। निर्गुण भक्तिधारा का सन्त एवं सूफी काव्य तथा सगुण भक्तिधारा का रामभक्ति एवं कृष्णभक्ति काव्य अपनी सामाजिक दृष्टि, मानवीय मूल्य सांस्कृतिक चेतना तथा संवेदनात्मक अभिव्यंजना में अत्यन्त समद्ध होने के कारण भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। भक्तिकालीन काव्य में संत काव्यधारा अपनी अनुपम मानवीय मूल्य सम्पृक्त दृष्टि, समतामूलक सामाजिक व सांस्कृतिक विचारधारा तथा अहिंसा संकेन्द्रित व भेदभावहीन साहित्यिक संवेदना के आधार पर मध्ययुगीन भक्तिकाल में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है।

हिन्दी संत काव्यधारा में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति के विभिन्न पहलुओं का सम्यक् विश्लेषण करने से पूर्व सन्त शब्द के अर्थ, व्युत्पत्ति एवं लक्षणों से रूबरू होना अनिवार्य है। संत शब्द सामान्यतया साधु, भक्त व महात्माआदि का पर्याय माना जाता है। ''संत शब्द से अभिप्राय साधु, सन्यासी, विरक्त या त्यागी पुरूष सज्जन, महात्मा और परम धार्मिक व्यक्ति आदि है।''[1]

साहित्य में सन्त शब्द का प्रयोग किसी भक्त कवि का परिचायक

होता है। सन्त शब्द की व्युत्पत्ति 'सत्' शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है – सत्य। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ''सन्त शब्द को सन्त से सम्बोधित अन्य शब्दों का ही अन्यतम रूप बताया है जोकि सत्य का पर्यायवाची है।''[2]

संतों के लक्षणों की चर्चा करते हुए सन्त कबीर ने 'साध को अंग', 'महिमा को अंग' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत कहा–

''निर वैरी निरू कामता, साईं सेती नेरू।
विणिया सूं न्यारा रहै, सन्तन का अंग रह।।''[3]

सन्त परमार्थी होते हैं। वे सुख दुख में समान रहते हैं। न वे हर्ष से उन्मत्त होते हैं और न ही उन्हें दुख विचलित करता है। सन्त साम्प्रदायिक भावों से परे रहकर संकुचित मानसिकता से निर्लिप्त रहता है तथा अपनी समदर्शिता से सबके प्रति समान भाव रखता है। यानी यदि संतों के लक्षणों को लेखनीबद्ध किया जाए तो कहा जा सकता है कि सन्त ब्रह्म के समान है। उसकी दृष्टि में समस्त जीव समान हैं। उसका हृदय प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव एवं प्रेम से परिपूर्ण रहता है। सत्य, अहिंसा, शील, समभाव, धैर्य, दया, संतोष, करूणा एवं प्राणिमात्र की मेंगलकामना का भाव आदि मानवीय मूल्य संतों के स्वाभाविक गुण हैं।

कहना न होगा कि हिन्दी सन्तकाव्यधारा के समस्त कवि सच्चे, सारग्राही, समन्वयवादी मानवीय मूल्यों को यथार्थ रूप से प्रतिस्थापित करने वाले, जाति–पांति के कट्टर विरोधी एवं अहिंसा, सदाचार और करूणा के घोर समर्थक थे। इन्होंने अपनी फक्कड़ व फकीराना सामाजिक एवं सांस्कृतिक संवेदना के प्रभावस्वरूप मानव कल्याण व विश्वबंधुत्व की अवधारणा को साकार करने के व्यापक उददेश्य से अन्य धर्मों व सम्प्रदायों से सभी अच्छे विचार ग्रहण कर अपने काव्य की आधारशिला रखी। उदाहरण के तौर पर सन्त काव्यधारा के कवियों ने बौद्ध धर्म से अहिंसा, सदाचार, दयालुता आदि मूल्य ग्रहण किए तो सिद्धों से बाह्य आडम्बरों– पाखण्ड़ों– जाति प्रथा तथा मिथ्याचारों का पुरजोर खण्डन की प्रवृति को आत्मसात किया, वहीं नाथ सम्प्रदाय से गुरू के महत्व, धैर्य, सहजता, सरलता, कामुकता व परनिन्दा निषेध आदि मानवता कल्याण के मूल्यों को संत कवियो ने अपने वाणी के प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप मे अंगीकार किया।

शाष्वत मानवीय मूल्यों के माध्यम से जनकल्याण के व्यापक प्रत्यय को साधने का लक्ष्य रखने वाले इन सन्तकवियों के काव्य में मानवीय मूल्यों का सूक्ष्म अध्ययन व विश्लेषण करने के अनुक्रम में उनके काव्य

को गहन ताक्रिक एवं सहज संवेदनात्मक दृष्टि से पुनरीक्षित करना सहायक होगा। उक्त उद्देश्य से भक्तिकाल के प्रमुख संत कवि एवं उनके काव्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

सन्त नामदेव – सन्त नामदेव का नाम रामानन्दी परम्परा के महाराष्ट्रीय संतों में उल्लेखनीय है। *आचार्य परषुराम चतुर्वेदी* ने अपनी रचना *'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा'* में कई नामदेवों का उल्लेख किया है। इनका समय 1270–1350 ई0 के आसपास माना जाता है। संत नामदेव ने मराठी तथा हिन्दी दोनों में काव्यरचना की। ''सिक्खों के धर्मग्रंथ 'गुरू ग्रन्थ साहब' में नामदेव के लगभग इकसठ पद संग्रहीत हैं, जिन्हें आज भी कीर्तनों में गाया जाता है।''[4]

सन्त कबीर– कबीर को स्वामी रामानन्द के प्रधान शिष्य के रूप में, ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिष्ठापक के रूप में, लोकभाषा को सशक्त रूप में अपनाने तथा मानवीय मूल्यों को सहजता से स्थापित करने वाले कवि के रूप मे ख्याति प्राप्त है। कबीर का समय पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है। कबीर का सम्पूर्ण जीवन एवं उनका समग्र काव्य मानव कल्याण के व्यापक लक्ष्य को प्राप्त करने का अनूठा प्रयास है। समस्त कुरीतियों को दूर कर मानवीय मूल्यों पर आधारित दोषरहित समाज की स्थापना की दृष्टि से कबीर का अप्रतिम योगदान है। कबीर की बारामासी, रमैनी, ज्ञान चौंतीसी व ज्ञानसागर आदि इकसठ रचनाएं कही जाती हैं, जिनमें 'बीजक' इनकी मुख्य रचना है। इसे ही कबीरपंथी प्रमाणिक रचना मानते हैं।

सन्त रैदास– सन्त काव्यधारा में रैदास का विशेष महत्व है। कबीर के समकालीन रहे रैदास को अपने युग में महात्मा के रूप में सम्मान प्राप्त था। सन्त रैदास के काव्य का प्रामाणिक संग्रह उपलब्ध नहीं है। उनकी कतिपय फुटकर रचनाएं ही मिलती हैं।

सन्त दादूदयाल– सन्त साहित्य की मानवतावादी दृष्टि को प्रफुल्लित करने में दादूदयाल का अन्यतम स्थान है। सन 1544 ई0 में गुजरात के अहमदाबाद में जन्मे दादू ने संत परम्परा में ब्रह्मसम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की थी जोकि बाद में दादूपंथ के नाम से विख्यात हुआ। अपने साहित्य में सदैव प्रेमतत्व को प्रधानता देने वाले दादूदयाल में कबीर के समान उग्रता, प्रचण्डता, तीव्रता एवं अनगढ़ता नहीं है वरन सरलता, विनम्रता, दयालुता और सहजता है।

स्वामी रामानन्द– स्वामी रामानन्द का जन्म 1299 ई0 में प्रयाग में हुआ था। विद्याा अध्ययन के लिए वे काशी गए जहां शांकर अद्वैत का अध्ययन करके स्वामी राघवानन्द को अपना गुरु बनाया। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का श्रेय इन्हीं को है। वे समकालीन एवं परवर्ती सभी सन्तों पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावशाली रहे हैं। कबीर, रैदास, पीपा साहब इनके शिष्य रहे हैं। हिन्दी वाणियों के अलावा उन्होंने बहुत सी संस्कृत रचनाएं भी लिखी हैं। इन रचनाओं में 'श्री वैष्णव मताब्ध भास्कर' एवं 'रामार्चन पद्धति' विशेष उल्लेखनीय हैं।

सन्त सुन्दरदास– सन्त सुन्दरदास का जन्म सन् 1596 ई0 में जयपुर राज्य के द्यौसा नामक नगर में हुआ था। 19 वर्षों की लम्बी अवधि तक काशी में रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया। सन्त कवियो में सुन्दरदास जैसा पढ़ा–लिखा और शास्त्रविद दूसरा कोई सन्त नहीं था। इन्होंने 42 ग्रन्थों की रचना की जिसे 'सुन्दर ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित किया गया। 'ज्ञान समुद्र' व 'ज्ञान विलास' इनके दो प्रमुख ग्रन्थ हैं।

सन्त मलूकदास– मलूकदास का जन्म सन 1574 ई0 में इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक गांव में हुआ था। सन् 1682 में इनका निधन हुआ। मलूकदास की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है– "(1) अलख बावनी, (2) गुरू प्रताप, (3) ज्ञानबोध, (4) पुरूष विलास, (5) भक्त बच्छावली, (6) भक्त विरूदावली, (7) रामावतार लीला, (8) शब्द, (9) साखी, (10) रतन खान, (11) सुखसागर और सम्भवतः (12) दसरत्नग्रन्थ।"[5]

उपर्युक्त सन्त काव्यधारा के समस्त कवियों की वाणी का हेतु, प्रयोजन, वर्ण्य–विषय एवं प्रतिपाद्य मानव है। उन्होंने काव्य की भूमिका में उतरकर मानव जीवन और समाज का चित्रण, विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत किया है। सन्त सत्यनिष्ठ हैं। मनुष्य के सामर्थ्य, हीनताओं, अभावों से वे सुपरिचित थे। उन्होंने विश्वास, औदार्य, धैर्य, दैन्य, शील, विवेक, एवं सन्तोष आदि मानवीय वृत्तियों पर विचार प्रकट किये हैं। सन्तों का युग राजनीतिक अस्थिरता, विश्वासघात, धार्मिक संकीर्णता तथा अमानुषिक आत्याचार का युग था। अतएव सन्त साहित्य में राजनीतिक विद्रोह की प्रवृत्तिा एवं अषान्ति और हिंसा के प्रति विद्रोह का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है। तत्कालीन जनता की भौतिकता सन्तों को अखरती थी। वे तत्वदर्शी थे। उनकी दृष्टि में भौतिकता क्षणिक है। इसलिए सम्पूर्ण सन्त काव्यधारा के कवियों ने भौतिकता और माया से सदैव दूर रहने के लिए सचेत किया। मानव की स्वार्थपरता व धनलिप्सा की भी उन्होंने कड़े शब्दों मे निन्दा की।

सन्तकवियों की वाणी मानव जीवन के धरातल को प्रत्येक स्तर पर स्पर्ष करती है। चाहें वह सामाजिक वर्ण्य विषय हों अथवा आध्यात्मिक। कपट, तृष्णा, अहं, लोभ, परनिन्दा, भेदभाव और असत्य जैसी निम्न वृत्तियों व क्षुद्रताओं का उन्होंने खण्डन कर दिग्भ्रान्त हुए मानव को सही मार्ग दिखाया। उन्होंने दया, विश्वबंधुत्व और प्रेमादि मूल्यों को सदैव सर्वोपरि रखा–

''दया दिल में राखिए, तू क्यों निरदयी होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी, कुंजर, सोय।।''[6]

सन्त कवियों ने मानव कल्याण की भावना सर्वप्रमुख रखते हुए उदारता, क्षमा व दान, आदि मूल्यों को अंगीकार करने हेतु इनको युक्तिपूर्ण उक्तियों द्वारा जनता के समक्ष प्रस्तुत किया–

''दया धर्म हिरदै बसै, बोले अमृत बैन।
तेईं ऊंचे जानिए, जिनके नीचे नैन।।''[7]

विश्व कल्याण की अवधारणा की प्राप्ति में एक अन्य अति आवश्यक मूल्य है जो संत काव्यधारा के कवियों के समस्त दर्शन सिद्धान्तों और उपदेशों का सार तत्व है। वह है– अहिंसात्मक वृत्ति का पुरज़ोर समर्थन एवं प्रखरतापूर्ण प्रतिपादन। अहिंसा को भारतीय संस्कृति में अत्यधिक महत्व प्राप्त है। संत कवियों के मत से केवल जीव हत्या ही हिंसा नहीं है बल्कि कटुवचन भी हिंसा में समाहित हैं। कबीर के शब्दों में यदि कहें तो –

'घट घट में वही साईं रमता। कटुक वचन मत बोल रे ।।'

वहीं सन्त मलूकदास वनस्पतियों तक को हानि पहुंचाने को हिंसा मानते हुए उन्हें भी जीवों का अंष स्वीकार कर यह कहते हैं –

'हरी ड़ारि न तोड़िए, लागे छूरा बान।
दास मलूका यों कहैं, अपना सा जिव जान।।'

सन्तों ने अपने सम्पूर्ण काव्य में अहिंसा का समर्थन करते हुए इसकी व्यापकता दुर्वचन, दुष्कर्म, कटुता, दुर्भावना, ईर्ष्या व द्वेष आदि मानकर इन सबसे मुक्त रहकर व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का परिष्कार करने पर बल दिया है।

समतावादी दृष्टि एवं सहकार की भावना प्राणिमात्र का कल्याणार्थ वे अन्य महत्वपूर्ण तत्व है जिसका संत काव्यधारा के प्रायः सभी कवियों ने

मुक्त हृदय से प्रचार – प्रसार किया है। समदृष्टि को विश्वबंधुत्व की प्रथम आवश्यक कड़ी मानने वाले इन कवियों की नज़र में अध्यात्म साधना का मार्ग सभी के लिए खुला है। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में कहीं किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। कबीर के मत में मानव शरीर में त्वचा, अस्थि, मांस, मज्जा, मल तथा मूत्रादि एक सदृश हैं। एक ही रक्त एवं गुदा इन्द्रि से उपलक्षित सकल इन्द्रियादि एक समान हैं। एक ही बूंद से समस्त मानव की सृष्टि की गई है फिर ब्राहाण तथा शूद्र का कैसा अन्तर ?

"एकै तुचा हाड़ मल मूत्रा, एक रिधुर एक गूदा।
एक बूंद सो सिस्टि रची है को बाम्हन को सूदा।।"[8]

हिन्दी संत काव्यधारा के कवियों ने करूणा और प्रेमभाव को मानव कल्याण हेतु परम आवश्यक माना है। संतों ने करूणा और प्रेम को जीवन की उच्चतम एवं उदात्त अनुभूति स्वीकारते हुए उन्हें धर्म की आधारशिला के रूप में अंकित किया है। उनकी दृष्टि में पोथी ज्ञान और माला फेरने की अपेक्षा प्रेमजन्य अनुभूति का अधिक महत्व है। सभी जीवों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार संत कवियों के काव्य का मर्म है।

संत कवियों ने प्रेम, समदृष्टि व अहिंसा के प्रतिपादन के साथ–साथ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सर आदि सभी विकारों को लोकमंगल के विघटनकारी तत्व मानते हुए इन्हें अपने काव्य में प्रखरता से नकारा है। संत दादूदयाल ने मद (गर्व) को विनाश का मूल माना है। उनके मत से इससे न तो सद्भावना आ सकती है और न ईश्वर भक्ति ही सम्भव है। कबीर कहते हैं कि कामी, क्रोधी, लोभी वृत्ति वाले व्यक्ति से ईश्वर भक्ति सम्भव नहीं है। भक्ति का अधिकारी तो वह है जो जाति, वर्ण एवं कुल–परिवार सभी को त्यागकर समदृष्टा और उदार चरित हो जाता है। सन्त सुन्दरदास ने भी इन विकारों को जीवन के मार्ग में बाधक माना है। उनके विचार से जब तक इन शड्विकारों का शमन नहीं होगा तब तक लोकमंगल सफल नहीं हो सकता। कहना न होगा कि ऐसी सभी सामाजिक विकृत मान्यताओं को सन्तों ने ठुकराया है जिनके कारण तत्कालीन समाज पतनोन्मुख था। मानव मूल्यों में गिरावट और समाज की पतनशीलता से व्यथित सन्तों ने जनमानस के उद्धार के लिए जिस सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक लोकमंगल का दर्शन प्रस्तुत किया उसका दायरा व्यापक रहा है।

इसके साथ ही कृत्रिमता एवं बाह्याडम्बर भी मनुष्य जीवन के उज्ज्वल पक्ष को आच्छादित करते रहते हैं। सन्तों ने अपने काव्य के माध्यम से इसी कृत्रिमता एवं बाह्याडम्बर से दूर सहज वातावरण में जीने का

सन्देश दिया, जिससे निरबैरी और विद्रोहहीन समाज का निर्माण हो सके। मानव–मानव समान हों, सभी का मंगल हो, सभी स्वतन्त्र रूप से विचरण करें, यही सन्तों की वाणी का मर्म है। इसीलिए वे बार–बार मानव शरीर की नश्वरता और भौतिक जगत की क्षणभंगुरता की ओर संकेत करते हैं। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो संकुचित, घणित, पाखण्डी, ढोंगी एवं नक्र गर्त में डूबते–उतराते तत्कालीन समाज को सन्तों की मानवीय मूल्यपरक काव्य रचना ने दिशा दिखाई। कभी हतोत्साहित न होने की प्रवृत्ति, निर्भय मानसिकता व असफलताओं से जूझने का साहस सन्तों के व्यक्तित्व की कतिपय विशिष्ट खूबियां थीं। अपनी वाणियों को अक्खड़ता एवं फकीराना लहजे से युक्त कर विरोधी परिस्थितियों एवं अभावग्रस्तता से संघर्ष करते हुए मानव कल्याण के संदेश को जन–जन तक पहुंचाना सन्तों का प्रमुख ध्येय था।

संत कवि बड़े ही निर्भीक एवं स्पष्टवादी थे। उनकी निर्भय मानसिकता एवं पक्षपातरहित आचरण उनके व्यक्तित्व की निजी विशेषताएं थीं। मिथ्याचार, बाह्याडम्बर एवं मूर्तिपूजा के विरोध में उन्होंने जो आवाज़ उठाई थी, उसकी अनुगूंज हमें आज भी सुनाई देती है।

सन्त कवियों के काव्य में अभिव्यक्त उनकी मानवीय दृष्टि को समझने के क्रम में यह जानना जरूरी होगा कि संतों की साहित्य रचना का सर्वप्रमुख उद्देश्य मानवमात्र का कल्याण था। उक्त प्रयोजन की सिद्धी हेतु उन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा, छन्द तथा अलंकार आदि सभी कलापक्षीय आभूषणों को सिरे से नकार दिया था। उनके लिए कविता साध्य नहीं साधन थी। वे तो अपने भाव, विचार एवं अनुभूति को अटपटी, खिचड़ी व दो–टूक भाषा में कहने के सिद्धहस्त थे। यही कारण था कि संत कवियों की रचनाएं अपने समय व काल की सीमा लांघकर दूर–दूर तक प्रचारित, प्रसारित व लोकप्रिय हुईं। अपने काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर प्रत्येक युग व समय में रच–बस जाना सन्त कवियों की वाणी का अन्यतम गुण है।

कवि की महानता तब तक सिद्ध नहीं होती जब तक उसकी दृष्टि वर्तमान की सीमाओं को भेदकर भविष्य को न पढ़ ले। कवि की दृष्टि सर्वकालिक व सार्वभौमिक होती है। उनके विचारों का यह तत्व उन्हें सतत प्रासंगिक बनाए रखता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्त्रोत बनाता है। मानवीय मूल्यों पर आधारित काव्य रचना संत कवियों को वर्तमान में प्रासंगिक बनाती है। निस्संदेह संतों की वाणियां तत्कालीन समाज के सन्दर्भ में कही गयी थीं, किन्तु महत्ता इस बात में है कि वे

वर्तमान में भी अपनी प्रासंगिक सार्थकता की ऊर्जा की ताजगी से सराबोर हैं।

इस प्रकार स्पष्टतः कहा जा सकता है कि हिन्दी की संत काव्यधारा स्वयं में एक समृद्ध, प्रासंगिक एवं अविछिन्न काव्य परम्परा है। सन्त काव्य जहां अपनी पृष्ठभूमि में उपनिषद, शांकर अद्वैत, गीता, बौद्ध साहित्य तथा नाथ सम्प्रदाय का देशकालोपयोगी समन्वय है, वहीं इसमें भविष्य का सुन्दर संकेत भी निहित हैं। इस धारा ने मध्यकाल तक जीवित सभी प्रकार के आध्यात्मिक, सामाजिक व धार्मिक चिन्तन को अपने कलेवर मे समेटने के साथ ही समकालीन परिप्रेक्ष्य की सुन्दर झांकिया भी प्रस्तुत कीं।

संत कवियों का काव्य काल की सीमा को लांघकर आज भी प्रासंगिक प्रतीत होने का मुख्य कारण है सन्त साहित्य का शाष्वत मूल्यों पर आधारित होना। संत काव्य न तो 'स्वान्तः सुखाय' मात्र था और न किसी भौतिक कामना से ही निष्पन्न। सन्त कवि न तो मात्र गृहस्थ थे न ही मात्र संत या विरक्त। वे न केवल कवि थे और न तो मात्र समाजसुधारक। संक्षेप में वे थोड़ा थोड़ा सब थे। वे मानवता कल्याण के व्यापक उद्देश्य से काव्यरचना करने वाले सच्चे समाज सेवी थे। वे सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक कुरीतियों का प्रखर विद्रोह करते थे परन्तु *'सार–सार को गहि रहे, थाथा देई उड़ाए'* के सिद्धान्त के अनुसार सारग्राही भी थे। सन्त कवियों का विश्वास है कि मानव धर्मों का मूल है – जीवन का प्रसार, विस्तार व उन्नति। जीवन का ह्रास एवं नाश अधर्म है। अतः जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार है। अहिंसा पर आधारित है। समस्त मानव मूल्यों के गर्भ में सत्य व अहिंसा विद्यमान है। साध्य है–आनन्द एवं सत्य की प्राप्ति। संत कवि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अहिंसा से ओत–प्रोत देखता है। अतः स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की संत काव्यधारा में सुसंगति, संयम, संतोष, दान, राष्ट्रीय एकता, जनसेवा, निष्कपटता, धर्मनिरपेक्षता, करूणा, प्रेम, समदर्शिता, परोपकार, गुरू सम्मान, सदाचार, उत्कृष्ट वाणी, सत्यवादिता, बाह्याडम्बर विरोध, अहिंसा, क्षमाशीलता, निष्काम सेवा, स्वानुभूति एवं आनन्द आदि समस्त मानवीय मूल्यों का व्यापक रूप से प्रतिपादन हुआ है।

सन्दर्भ

मानक हिन्दी कोष / सं0 रामचन्द्र वर्मा / हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग / 1964 / पृष्ठ संख्या 218.

उत्तरी भारत की सन्त परम्परा/आचार्य परषुराम चतुर्वेदी/ किताबमहल, इलाहाबाद/1972/ पृष्ठ संख्या 04.

कबीर ग्रन्थावली/ड़ॉ0 श्यामसुन्दर दास/प्रकाशन केन्द्र लखनऊ/1972/ पृष्ठ संख्या 232.

चरित्र कोष (द्वारका प्रसाद शर्मा)/सं0 श्री नारायण चतुर्वेदी/ नेषनल पब्लिषिंग हाउस, दिल्ली/ पृष्ठ संख्या 244.

उत्तरी भारत की संत परम्परा/आचार्य परषुराम चतुर्वेदी/ किताबमहल, इलाहाबाद/ 1972/ पृष्ठ संख्या 572.

कबीर ग्रन्थावली/ड़ॉ0 श्यामसुन्दर दास/प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, 1972/ पृष्ठ संख्या 26.

संत कवि मूलकदास/ड़ॉ0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित/ भारतीय संत मलूकदास स्मारक समिति, प्रयाग/ 1965/ पृष्ठ संख्या 81.

बीजक (कबीरचौरा पाठ)/ सं0 गंगाषरण शास्त्री/ कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र/सी.23/5, कबीरचौरा मठ, वाराणसी/1982/सबद–75/ पृष्ठ संख्या 224.

◆◆◆

साहित्य एवं मानवीय मूल्य

मधु रानी

शोधार्थी–हिन्दी, एम0जे0पी0रूहेलखण्ड वि0वि0बरेली (उ०प्र०)

साहित्य में मानवीय मूल्यों का चिंतन एवं अभिव्यक्ति प्राचीन काल से होती रही है। व्यक्ति के चरित्र एवं आचरण का मूल्यांकन मानवीय मूल्यों के आधार पर ही होता है। साहित्य न केवल मानवीय मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता है, बल्कि उन्हे परिमार्जित कर सुदृढ़ आधार पर स्थापित भी करता है। "साहित्यकार व्यक्ति से अधिक समाज, समाज से अधिक राष्ट्र को महत्व देता है। अपनी लेखनी के माध्यम से मानव में दया, प्रेम, त्याग, सद्भाव, उदारता तथा परोपकार जैसे मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए प्रेरित करता है।"1

भारतीय साहित्य चाहे किसी भी भाषा में लिखा गया हो मानवीय मूल्यों से समृद्ध है। "समाज धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलना ही नीति है और उन नियमों के अनुकूल आचरण से सम्बन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य हैं।"2 प्राचीन काल से ही साहित्य ने वसुधैव कुटुम्बकम, शान्ति, अंहिंसा, त्याग आदि मानवीय मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठित किया है। श्रीकृष्ण 'श्रीमद्भागवद्गीता' में अर्जुन को मानव मूल्यों का उपदेश देते है–

"अंहिंसा सत्यमक्रोधस्यत्यागः शांतिर पैशनुमें
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं हीरचापलम्।।
तेजः क्षमा घृतिःशौचमद्रोही नाति मानिता
भवन्ति सम्पदं दैवीमाभिजाातस्य भारत।।"3

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में बौद्ध साहित्य करूणा, मैत्री भ्रातत्व और जैन साहित्य अहिंसा, संयमपूर्ण जीवन निर्वाह, सदाचार और विश्वकल्याण की भावना जैसे मूल्यों से ओत–प्रोत है। अपने राज्य के लिए मर मिटने वाले शौर्य, वीरता व त्याग का विशद वर्णन भी इस काल के साहित्य की अनमोल धरोहर है।

"बारह बरिस लै कूकर जीएँ और तेरह लै जिय सियार।
बरस अठारह छत्री जीएँ, आगे जीवन को धिक्कार।"4

भक्तिकालीन साहित्य मानवीय मूल्यों की टकसाल है। कबीर

व सभी सन्त कवियों, तुलसी, सूर जायसी के काव्य की मूल संवेदना ही मानवीय मूल्य है। कबीर न केवल कुरीतियों व बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हैं, बल्कि मानवतावादी भावों को समाज मे पुनर्स्थापित भी करते हैं। कबीरदास ने दया, प्रेम व विश्वबन्धत्व जैसे मानवीय मूल्यों पर जोर देकर मानवतावाद का स्वर बुलन्द किया–

"साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय"5

पारसनाथ तिवारी लिखते हैं–"सच्ची बात है कि हिन्दी साहित्य मे कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ।"6

तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' मानवीय मूल्यों का शिखर ग्रन्थ हैं। हिन्दी साहित्य की अमर निधि 'रामचरितमानस' मानवीय मूल्यों का भण्ड़ार हैं। परोपकार जैसे मानवीय मूल्य की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति इस ग्रन्थ में हुई हैः–

"परहित सरिस धर्म नहि भाई।
पर पीड़ सम नहि अधभाई।"7

सहिष्णुता व क्षमा प्रमुख मानवीय मूल्य हैं। सहिष्णुता से क्षमा जैसे विराट गुण का उदय होता है। रहीम ने नीति साहित्य में क्षमा व सहिष्णुता जैसे मानवीय मूल्यों का विशद् विवेचन कर उनकी स्थापना की है–

"छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहिमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।"8

रहीम क्षमा को बहुमूल्य तथा 'उतपात' को तुच्छ व्यक्तियों का कृत्य मानते हैं।

सत्य और अहिंसा भारतीय संस्कृति का प्रमुख आधार व मूलभूत मानवीय मूल्य है। साहित्य में सत्य और अहिंसा का महत्व प्रतिपादित कर इन मानव मूल्यों की स्थापना का प्रयास अन्तर्निहित हैं।

"अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ कामें
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न रामें"9

अहिंसा के महत्व को इंगित करते हुए कबीरदास लिखते है–

"बकरी पाती खाति है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल।।"10

रीतिकालीन साहित्य में बिहारीलाल में प्रेम व भक्ति तथा भूषण में राष्ट्रीय प्रेम का स्वर विद्यमान है। मृदुवाणी ऐसा मानवीय मूल्य है जिसके द्वारा समरसता का भाव जाग्रत होता है। वाणी का प्रयोग ही व्यक्ति–व्यक्ति मे अन्तर पैदा कर अच्छा या बुरा बनाता है। वृंद कवि लिखते हैः–

"भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत है काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं।।"11

गिरिधर, बैताल व सम्मन कवियों के साहित्य में सत्संग महत्व, अहंकार परित्याग आदि मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। "समाज के कल्याण तथा सांसारिक व्यावहारिकता की ज्ञानप्राप्ति के दृष्टिकोण से नीति विषयक काव्य परमोत्तम सिद्ध हुआ है।"12

आधुनिक कालीन साहित्य में भारतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य अहिंसा, सत्य, समता, सहिष्णुता, सत्यनिष्ठा, सहानुभूति, करूणा, परोपकार, राष्ट्रप्रेम व मानवतावाद आदि मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही साहित्यकारों का ध्यान जनसामान्य की ओर गया फलतः उन्होने जन भाषा में साहित्य को जनता के बीच पहुँचाया और देशवासियों के अन्दर अपनी मातृभूमि व मातृभाषा के प्रति आत्मसम्मान जगाया।

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा– ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।"13

जयशंकर प्रसाद कृत आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'कामायनी' सहानुभूति, स्नेह और करूणा जैसे मानवीय मूल्यों को स्थापित करता है। 'कामायनी' मे मानवता व सहानुभूति का उत्कृष्ट संदेश है–

"औरो को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।।"14

राष्ट्रप्रेम व मानवीय मूल्यों से युक्त साहित्य ही समाज में चेतना का संचार कर सकता है। आधुनिक काल का साहित्य राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से सरावोर है। भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर, सियारामशरण गुप्त के काव्य की मूल भावना राष्ट्रप्रेम केन्द्रित है। समाज में इन सभी साहित्यकारों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना को जगाकर राष्ट्रप्रेम जैसे मानवीय मूल्य को

देश में स्थापित किया है।

"सच्चा प्रेम वही है जिसकी, तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर।।
देश प्रेम वह पुष्य क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित।।"15

मानवीय मूल्य हिन्दी साहित्य का वैशिष्ट्य रहा है। साहित्य में मानवीयता, बसुधैव कुटुम्बकम व विश्वबन्धुत्व की भावना का उदात्त रूप प्रकट हुआ है।

"दुर्निवार यह राग, राग का
रूप करो निर्माण,
वेष्ठित करो राग से भव
हो जन जीवन कल्याणं"16

वर्तमान समय में आधुनिकता की दौड़ में समाज में मानवीय मूल्यों का तेजी से ह्रास हुआ है। भौतिकतावाद की अन्धी दौड़ में मानवीय मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं। चूकि साहित्य समाज का दर्पण है अतः साहित्य पर भी उसका प्रभाव परिलक्षित होना निश्चित है, यही कारण है कि आज ईमानदारी जैसे मानवीय गुण के प्रतीक पात्र वंशीधर (नमक का दरोगा–कहानी, प्रेमचन्द्र) व बूढ़ी दादी के लिए समझदारी से चिमटा खरीदने वाले पात्र हामिद (ईदगाह–कहानी, प्रेमचन्द्र) जैसे पात्रो का सृजन वर्तमान साहित्य में नहीं हो पाया। "सांस्कृतिक संकट या मानवीय तत्व के विघटन की जो बात बहुधा उठायी जाती है उसका तात्पर्य यही रहा है कि वर्तमान युग में ऐसी परिस्थितयाँ उत्पन्न हो चुकी हैं, जिनमें अपनी नियति के इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते है।"17 अतः अब साहित्यकार का उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है कि वह समाज में मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने मे योगदान करे।

निष्कर्ष में, साहित्य एवं मानवीय मूल्यों का अटूट सम्बन्ध है। साहित्य द्वारा स्थापित मानवीय मूल्य व्यक्ति के आचरण व चरित्र के निर्माण में सहायक होते हैं जिससे समाज में स्वस्थ प्रवृत्तियों का विकास होता है। साहित्य में दया, प्रेम, त्याग, कल्याण, सहानुभूति, परोपकार, राष्ट्रप्रेम, क्षमा, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा व नारी सम्मान जैसे मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति हुई है। निः सन्देह साहित्य से समाज में मानवीय गुणों का संचार होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संत कबीर का साहित्य, ड़ा0 बिन्द दुबे पृ0–41

आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, ड़ा0 देशमुख

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय–16, श्लोक–2,3

हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, ड़ा0–बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, तीसरा संस्करण, पृ0 57

हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक–यूनिक ट्रेडर्स जयपुर संस्करण–2017 पृ0–104

कबीर साहब, ड़ा0 गुरूदेव सिंह पृ0–51

रामचरितमानस, तुलसीदास

रहीम ग्रन्थावली, सम्पादक– विद्यानिवास मिश्र, गोविन्द रजनीष

रहीम ग्रन्थावली, सम्पादक– विद्यानिवास मिश्र, गोविन्द रजनीष

हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक–यूनिक ट्रेडर्स जयपुर संस्करण–2017 पृ0–105

हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक–यूनिक ट्रेडर्स जयपुर संस्करण–2017 पृ0–274

हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पादक– ड़ा0 नगेन्द्र, प्रकाशक–मयूर बैक्स तीसरा संस्करण पृ0–369

hi.m.www.wikipedia.orgèwiki

कामायनी, जयशंकर प्रसाद

हिन्दी साहित्य का इतिहास– सम्पादक नगेन्द्र, प्रकाशक–मयूर बैक्स तीसरा संस्करण पृ0–489

युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत

मानव मूल्य ओर साहित्य, धर्मवीर भारती

◆◆◆

हिन्दी साहित्य में मानवीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ0 निधि शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, किशोरी रमण, स्नाकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा (उ०प्र०)

आरंभ से ही मानव सुविधापूर्वक जीवन यापन करने के लिए कुछ नियमों का निर्धारण करता है, जो सार्वभौमिक और सर्वकालिक होते हैं। किन्तु इनमें समयानुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। इनका विकास, विभिन्न परिवेश, परिस्थितियों में होता है, इसलिए प्रत्येक देश के धर्म, दर्शन, संस्कृति में भिन्नता दिखाई पड़ती है किन्तु सर्वत्र ही मूल्यों के निर्धारण में मानव के उत्थान–पतन और कल्याण की मूल में रहती है, जैसा कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री सुड्स ने लिखा है– "मूल्य" दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य न केवल मानव व्यवहार को प्रदान करते हैं, बल्कि वे अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी हैं।

सभी प्रकार के मूल्य मानव–जीवन से संबंधित होते हैं। इसलिए मूल्यों को मानव–जीवन से अलग रखकर नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि समाज के साथ ही मूल्यों का प्रारंभ परिवार से होता है। परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य व्यापक समाज में आता है। ग्राम, प्रांत, देश सब उन व्यापक समाज के घटक हैं। अतः साहित्य समाज का दर्पण है। उपनिषदों के 'सत्यम' वद् धर्मचार से लेकर कबीर तथा तुलसीदास से लेकर रहीम के नीति काव्य तक व्याप्त नींति साहित्य मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रत्यक्ष प्रयास है। आधुनिक साहित्य में 'मूल्य' शब्द कर प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है। 'मूल्य' शब्द की आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। आज मनुष्य पुराने विचारों को काल बाह्य समझने लगा है, प्राचीन मूल्य अस्वीकृति हो रहे हैं और नए–नए मूल्य स्वीकार किए जा रहें हैं।

जब हम मानव मूल्य की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य क्या है, यह समझ लेना आवश्यक है। अपनी परिस्थितियाँ, इतिहास–क्रम और काल–प्रवाह के सन्दर्भ में मनुष्य की स्थिति क्या है और महत्त्व क्या है– वास्तविक समस्या इस बिन्दु से उठती है। समस्त मध्यकाल में सृष्टि और

इतिहास—क्रम का **नियन्ता** किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। समस्त मूल्यों का स्रोत्र वही था और मनुष्य की एक मात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे। इतिहास या काल—प्रवाह उसी मानवोपरि सत्ता की सृष्टि थी— माया रूप में या लीला रूप में। ज्यों—ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेष करते गये त्यों—त्यों इस मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया। मनुष्य की गरिमा का नये स्तर पर उदय हुआ और माना जाने लगा कि मनुष्य अपने में स्वतः सार्थक और मूल्यवान् है— वह आन्तरिक शक्तियों से संपन्न, चेतन—स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वतः निर्णय लेने वाला प्राणी है। सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। यह भावना बीच—बीच में मध्यकाल के साधकों या सन्तों में भी कभी—कभी उदित हुई थी, किन्तु आधुनिक युग के पहले यह कभी सर्वमान्य नहीं हो पायी थी।

लेकिन जहाँ तक एक ओर सिद्धांतों के स्तर पर मनुष्य की सार्वभौमिक सर्वोपरि सत्ता स्थापित हुई, वहीं भौतिक स्तर पर ऐसी परिस्थितियाँ और व्यवस्थाएँ विकसित होती गयीं तथा उन्होंने ऐसी चिन्तन धाराओं को प्रेरित किया जो प्रकारान्तर से मनुष्य की सार्थकता और मूल्यवत्ता में अविश्वास करती गयीं। बहुदा ऐसी विचारधाराएँ नाम के लिए मानवतावाद के साथ विषिष्ट विशेषण जोड़कर उसका प्रश्रय लेती रही हैं। किन्तु मूलतः वे मानव की गरिमा को कुण्ठित करने में सहायक हुई हैं और मानव का अवमूल्यन करती गयी हैं।

सांस्कृतिक संकट या मानवीय तत्त्व के विघटन की जो बात बहुधा उठाई जाती रही है, उसका तात्पर्य यही है कि वर्तमान युग में ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं जिसमें अपनी नियति के इतिहास—निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते हैं— मनुष्य दिनोंदिन निरर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है। यह संकट केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट नहीं है वरन् जीवन के सभी पक्षों में समान रूप से प्रतिफल हो रहा है। यह संकट केवल पश्चिम या पूर्व का नहीं है वरन् समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है।

साहित्य को इसी वर्तमान मानवीय संकट के सन्दर्भ में देखने की और जाँचने की चेष्टा की गयी है। साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व है और मानवीय चेतना के बहुविध प्रत्युत्तर है। इसलिए हम आधुनिक साहित्य के बहुत—से पक्षों को या आयामों के केवल तभी बहुत अच्छा तरह समझ सकते हैं जब तक हम मानव—मूल्यों के इस व्यापक संकट के सन्दर्भ में देखने की

चेष्टा करें। अभी तक हिन्दी साहित्य के तमाम अध्ययनों में दो दृष्टिकोण लिये जाते रहे हैं। या तो हिन्दी साहित्य को अपने में एक संपूर्ण वृत्त मानकर उसका अध्ययन इस तरह किया जाता था जैसे वह शेष सभी बाहरी सन्दर्भों से विच्छिन्न हों या इसका स्वरूप था कि उस पर बाहरी शक्तियों और धाराओं के प्रभावों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता रहा है गोया वह केवल निष्क्रिय तत्त्व है जिसे दूसरे केवल प्रभावित कर सकते हैं। किन्तु वह केवल दूसरे साहित्यों से प्रभावित ही नहीं हुआ है वरन् विश्व इतिहास की समस्त प्रक्रिया में स्वयं एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उसने संकट का सामना किया है। नये मूल्यों के विकास की भूमिका प्रस्तुत की है और तमाम साहित्यों के बीच वह केवल दूसरों से प्रभावित होने की वस्तु ही नहीं रही है वरन् उन तमाम आधुनिक परिस्थितियों के बीच उसका अपना सहज स्वाभाविक उन्मेष हुआ है।

आधुनिक साहित्य विधा उपन्यास विशालकाय होने के कारण विविध मानवीय मूल्यों को अपने में समेटे हुए है। उपन्यास साहित्य ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बद्ध जीवन–मूल्यों की अभिव्यंजना की है। प्राचीन उपन्यास साहित्य में मूल्यों का आध्यात्मिक स्वरूप मिलता है किन्तु प्रेमचन्द युग मूल्य–संक्रमण का युग होने के कारण आदर्शों पर आधारित परम्परित रूढ़िग्रस्त मूल्यों का अंधा अनुसरण करने की अपेक्षा नवीन जीवन–मूल्यों को अस्तित्व में लाया। प्रेमचन्दकालीन उपन्यास साहित्य ने आर्दष तथा यथार्थ का समनव्य प्रस्तुत करके सम्पूर्ण समाज को नवीन दिशा प्रदान की। आधुनिक उपन्यास जीवन के यर्थाथ स्वरूप को ही ध्येय मानते हुए परम्परित मूल्यों को झटक कर जीवन के नये क्षितिज उजागर कर रहा है। ड़ॉ0 सुरेश सिन्हा लिखते हैं– "जो साहित्य कालातीत है, वह निष्चय ही आत्मोपलब्धि का साहित्य है और अपने युग की सांस्कृतिक चेतना के साथ घनिष्ठतम रूप में सम्बद्ध है। यही कारण है कि आज का उपन्यासकार अपने युग जीवन को आत्मगत सत्य के रूप में ही स्पष्ट करने की चेष्टा करता है। वह अपनी आन्तरिक संवेदना को अपने वैयक्तिक स्वतन्त्रता की शर्त स्वीकार कर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न करता है। वह जीवन के अन्दर से जीवन का साक्षात्कार करता है और यह आत्मान्वेषण की प्रक्रिया भी है, जिसमें मानवीय मूल्यों को गति प्राप्त होती है।"

प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यास साहित्य ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार जीवन–मूल्यों को स्थापित किया है। इस युग में श्रद्धाराम फिल्लौरी, श्रीनिवासदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने समाज की आवश्यकताओं को समझते हुए अपने उपन्यासों में

मूल्याभिव्यक्ति की है। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' में संयुक्त पतिवार सम्बन्धी मूल्यों को प्रस्तुत किया है। भाग्यवती के पिता उमादत्त बालविवाह का विरोध कर परम्परित वैवाहिक मूल्यों को चुनौती देते दिखाई पड़ते हैं। श्रीनिवासदास कृत उपन्यास 'परीक्षागुरू' में वस्तुपरक मूल्यों के साथ–साथ शिल्पगत मूल्यों का भी नवीन स्वरूप सामने उभर कर आया है। 'परीक्षागुरू' का ब्रजकिशोर नवीन मूल्य–चेतना के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का विरोध कर नैतिक–मूल्यों की स्थापना करता है। ब्रज किशोर के बदलते मूल्य अपने मित्र मदनमोहन को पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावाधीन अपनी संस्कृति से च्युत हो जाने पर विनाश से बचा ड़ालते हैं। उपन्यास का नायक मदनमोहन कुसंगति का षिकार होकर भारतीय संस्कृति मूल्यों को विस्मृत कर देता है और स्वार्थी मित्रों की कृपा से ऋणाग्रस्त होकर जेल तक चला जाता है। इतना ही नहीं वह अपने दुराचरण से अपनी सुशील पत्नी को भी अपमानित करता है। ब्रज किशोर की मूल्य–चेतना मदनमोहन का हर प्रकार से साथ देकर नैतिक मूल्यों के महत्त्व का प्रतिपादन करती है। उसकी मूल्यवत्ता मदनमोहन को आचरण सम्बन्धी मूल्यों का उपदेश देते हुए दामपत्य जीवन में सम्मान के मूल्यों का समर्थन करती हैं इसके अतिरिक्त ज्यातिष विद्या पर विचार करते हुए श्रीनिवासदास ने परम्परित धार्मिक मूल्यों को भी खण्डित किया है। ड़ॉ0 सुरेश सिन्हा लिखते हैं– "इसके विपरीत वकील ब्रजकिशोर अंग्रेजी संस्कृति एवं सभ्यता से परिचित, नवोन्मेश शालिनी आभा से दीप्त, स्वदेशाभिमानी एवं कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति हैं। वे उस प्रगतिशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो रूढ़िग्रस्त समाज के अमानवीय कृत्यों एवं अन्धविश्वासों को हटाकर सामाजिक व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन को करना चाहता है लेकिन पश्चिमी सभ्यता के आधार पर नहीं, भारतीय आदर्शों की पृष्ठभूमि पर।"

श्रीनिवासदास ने शिल्पगत नवीन–मूल्यों को भी 'परीक्षागुरू' के रूप में प्रयुक्त किया हैं ड़ॉ0 रामदरष मिश्र 'परीक्षागुरू' में प्रयुक्त परिवर्तित मूल्यों के संबंध में लिखते हैं– "श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरू' को अधिकांश विद्वानों ने वस्तु, शिल्प, भाषा आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। स्वयं श्रीनिवासदास भी इस तथ्य से परिचित ज्ञात होते हैं कि वह रोमानी प्रेम कथाओं, दैवीय घटना–विधानों एवं रहस्यमय वातावरण की सृष्टि करने वाली परम्परागत प्रक्रिया को त्यागकर अपनी भाषा में सर्वप्रथम नवीन शिल्प पर आधारित कथा–कृति का सृजन कर रहे हैं।"

मुंषी प्रेमचन्द ने परम्परित एवं नवीन मूल्यों का सामजस्य दर्शाकर समाज को व्यवस्थित में महत्तवपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने मानव जीवन

की उदात्तता प्रदान करने वाले आदर्शात्मक मूल्यों को भी पोषित किया तथा तत्कालीन युग की माँग को संतुष्ट करने वाले नवीन जीवन–मूल्यों को भी सशजित किया। ड़ॉ0 रामदरष मिश्र लिखते हैं– "वे निष्चय ही विचारों और संस्कारों से मूल भारतीय आदर्शों के पोषक थे परन्तु एक यथार्थवादी कलाकार की हैसियत से समाज में व्याप्त पुराने–नये मूल्यों के संघर्षों, पुराने जर्जर मूल्यों के विघटन और नये भौतिकवादी मूल्यों की उत्तरोत्तर प्रतिष्ठा को आँख से ओझल नहीं कर सकते थे।"

प्रेमचन्द कृत उपन्यास 'गोदान' की मुख्य चिन्ता मर्यादा–पालन अर्थात् मूल्य रक्षा न होकर नवीन मूल्यों का सृजन हैं 'गोदान' का गोबर सामन्ती/जमींदारी/महाजनी सभ्यता के इन मूल्यों को तोड़ता है कि जिस दर पर ब्याज लिया है, उसी पर वापिस करना होगा। नगरीय जीवन उसकी आँखें ही नहीं खोलता, उसमें नवीन मूल्य–चेतना को जन्म भी देता है। गोबर के बदलते मूल्य पिता होरी से कहते हैं–

"कैसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहाँ तो कोई किसी का चाकर नहीं। सभी बराबर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रूपये उधार दे दिए और उससे सूद जिन्दगी भर लेते रहें। मूल ज्यों का त्यों। यह महाजनी नहीं है खून चूसना है।"

पूरे उपन्यास में नायक और उसके परिवार की दुर्दशा दिखाकर प्रेमचन्द यही संदेश देते हैं कि नवीन मूल्यों का सृजन अनिवार्य है।

इलाचन्द्र जोशी अपने उपन्यास 'प्रेत की छाया' तथा 'मुक्तिपथ' में परम्परित सामाजिक मूल्यों को खण्डित करते हुए समाज में नारी की बदलती स्थिति को दर्शाकर नवीन मूल्यों के प्रतिमान गढ़ देते हैं। यशपाल के 'झूठा सच' की नायिका कनक अन्तर्जातीय विवाह का चयन करती है और पति के परस्त्रीगामी निकल आने पर तलाक का वरण करती है। वह इन मूल्यों की स्थापना पाँचवे दषक में कर रही है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', शहर में घूमता आईना' आदि उपन्यासों में नवीन वैयक्तिक मूल्यों की स्थापना की है। ड़ॉ0 इन्द्रनाथ मदान 'गिरती दीवारें' नायक 'चेतन' के अस्तित्ववादी मूल्यों के संबंध में लिखते हैं– "मध्यवर्ग का यह व्यक्ति चेतन, अपनी अकेली हस्ती को बहुत बड़ी चीज समझता है। यह बड़ी और कीमती चीज जब ठोस हकीकत की चट्टानों से टकराती है तो जतन से पाले हुए उसके सपने, प्यारी–प्यारी विडम्बनाएँ और सुनहरे आदर्शवाद सिसकियाँ लेने लगते हैं।"

हिन्दी उपन्यास साहित्य ने मूल्यबोध को आधार बनाकर मानव जीवन को उदात्त में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास साहित्य में सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया गया। प्रेमचन्द कालीन उपन्यास साहित्य में मूल्यों के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों को चित्रित किया गया है। प्रेमचन्द युग मूल्य–संक्रमण का युग होने के कारण परम्परित मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों को स्थापित करने में सफल रहा। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में उपेन्द्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, राजेन्द्र यादव आदि उपन्यासकारों ने परम्परा के नाम पर पाए जाने वाले मूल्यों को तहस–नहस कर समयानुरूप नवीन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी। उपन्यास साहित्य में मूल्यों का पूर्णतया नवीन स्वरूप उभरकर सामने आया हैं आधुनिक उपन्यास साहित्य में आधुनिक युग की मूल्यहीनता का स्पष्ट रूप से चित्रण करके समाज को मूल्यच्युत होने से बचने की चेतावनी दी है तथा आधुनिक युग की माँग को पूरा करने वाले औचित्यपूर्ण नवीन जीवन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी है। आधुनिक उपन्यास साहित्य में वैयक्तिक एवं अस्तित्ववादी मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया गया।

कहानी साहित्य की एक सशक्त विधा मानी जाती है। कहानी विधा से हमें जीवनपथ पर चलने के लिए आदर्श एवं मूल्य मिलते हैं। नयी कहानी और मूल्यों मे संदर्भ में ड़ॉ0 इंद्रनाथ मदान ने लिखा है– "पहले कहानी अधिकांशतः कल्पना पर आधारित होती थी अब यथार्थ को लेकर चलती है। अतः पहले की कहानी पुरानी है और आज की कहानी नयी है। नयी कहानी में तलाश पात्रों की नहीं यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यर्थाथ की अभिव्यक्ति पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर।"

अगर हम कहानी साहित्य विधा का विचार करते हैं तो आरंभिक कहानियाँ आदर्शपरक या कल्पनापरक होती थी पर धीरे–धीरे इसमें जीवन मूल्यों की स्पष्ट अभ्यिव्यक्त होती गई। स्वतंत्रता पूर्व कहानी में त्याग, निस्वार्थता, बलिदान आदि भावनाएँ विकसित की गई थीं। प्रेमचन्द कालीन कहानी में यर्थाथ को दर्शाने का प्रयास किया गया। यानि यथार्थता के माध्यम से जीवन से की विसंगतियाँ, कुरूपता को दर्शाने का प्रयास किया गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, लोभस प्रवृति को दिखाया गया है। बनते बिगड़ते रिश्ते भी दिखाई देते हैं।

जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी कहानियों में 'आकाशदीप', 'ममता', 'पुकार', रिश्तों की उलझनें ही दर्शायी हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी में विशुद्ध प्रेम और श्रद्धा भाव दर्शाया गया है। प्रेमचन्द जी तो हमेशा से ही मूल्यों के आग्रही दिखाई देते हैं।

उनकी 'परीक्षा', 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर' में आदर्श का ही चित्रण किया है। विषंभर नाथ शर्मा की 'ताई' में पारिवारिक मूल्यों को दिखाया गया है। यशपाल जी की 'महादान' कहानी में मूल्यों का विघटन किस प्रकार हो रहा है उसे दर्शाया है। 'दुख का अधिकार' इस कहानी में साजिक, आर्थिक विषमता को दिखाया है। अज्ञेय जी के 'इंदे की बेटी' कहानी में दांपत्य संबंधों में छेद दिखाया है। मोहन राकेष की 'मलवे का आदमी' में परिस्थितिनुरूप मूल्यों में हो रही गिरावट देख सकते हैं। कमलेश्वर जी के 'मांस का दरिया', 'कस्बे का आदमी', 'बयान' आदि कहानियों में आदर्श का आग्रह दिखाई देता है। मन्नु भण्ड़ारी की कहानियों में पारिवारिक टूटते मूल्य, पुराने और नये मूल्यों में हो रहा संघर्ष दिखाई देता है।

साहित्य जीवन का दर्पण ही नहीं, उसको दिशा देने वाला अनिवार्य तत्व है। आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण विधा कहानी के उद्‌भव की तरफ जाएँ तो हमारा ध्यान वेदों, उपनिषदों, पौराणिक कथाओं की ओर जाता है कि प्रत्येक कथा के मूल में मूल्य–चेतना ही है। सुरेश सिन्हा के शब्दों में– "कहानी जीवन के यथार्थ की प्रतिछाया होती है। वह मानव जीवन के संघर्ष के किसी संवेदनाजन्य पक्ष को प्रकट करती है और जीवन के प्रगतिशील तत्वों को समाहित करते हुए नवीन मानव मूल्यों की स्थापना अथवा अन्वेषण नहीं करती, वरन् वह उन पुराने मूल्यों की खोज भी करती है, जो आज किन्हीं कारणों से विघटित हो चुके हैं, पर जो परिवर्तशील परिस्थितियों में भी मानवीय भवधारा के उत्थान के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं।"

प्राचीन कथा साहित्य के अन्तर्गत 'कठोपनिषद्' में नचिकेता की कथा में साहस में मूल्य, 'बैताल पंचवंषिका' में राजा विक्रमादित्य के धैर्य एवं विवेक संबंधी मूल्य, 'शुक सप्तति' में दायित्व के मूल्य, जातक कथाओं में बौद्ध धर्म संबंधी धार्मिक मूल्य, 'पंचतंत्र' एवं 'हितोपदेश' में नीति संबंधी मूल्य मिलते हैं। वैदिक, औपनिषदि्क, पौराणिक कथाएँ शैल्पिक दृष्टि से क्षीण होने के कारण कहानी के तत्वों पर खरी नहीं उतरतीं किन्तु परवर्ती कहानी को आधार–भूमि एवं नवीन दिशा प्रषस्त करने में इन पूर्ववर्ती कथाओं का

विषिष्ट महत्त्व है।

कहानी में मूल्य–चेतने इसके उद्‌भव से ही दिखाई देने लगी थी। हिन्दी का प्रारम्भिक कहानी का श्रेय अनेक कहानियों में दिया गया है। 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' में भावुक प्रेम का खण्डन मिलता है। नायिका को अजयगढ़ के राजकुमार चन्द्रषेखर से प्रथम दृष्टि में ही प्रेम हो जाता है किन्तु पिता के इस प्रेम को गृहस्थ में बदलने से पूर्व उसमें समाये मूल्यों का परीक्षण करते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी यही सिद्ध करना चाहते हैं कि जीवन भावुकता नहीं मूल्य है। 'इन्दुमति' में मूल्यों का सम्बन्ध मानव मन की कोमल भावनाओं के साथ–साथ विवेक से भी जोड़ा गया है। रामचन्द्र शुक्ल की 1903 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' में दामपत्य की मूल्यवत्ता को स्पष्ट किया गया है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री आदि कहानीकारों ने वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय जीवन मूल्यों को जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया। 'उसने कहा था' कहानी में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने लहनासिंह के माध्यम से प्रेम और सौहार्द के मूल्य, युद्ध के सन्दर्भ में राष्ट्रीय मूल्य तथा कहानी में अनेक स्थलों पर सांस्कृतिक मूल्य प्रस्तुत किए हैं। लहनासिंह की सहिष्णुता एवं निर्भयता इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होती है–

"लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर नहीं हुई कि लहना को दूसरा घाव लगा है।"

'ममता' कहानी में प्रसाद जी ने ममता के माध्यम से रिष्वत का विरोध एवं आतिथ्य संबंधी सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित किया है। ब्राह्मणी ममता की झोंपड़ी के समक्ष खड़ा होकर जब शहंषाह हुमायुँ उससे एक रात के लिए आश्रय की प्रार्थना करता है तो पहले ममता के हृदय में आता है कि विधर्मी दया के पात्र नहीं होते किन्तु शीघ्र ही ममता में कर्त्तव्य के मूल्य जागृत हो जाते हैं और वह सोचने लगती है–

"मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म अतिथि की उपासना का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ नहीं–नहीं, ये सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं कर्त्तव्य करना है।"

प्रेमचन्द पूर्व कहानी साहित्य काफी हद तक कल्पनालोक में

विचरता रहा, किन्तु फिर भी वह मूल्यबोध से असंपृक्त न रह सका। वास्तविक नवीन मूल्य–चेतना से सराबोर साहित्य के दर्शन प्रेमचन्द युग से ही होते हैं। प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य मूल्य स्थापना का साहित्य है। उनका समस्त साहित्य परिवर्तित मूल्यों का अवगाहन एवं अवलोकन करता हैं ड़ॉ0 विनय के शब्दों में–

"व्यक्ति के परिवेश से सम्बद्ध सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की विराटता जब क्रियात्मक उत्साह के साथ मूल्यों की स्थापना करती है तो कोई आन्दोलन जन्म लेता है जिसके फलस्वरूप मूल्यों परिवर्तन और नवीन जीवन–दृष्टियों का आविर्भाव होता है।"

प्रेमचन्द ने व्यक्ति जीवन के विविध आयामों में होने वाले इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर मूल्यान्वेषण कर समाज के समक्ष नवीन मूल्य–चेतना को प्रस्तुत किया है। उनकी प्रथम हिन्दी कहानी 'पंचपरमेश्वर' में ईमान के मूल्य हैं। इस कहानी में प्रेमचन्द जी ने पंचायत की न्याय–धर्मिता एवं दायित्वबोध संबंधी मूल्यों को जुम्मन शेख तथा अलगु चौधरी के माध्यम से पेष किया है। जुम्मनशेख के शब्दों में–

"भैया, जब तुमने मेरी पंचायत की तब से मैं तुम्हारा प्राण–घातक शत्रु बन गया था, पर मुझे आज ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जुबान से खुदा बोलता है।"

धार्मिक मूल्यों के प्रति दुखी की अटूट श्रद्धा ही अंत तक भी घासीराम के प्रत्येक अनुचित कार्य की पैरवी करती रही है। प्रेमचन्द ने 'कफन', 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआँ' में जमींदारी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाते हुए आर्थिक मूल्य–चेतना को उजागर किया है। सुरेश सिन्हा के शब्दों में– "मानव जीवन में इतिहास का मूल आर्थिक है, उतपादन और वितरण के साधनों में परिवर्तन होने के साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन होता है। वर्ग संघर्ष ही समाज की प्रगति का स्त्रोत है, व्यक्ति के स्थान पर समष्टि अधिक महत्त्वपूर्ण है, सामाजिक मूल्य और आदर्श वर्ग विशेष के होते हैं, वर्गहीन समाज में ही वास्तविक मूल्यों और आदर्शों की स्थापना हो सकती है।"

प्रेमचन्द कृत कहानी 'नमक का दारोगा' नैतिक मूल्यों से सराबोर कहानी है। वंशीधर के माध्यम से प्रेमचन्द स्पष्ट करना चाहते हैं कि मूल्यवत्ता की कभी हार नहीं हो सकती। वंशीधर पिता की शिक्षा एवं प्रतिष्ठित जमींदार

अलोपीदीन के द्वारा नैतिक मूल्यों से डिगाये जाने के प्रयत्न के पष्चात भी अपने ईमान के मूल्यों का परित्याग करता और कहानी के अन्त में अलोपीदीन को अपनी धर्मनिष्ठा से प्रभावित कर उसकी जायदाद का स्थायी मैनेजर बनकर सत्य के मूल्य की विजय सिद्ध करता है। पंडित अलोपीदीन वंशीधर के ईमानदारी संबंधी मूल्यों के संबंध में कहता है–

"उस रात को आपने अपने अधिकार बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किन्तु आज में स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया।"

प्रगतिवादी कहानीकारों ने प्रगतिशील मूल्यों के आधार पर रूढ़िग्रस्त मूल्यों का विच्छेद कर मनुष्य के सर्वोन्मुखी विकास की नवीन दिशाएँ खोल ड़ाली। स्वातंत्र्योत्तर कहानी मूल्यहीनता, मूल्यों के टकराव एवं नवीन मूल्यों के सृजन की कहानी है। इस मूल्यहीनता को मूल्यानुसार बनाने के लिए सचेतन, सक्रिय, समानान्तर जैसे कहानी आन्दोलन भी चले। राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मन्नु भण्ड़ारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी, मोहन राकेष आदि स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने आर्थिक–चेतना, महानगरीयबोध, पारिवरिक विश्शृंखलता, पीढ़ी संघर्ष, वैयक्तिक–चेतना संबंधी परिवर्तित जीवन–मूल्यों को प्रस्तुत किया है। ड़ॉ0 महाराज कृष्ण जैन के शब्दों में–

"यान्त्रिकी और औद्योगीकरण का सबसे प्रभाव मानवीय सम्बन्धों के रूपों पर ही पड़ रहा है और ये सम्बन्ध एक भयंकर तनाव के बीच गुजर रहे हैं। आधुनिक हिन्दी कहानी में यह स्थिति अभिवयक्ति पा रही है और इसे ही मूल्यों का संक्रमण या संकट कहा–समझा जा रहा है।"

निर्मल वर्मा की कहानी 'परिन्दे' अस्तित्ववादी मूल्यों को समेटे हुए है। कहानी की नायिका लतिका अपने प्रेमी गिरीष की मृत्यू के कई वर्षों पष्चात भी उसी की स्मृति में डूबी रहती है किन्तु ह्यूबर्ट का प्रेम–पत्र पाते ही वह अपने वैयक्तिक मूल्यों को महत्त्व देते हूए प्रेम की एकनिष्ठा संबंधी परम्परागत धारण को ठोकर मार देती है। 'परिन्दे' कहानी में निर्मल वर्मा ने अस्तित्ववाद के सन्दर्भ में बदलते प्रेमगत मूल्यों को चित्रित किया है। सविता जैन के शब्दों में–

"युगीन परिस्थितियों के अपुरूप ही सामाजिक सन्दर्भ तथा संबंध भी परिवर्तित होते रहते हैं और किसी समय अत्यन्त सार्थक लगने वाले

जीवन–मूल्य धीरे–धीरे अर्थहीन होने लगते हैं।"

साहित्य ने मूल्यबोध के आधार पर समयानुसार मूल्यों की गवेषणा करके संपूर्ण समाज को प्रगति का मार्ग प्रषस्त किया है। प्रेमचन्द पूर्व कहानी साहित्य में इंषा अल्लाह खां, भारतेन्दु हरिष्चन्द्र, किशोरीलाल गोस्वामी, आ0 रामचन्द्र शुक्ल, बंग महिला आदि कहानीकारों ने मूल्यान्वेषण एवं मूल्यों को स्थापित किया। प्रेमचन्द युगीन कहानी साहित्य में मूल्यों का वास्तविक एवं व्यावहारिक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अपनी कहानियों में प्रेम एवं सौहार्द के मूल्य, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घाटित कर मूल्यों की स्थापना में योगदान दिया। मनोविश्लेषणवादी कहानी साहित्य के अन्तर्गत जैनेन्द्र, अज्ञेय तथा इलाचन्द्र जोशी ने वैयक्तिक मूल्यों को प्रतिपादन किया है। प्रगतिवादी कहानी–साहित्य में मार्क्सवादी मूल्यों को स्थान दिया गया हैं रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त आदि प्रगतिवादी कहानीकारों ने रूढ़िग्रस्त परम्परागत मूल्यों को खण्डित कर के प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना की है। आधुनिक कहानी साहित्य में निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, मोहन राकेष, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्ड़ारी आदि कहानीकारों ने प्राचीन रूढ़िग्रस्त मूल्यों को जड़ से उखाड़ कर नवीन मूल्यों की स्थापना की है। समग्रतः कहा जा सकता है है कि किसी भी देश अथवा काल के साहित्यकी आधार–भूमि मूल्य–चेतना ही होती है। कोई भी साहित्य मूल्यहीनता की अवस्था में अधिक देर तक नहीं रह सकता, मात्र समाज एवं साहित्य परिस्थिति एवं समयानूरूप मूल्यों परिवर्तन करता रहता है।

सन्दर्भित पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास – पृ0 60–सुरेश सिन्हा

हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष – पृ0 17, 12–रामदरष मिश्र

हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा– पृ0 41–रामदरष मिश्र

गोदान–पृ0 182–मुंशी प्रेमचन्द

हिन्दी उपन्यास पहचान और परख– पृ0 162–इन्द्रनाथ मदान

हिन्दी कहानीः उद्भव एवं विकास – पृ0 1–सुरेश सिन्हा

हिन्दी कहानी दो दषक की यात्रा– पृ0 262, 58, 120–रामदरष मिश्र, नरेन्द्र मोहन

हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास – पृ0 264–लक्ष्मीनारायण लाल

◆◆◆

महाकवि भास के नाटकों में निहित मानव–मूल्य

सर्वेश कुमार

शोध छात्र, वी.आर.ए.एल. राजकीय महिला, महाविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

संस्कृत साहित्य संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिए एक अनुपम वैश्विक धरोहर है। जो शताब्दियों से निरन्तर सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करती आ रही है। भारतीय पृष्ठभूमि पर प्रणीत वैदिक वाङ्मय ही संस्कृत साहित्य में जीवन मूल्यों की सुदृढ़ आधारशिला रख चुका है इसी के आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मनुष्य को जब कभी अपनी अस्मिता का वोध हुआ होगा तभी से उसने मानव–मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरम्भ कर दिया होगा। वैदिक वाङ्मय में चार वेद एवं एक सौ आठ उपनिषद मानव समाज को अपने गंतव्य की ओर इस प्रकार तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते है कि वह समाज को एक नया आदर्श रूप प्रस्तुत करें, और उससे कोई त्रुटि न हो सकें।

मानव जाति का एक ही मूल उद्गत होने के कारण आरम्भ में संस्कृति का स्वरूप भी अभिन्न था किन्तु ज्यो–ज्यो मानव समुदाय अलग–अलग वर्गों या कबीलों में विभक्त होता गया, उसकी मान्यताएँ और कार्य–पद्धतियों भी बदलती गयीं। इस परिवर्तन का कारण देश–काल की परिस्थितियाँ रही है। पद्धतियाँ भी बदलती गयीं।

इस परिवर्तन का कारण देश–काल की परिस्थितियाँ रही है। इन विभिन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप उसके रहन–सहन और आचार–विचारों में परिवर्तन होता गया। इस प्रकार संस्कृति की एक ही मूल धारा अनेक उपधाराओं में विभक्त हो गयी और अलग–अलग राष्ट्रों तथा जातियों के नाम से कहीं जाने लगी। जिसे आज भारतीय संस्कृति कहा जाता है, वह अपने मूल रूप में वैदिक संस्कृति ही है।

भारतीय संस्कृति का मूल वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की विविध संहिताओं के अतिरिक्त ब्राह्मण, आख्यक, उपनिषद् तथा कल्पसूत्र को भी वैदिक साहित्य के अन्तर्गत माना जाता है। भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास, समाज, अर्थनीति, राजनीति, ललितकला, भाषा आदि के उद्भव तथा प्रारंभिक विकास की जानकारी के लिए एक साहित्य का

अध्ययन आवश्यक है। संस्कृत साहित्य पुर्नजन्म वाद में विश्वास करता है। इस प्रकार मनुष्य के विषय में कहा गया है कि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जन्म को वैदिक वाङ्मय ने अत्यन्त विषिष्ट स्थान प्रदान किया है। उपनिषदो का स्पष्ट कथन है कि :–

'आहार निद्रा भय मैथुनादि
सामान्यमेतत् पशुभिः नराणां
ज्ञानम नराणां अधिकम् विशेष :
ज्ञाने शून्यः पशुभिः समानः

इस प्रकार उक्त कथन से ज्ञात होता है कि मनुष्य जीवन में ज्ञान का कितना महत्व है इसी ज्ञान का विकास मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु मूल्यों के रूप में होता है। सामान्यतः जीवन मूल्य व्यक्ति का वह आन्तरिक गुण है जो उसे विकास की ओर ले जाते हुए उसके जीवन को संरक्षित रखते हैं। इसी क्रम में ड़ॉ0 शोभा दीक्षित अपने ग्रन्थ 'साहित्य में जीवन मूल्य' में लिखती है कि '' जीवन में व्यक्ति की आत्म संतुष्टि जिन गुणों के द्वारा होती है वे गुण ही जीवन मूल्य है।'' अतः स्पष्ट है कि जीवन–मूल्य कोई बाहरी वस्तु नहीं है, व्यक्ति की अन्तरात्मा का आन्तरिक गुण है, जिसे दूसरे शब्दों में हम सद्गुण भी कहते हैं।

प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने बड़े संक्षिप्त और सारगर्भित शब्दों में जीवन–मूल्य की परिभाषा दी है। व्यक्ति के सद्गुण और सद्व्यवहार ही जीवन मूल्य हैं।2 भारतीय संस्कृति का मूल आधार संस्कृत है। हमारे समाज के निर्माण में संस्कृत का मूल योगदान है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृत वरदान स्वरूप है। संस्कृत साहित्य की मुख्य विशेषता है कि वह मानव को कल्याण की ओर अग्रसर करता है। संकीर्ण स्वार्थ को मानव जीवन का चरम पुरूषार्थ मानने वाले पाश्चात्य देशों के साहित्य में जो एकांगिकता विद्यमान है, वह संस्कृत साहित्य को स्पर्श तक नहीं करती। संस्कृत साहित्य सर्वांगीण है। पुरूषार्थ चतुष्टय का संस्कृत साहित्य में विवेचन हुआ है। संस्कृत नाट्य जगत में दृष्य काव्य लिखने वाले महाकवि भास सबसे प्राचीन कवि हैं। उनके नाटकों में वर्णित आदर्शपात्र आधुनिक समय में भी प्रासंगिक हैं। भास ने अपने दो नाटकों में राम को नायक बनाया है।

राम का चरित्र न केवल भारतीयों द्वारा अपितु विश्व के समस्त मानवों द्वारा अनुकरणीय है तभी तो काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने भी कहा है –

''रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत्''3

–काव्यप्र0 प्रथम उल्लासा

मानव मूल्यों के स्वरूप–सामान्यतः जीवन मूल्य व्यक्ति का वह आन्तरिक गुण है, जो उसे विकास की ओर ले जाते हुए उसके जीवन को संरक्षित रखते हैं।

जीवन में व्यक्ति की आत्मसन्तुष्टि जिन गुणों के द्वारा होती है वे ही गुण मानव जीवन मूल्य है। अतः स्पष्ट है कि जीवन मूल्य कोई बाहरी वस्तु नहीं है, अपितु व्यक्ति की अन्तरात्मा का आन्तरिक गुण है, जिसे दूसरे शब्दों में हम सद्गुण भी कहते हैं।

मनुस्मृति में भगवान मनु ने लिखा है कि धर्म ही मूल्य है। धर्म अर्थात् सच्चाई का मार्ग –

धृति क्षमादयो अस्तेयं शौच मिन्द्रियम् निग्रहः।
धी विद्या सत्यमक्रोधो दथकम् धर्म लक्षणमें।4

विभिन्न मानवीय मूल्य निम्न प्रकार है – समाजपरक मूल्यों में समाज में सुख, शान्ति, ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति के लिए व्यक्ति जिन सद्गुणों के माध्यम से समाज का हित चिन्तन करता है – वे सद्गुण ही जीवन–मूल्य कहलाते हैं।

प्रत्येक चिन्तनशील कवि और कलाकार अपनी कृति के मूल में मानवता के कल्याण का भाव लेकर ही कृति की संरक्षना करता है। उसकी कृति का मूल उद्देश्य मानव जाति का कल्याण है। सम्पूर्ण मानव कल्याण का भाव ही समाज परक मानव मूल्य है।

डॉ0 एच0एम0 हडसन के अनुसार – ''Value may the defined as a conception or standard cultural or merely personal by which things are compared and approved and disapproved relative to one another held to be relatively desirable or undesirable more meritorious or less more or less correct."

प्रोफेसर ई0डी0 चाल्स के अनुसार – ''Value is a conception, explicit or implicit or distinctive of an individual or characteristic of a group of the desirable which influenced the relationship from a variable modes, mesans and of action."

अतः स्पष्ट है कि जीवन सुख, शान्ति, ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति

के लिए व्यक्ति जिन सद्‌गुणों के माध्यम से समाज का हित चिन्तन करता है – वे सद्‌गुण ही जीवन–मूल्य कहलाते हैं।

महाकवि भास के नाटकों में सभी पात्रों का विनियोजन सार्थकतापूर्ण है। नाटककार ने समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उन्होंने समुदाचार सम्बन्धी पद्धति का दिग्दर्शन कराया है। कवि का कौटुम्बिक आदर्श तो अनुत्तम ही है। सभी अवसरों पर किसी को कैसे व्यवहार करना चाहिए यह भास से सीखने योग्य है कोई भी रचनाकार सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति किए बिना सफलता नहीं पाता। संस्कृत साहित्य ने प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को सामाजिक मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है। साहित्यकार मानव जीवन के किसी न किसी सामाजिक मूलय से सदैव जुड़ा रहता है। जीवन को अलौकि करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है।

सामाजिक मूल्यों की स्थापना में समन्वयात्मक अनुभूति, सांस्कृतिक चेतना विश्व अनुभूति की प्रमुखता रहती है। महाकवि भास ने अपने संस्कृत साहित्य में उन सामाजिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की समाज का नैतिक आधार दृढ़ होता है।

सामाजिक जीवन मूल्य हमारी समाज का नैतिक आधार दृढ़ होता है। सामाजिक जीवन मूल्य हमारे समाज में व्यक्तियों के चरित्र निर्माण और कुशल नागरिक बनने की प्रेरणा देते हैं। महाकवि ने अपने नाटकों के माध्यम से इन सभी विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत किया हैं।

महाकवि भास में प्रमिता नाटक में मानवीय मूल्यों को कवि ने अपने पात्रों के द्वारा समाज को एक आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे – राम की चरित्रिक विशेषताओं के द्वारा धर्म के प्रति तथा अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावन रहना चाहिए राम ने धर्म के कारणराज्य को त्यागना और अपनी पत्नी सीता का भी परित्याग करना समस्त संसार को उपदेशित करता है। राम ने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपने भाई भरत को राज्य भार सौंपना। यहीं सभी घटनाएँ हमारे समाज में एक पुत्र और एक भाई के कर्तव्यों को प्रदर्शित करता है।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम्।
यदि ते ऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम्।।5

इस प्रकार राम लक्ष्मण से कहते है राज्य चाहे भरत को मिले या राम को तुम्हारे लिए तो बाते समान है। इस प्रकार हमें अपने छोटो के प्रति सदैव मृदुवचन बोलने चाहिए और उनकी हमें रक्षा करनी चाहिए।

इसी प्रकार आगे भी कहा है कि हमें अपने आत्मीयजनों से प्रेम करना चाहिए उनको कभी हृदयाघात नहीं करना चाहिए क्योंकि आत्मीयजनों का दुःख हृदय को विदीर्ण करने वाला होता है जैसे :— शरीरेऽरिः प्रहरति हृदयें स्वजनस्तथा।6 (प्रतिमा 1/12)

महाकवि भास ने नाटक में भी सुन्दर चरित्र—चित्रण के द्वारा मानवीय मूल्यों का प्रयोग किया है। बालि ने अपने भाई की पत्नी पर अपना अधिकार दिखाया और उसके प्रति अपनी गन्दी नज़र ड़ाली। जिसे सुनकर भगवान राम ने उसे उसके कर्म के अनुसार दण्ड दिया और उसका वध किया।

महाकवि भास ने अपने पचरात्रम् नाटक में जीवन मूल्य के रूप में पाण्डवों का आदर्श चित्रण प्रस्तुत किया है। दुर्योधन के रूप में दुष्ट चरित्र का भी वर्णन किया गया। इस नाटक में धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से शर्त रखी कि पाँच रात्रि में पाण्डवों को खोज लिया तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जायेगा। धृतराष्ट्र के खोजने पर पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया जाता इस प्रकार इस नाटक में न्याय को दर्शाया गया है।

महाकवि भाास ने अपने उरूभंगम् नाटक में जीवन मूल्यों के रूप में भीम के द्वारा दुर्योधन को दण्ड देना यह प्रदर्शित करता है। कि स्त्रियों का प्रतिकार नहीं करना चाहिए। भीम ने द्रोपदी के अपमान का बदला दुर्योधन की जंघा फाड़ कर लिया। इसप्रकार हमें दूसरों की स्त्रियों को अपमानित नहीं करना चाहिए।

महाकवि भास ने बालचरित नाटक में जीवन मूल्य के पात्र कृष्ण के रूप में प्रस्तुत किया। कृष्ण ने दुष्ट कंस का वध किया और लोगों को उसके भय से मुक्त किया।

दूतकाव्य, संस्कृत काव्य की एक विषिष्ट परम्परा है। जिसका आरम्भ भास तथा घटकर्पर के काव्यों में और महाकवि कालिदास के मेघदूत में मिलता है। इससे दूत की परम्परा का वर्णन कवि ने बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से किया है जो मानव जीवन के लिए एक अलौकिक इकाई के रूप में प्राप्त होता है जैसे कहा जाता है कि यदि कोई संदेशपरक वाक्य भेजने की कल्पना का विचार किया जाता है मानव का संदेश विभिन्न रूपों में दिया जाता है विरही और विरहिणियों अपने—अपने प्रेमपत्रों के प्रति भ्रमर, शुक, चातक आदि पक्षियों के द्वारा ले जाने का विनय करती हुयी मिलती है।

दूतवाक्यम् में कवि भास ने वासुदेव अर्थात् श्री कृष्ण के माध्यम से

समाज के लिए एक उपदेशित सत्य मार्ग प्रस्तुत किया :–

पुण्य स०यसम्प्राप्तामधिगम्य नशपश्रियम्।
व०चयेद् यः सुहृद्बुन्धून् से भवेद् विफलश्रमः।।7

इसमें श्री कृष्ण दुर्योधन को पाण्डवों के प्रति अभद्र व्यवहार करने से रोकते हुये कहते है कि पुण्य के संचय से प्राप्त राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर जो मित्र बन्धु बान्धवों को ठगता है वह विफल प्रयत्न वाला होता है अर्थात् उसका कल्याण नहीं होता इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति दूसरे के अहित के लिए हमें रोकती है और हमारी भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण मानव समाज के लिए हित की कामना करती है।

महाकवि भास ने चारूदत्ता के नाटक में निर्धनता का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें चारूदत्त के द्वारा दान की गयी सम्पत्ति के विषय में भी बताया गया है और कवि भर्तृहरि ने भी कहा कि दान के द्वारा दरिद्र होना भी श्रेष्ट है। चारूदत्तम् में निर्धन होते हुए भी चारूदत्त ने सत्यता का मार्ग नहीं छोड़ा। कवि ने ईमानदारी की बात का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। चारूदत्त ने वसन्तसेना के गहने चोरी हो जाने पर अपनी पत्नी के गहने दे दिये। बसन्तसेना वेष्या होते हुये भी श्रेष्ठ पात्र है।

इस नाटक में महाकवि भासने अविरहनीय प्रेम और पुनर्मिलन की कहानी को वर्णित किया है, इसमें कवि ने स्वप्न में आयी एक घटना के आधार पर इस नाटक का नामकरण किया। उद्यन के द्वारा स्वप्न में वासदत्ता को देखता है स्वप्न की घटना मानव के मौलिक जीवन को उत्प्रेरित करने वाली होती है। अतः मानव के जीवन में इस नाटक विशेष महत्व है।

महाकवि भास ने कर्णभारम् में दान की विशेष महत्ता पर प्रकाश ड़ाला है जो कि इन्द्र द्वारा छल प्रपन्च से कर्ण को छलना। इसमें इन्द्र कर्ण को छलने के लिए ब्राहनव वेष में आना और कर्ण से कवच और कुण्डलों को दान के रूप में माँग लेना।

अतः कवि ने कर्ण की अद्भूत दानशीलता को व्यक्त किया इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति कर्मफल में तथा धार्मिक अनुष्ठानों जैसे– यज्ञ आदि के द्वारा मानव मूल्य के रूप में प्रस्तुत करती है इसी के भाव को महाकवि भास ने कर्ण भार में कहा है :–

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्

सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दप्तं च तथैव निष्ठति।।8

(कर्णभारम् 1/12)

शिक्षा आदि समय रहते हुए नष्ट हो जाती है किन्तु किया हुआ यज्ञ और दान हमेशा फल देने वाले होते है।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मानवीय मूल्य आचरण संहिता में निहित है जो वैयक्तिक विकास के तथा हमारे समाज के मूलाधार कहे जा सकते हैं। यह मानव के विवेक में स्थित स्वतः प्रेरित तत्व हैं जो प्रस्फुटन, उन्नयन व क्रियान्वित होकर सार्वदेशिक व सार्वभौमिक बन जाते हैं। मानवीय मूल्य एक आदर्शनिष्ठ सामाजिक अवधारणा है, कर्तव्य की आन्तरिक भावना है। आचरण के प्रतिमानों का समन्वित रूप है। यह आचरण संहिता मानव के सर्वागीण विकास हेतु अनिवार्य रूप से प्रतिपादित की गयी हैं। यह मानवीय मूल्य ही मनुष्य में नैतिकता का समावेश करते हैं। अध्यात्मिकता को विकसित करते हैं।

वस्तुतः हम मानवीय मूल्यों के द्वारा मन, वचन, कर्म, ज्ञान, विवेक समत्व की भावनावस सत्संगति मैत्री तथ परोपकार आदि भावनाओं को विकसित कर एक सुदृढ़, उन्नतिशील समाज की कल्पना करना चाहते हैं और यही प्रस्तुत शोध–पत्र की प्रासंगिकता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

साहित्य में जीवन मूल्य ड़ॉ0 शोभा दीक्षित पृष्ठ सं0–58
संस्कृति के चार अध्याय रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ सं0–372
काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास – श्री निवासी शास्त्री
मनुस्मृति भगवान मनु पृष्ठ सं0–21
प्रतिमा नाटकम् चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2016
प्रतिमा नाटकम् 1/12 चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2016
दूतवाक्यम – चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2008 श्लोक सं0–25
कर्णभारम् – चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी संस्करण–2017
भासकृत चारूदत्तम् – चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

अन्य

1. www.google.com

◆◆◆

भक्तिकालीन साहित्य में मानवीय मूल्य

डॉ0 अरुण कुमार[1] एवं डॉ० निशात बानो[2]
[1]असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, (उ०प्र०), [2]एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, रामपुर (उ०प्र०)

प्रस्तावना

मनुष्य सृष्टि का सिरमौर है। विश्व के समस्त प्राणी में संवेदनाएँ सन्निहित हैं किन्तु वैचारिक एवं विष्लेषणात्मक संवेदनाएँ केवल मनुष्य में ही हैं। संवेदना से युक्त चिन्तन मूल्यों की स्थापना करते हैं। समय और परिवेष के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन सम्भाव्य है। जो मूल्य मनुष्य के कल्याणार्थ विहित किये जाते हैं यदि वे समय और परिवेश के मानकों पर खरे न उतरें और क्षीण होने लगें तो उन्हें पुनर्व्याख्यायित करके नये स्वरूप में गढ़ना पड़ता है। कुछ मूल्य सार्वकालिक एवं सर्वजनीन होते हैं तो कुछ परिवर्तनीय होते हैं। कुछ मूल्य एक व्यक्ति, समाज व धर्म के लिये समय व परिवेष के अनुकूल सार्थक व कल्याणकारी होते हैं तो कुछ मूल्य दूसरे व्यक्ति, समाज व धर्म के लिए परिवेशानुकूल नहीं होते। कुछ मूल्य ऐसे होते हैं जो शाष्वत एवं सर्वहितकारी होते हैं। किसी कवि व लेखक के साहित्य की सार्थकता उसी अनुपात में होती है जिस अनुपात में उसमें मानवीय मूल्य सन्निहित होते हैं। समस्त हिन्दी वाङ्0मय में भक्तिकालीन साहित्य ही सात्विक मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं संरक्षण की पुरजोर वकालत करता है। इसमें सन्निहित मूल्य केवल मानवीय मूल्यों के संरक्षण की ही बात नहीं करते अपितु प्राणिमात्र के जीवन मूल्यों के संरक्षण की बात करते हैं। सृष्टि का सबसे बुद्धिमान, सचेत एवं विवेकशील प्राणी होने के कारण मूल्यों के संरक्षण का दायित्व भी मनुष्य का ही है। यदि मनुष्य के मन और मस्तिष्क से मूल्य समाप्त हो जाय तो वह बिना सींग और पूछ के पशु के समान होगा।

यदि हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्य को मानवीय मूल्यों के संरक्षण की आचारसंहिता कहा जाय तो अतिषयोक्ति न होगा। हिन्दी वाङ्मय का भव्य प्रासाद भक्तिकालीन साहित्य से ही निर्मित है और भक्तिकालीन साहित्य की नींव उसमें अन्तर्निहित मानवीय मूल्यों पर आश्रित है।

मानवीय मूल्य समस्त मानव की आचारसंहिता के आधार हैं। सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, भौतिक, सौन्दर्यात्मक, एवं मनोवैज्ञानिक मूल्यों का निर्माता मनुष्य ही है। यदि इन मूल्यों में अधिकार, कर्तव्य, न्याय, ईमानदारी, सत्य, प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व, दया, करुणा, ममता आदि का सौन्दर्य न हो तो वे मूल्य अपनी महत्ता, श्रेष्ठता, सार्थकता और आदर्श को तिरोहित कर देंगे। वे अक्षुण्ण कदापि न रहेंगे। भक्तिकालीन साहित्य इन्हीं गुणों से सम्पृक्त होकर शाश्वत मानवीय मूल्यों का उद्घाटन करता है।

भक्तिकालीन साहित्य में मानवीय मूल्य

भक्ति की अजश्र पीयुष–धारा में प्रवाहित होकर ये मूल्य मानवता को अमर बनाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, रसखान की वाणी लोगों के मन–मस्तिष्क को अभिसिंचित करती है, हृदय में रस का संचार करती है, अधिभौतिकता से आध्यात्मिकता के समुन्नत शिखर पर प्रतिष्ठित करने का सद्प्रयास करती है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य में मानवीय गुणों को विकसित कर उसे सच्चा मनुष्य बनने के योग्य बनाती है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, बन्धुत्व, दया, क्षमा, त्याग, शील, विनय, सेवा, समर्पण, संयम, सदाचार आदि ऐसे सार्वभौमिक मूल्य हैं जिनका भक्ति साहित्य में सुन्दर निदर्शन है–

सत्य

सांसारिक विषय वासनाओं के वशीभूत मानव अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए नाना प्रकार के झूठ व असत्य का सहारा लेता है। कबीर कहते हैं कि सत्य वही है जो स्थिर रहता है, परिवर्तनशील पदार्थ तो असत्य ही होते हैं। वे कहते हैं–मनुष्य लोक–लज्जा के भय से असत्य का सहारा लेता है। इस तरह का आचरण करने वाला व्यक्ति स्वर्ण रूपी परमात्मा को त्यागकर शीषा रूपी असत्य को अपना रहा है–

'कबीर लज्जा लोक की , सुमिरै नाहीं सॉच।
जानि बूझि जिनि कंचन तजै, काठा पकड़ै काच'।।[1]

इस संसार में सत्य के बराबर कोई तपस्या नहीं है और झूठ के समान कोई पाप नहीं है, सत्य बोलने वाले के हृदय में ईश्वर का वास होता है–

'सॉच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सॉंच है, ताके हिरदे आप'।।[2]

गोस्वामी तुलसीदास भी सत्य को सार्वभौम मूल्य मानते हैं। रामचरित मानस में राम–रावण संघर्ष ही असत्य पर सत्य की विजय का सन्देश है। वे स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि सत्य के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। राम सत्य की व्याख्या करते हुए सुमन्त्र से कहते हैं कि षिवि, दधीच, हरिष्चन्द्र आदि पूर्वजों ने सत्य की रक्षा के लिए अपार कष्ट सहे। राजा रन्तिदेव और राजा बलि कभी सत्य से विमुख नहीं हुए। मैं कभी रघुकुल की सत्यवादी परम्परा का परित्याग नहीं करूँगा।

'धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।
मैं सोइ धरमु सुलभ भरि पावा। तजे तिहूँ पुर अज जसु पावा'।।[3]

तुलसी सत्य को धर्म का आधार मानते हैं। इसकी रक्षा के लिए दशरथ अपने प्राण त्याग देते हैं। वे सत्य को समस्त पुण्यों का मूल मानते हैं–

'नहिं असत्य सम पातक पूजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गूजा।।
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मुनि गाए'।।[4]

चित्रकूट सभा में राम अपने छोटे भाई भरत को समझाते हुए कहते हैं कि पिता ने जिस सत्य वचन की रक्षा के लिये मुझे त्याग दिया और अपने प्रेम का निर्वाह किया अब उसी का अनुकरण करना हमारा धर्म है।

सत्य की प्रतिस्थापना तुलसी और कबीर दोनों ही करते हैं और दोनों ही सत्य और ईश्वर में ऐक्य स्थापित करते हैं, अन्तर केवल यह है कि कबीर का सत्य निर्गुण निराकार राम हैं तो तुलसी का सत्य विष्णु के अवतारी दशरथ पुत्र राम हैं। तुलसी ने श्रीराम को सत्य प्रतिज्ञ के रूप स्थापित किया है–

'कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्य धाम प्रभु दीनदयाला'।।[5]

प्रेम

प्रेम हृदय की एक उच्च रागात्मक भावना है। इसके द्वारा शत्रु का भी हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। प्रेम मनुष्य को समस्त प्राणियों के प्रति सहज भाव से संवेदनशील बनाता है एवं सामाजिक होने का बोध कराता है। तुलसीदास ने मानस प्रेम के उदात्त स्वरूप की स्थापना की है। दशरथ अपने पुत्र राम के प्रेम में प्राण त्याग देते हैं, तो राम भरत के प्रेम में राज्य का परित्याग कर देते हैं। लक्ष्मण भ्रातृ प्रेम के वषीभूत हो 14 वर्ष वनवास का सहर्ष वरण करते हैं तुलसीदास के अनुसार प्रेम से बढ़कर कोई

मूल्य नहीं है। वे कहते हैं–प्रभु राम को केवल प्रेम प्यारा है–

'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा'।।[6]

जल और मछली के मध्य ऐसा प्रेम है कि जल के अभाव में मछली तड़प–तड़पकर अपना प्राण न्यौछावर कर देती है। जिस प्रकार मछली का जीवन जल के अधीन है उसी प्रकार भरत का जीवन भी प्रभु श्रीराम के अधीन है–

'जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना'।।[7]

दोनों भाई मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से परे और प्रेम से परिपूर्ण हैं। उनका यह प्रेम अगम्य है, उनके प्रेम की गहराई को ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भी नहीं जान सकते –

'अगम सनेह भरत रघुबर को। जहॅ न जाई मनु विधि हरि हर को' ।।[8]

सन्त कबीर भी प्रेम के बिना जीवन को व्यर्थ मानते हैं–

'जा घटि प्रेम न संचरै, सो घटि जानि मसान।
जैसे खाल लुहार की, सॉस लेत बिनु प्रान' ।।[9]

वे कहते हैं कि प्रेम के लिये अहं का त्याग आवश्यक है। इसे न तो खेत में उपजाया जा सकता है और न ही बाज़ार से खरीदा जा सकता है।–

'प्रेम न बाड़ी ऊपजै , प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहिं रुचै, सीस देइ लै जाय'।।[10]

सन्त कबीर प्रेम को उस ऊॅचाई पर ले जाते हैं जहॉ से सृष्टि में समरसता का संचार होता है। केवल दैहिक मिलन, भोग एवं आकर्षण ही प्रेम नहीं हैं अपितु यह तादाम्य बोध है–

'सोइ मिलैं जे प्रीति में, और मिलै सब कोइ।
मन सो मन सा न मिलै, देह मिलै का होय'।।[11]

मित्रता

सच्चे मित्र के अभाव में जीवन अधूरा है। मनुष्य को केवल मनुष्य से ही नहीं अपितु समस्त प्राणियों से मैत्रीभाव रखना चाहिए। तुलसीदास जी ने मानस में जिस मित्रता के आदर्श को प्रस्तुत किया है वह कदाचित् विश्व के किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं है। वे जाति–पाति, छल–कपट,

को त्यागकर सच्ची मित्रता की बात करते हैं, राम–निषाद, राम–सुग्रीव, राम–विभीषण की मित्रता का उदाहरण आधुनिक समाज के लिये अनुकरणीय है। राम सुग्रीव की दशा को देखकर एक मित्र होने के कारण अत्यन्त दुःखी होते हैं, वे कहते हैं – जो लोग मित्र के दुःख को देखकर दुःखी नहीं होते हैं उन्हें देखने से भी पाप लगता है। अपने पर्वत समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को पर्वत के समान समझना चाहिए। जिनका स्वभाव ऐसा नहीं है उन्हें मित्र कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। मित्र का कर्तव्य है कि वह मित्र को गलत मार्ग पर चलने से रोके और सही मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करे–

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुःख रज मेरु समाना।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा।।
देत लेत मन संक न करई। बल अनुसार सदा हित करई ।।
विपति काल करि सतगुन नेहा। श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा'।।[12]

कवि नरोत्तमदास द्वारा रचित 'सुदामा चरित' में वर्णित कृष्ण और सुदामा की मित्रता सर्वविदित है–

'ऐसे बेहाल बिवाइन सों पद कंटक जाल लगे पुनि जोये,
हाय महा दुःख पाये सखा तुम, आये इतै न कितै दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिके करुना निधि रोये,
पानि परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोये'।।

मित्रता की ऐसी मिषाल कि दो मुट्ठी कोदो–सवॉ के चावल के बदले दो लोक का राज्य दान कर दिया जाय, विश्व के किसी साहित्य में नहीं मिलता। ये उदाहरण समाज में मैत्री का मूल्य स्थापित करने, समाज को नई दिशा देने एवं स्वार्थ रहित मित्रता का निर्वहन करने हेतु जन–जन को सदैव प्रेरित करते रहेंगे।

मधुर वचन

सन्त कबीर सभी से प्रेम पूर्वक रहने एवं सोहार्द्र बनाये रखने के लिये मीठे वचनों को प्रमुख मानते हैं। शब्द यदि प्रिय हैं तो यह ओषधि के समान होते हैं और यदि कटु हैं तो यह कंटक के समान हृदय को बेधता है–

'मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर ।

श्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर'।।[13]

वे कहते हैं कि जिन्होंने जिह्वा को वष में कर लिया है उसने सारे संसार को वश में कर लिया है–

'जिभ्या जिन वस में करि, तिन वस कर्‌यौ जहान।
नहिं तौ अवगुन ऊपजै, कहि सब सन्त सुजान'।[14]

धैर्य

सन्त कबीर ने मनुष्य के लिए धैर्य को अति आवश्यक माना है। यह एक ऐसा मानवीय मूल्य है जो हमें विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करना सिखाता है। धैर्य से काम लेने पर समस्त कार्य सकुशल सम्पन्न किये जा सकते हैं। वे कहते हैं–मनुष्य को धैर्य धारण करना चाहिये। इसी से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। माली चाहे सैकड़ों घड़े पानी पौधे में प्रतिदिन क्यों न ड़ाले किन्तु उनमें फूल तो समय पर ही आते हैं–

'धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रितु आये फल होय'।।[15]

धैर्य और विश्वास ऐसे मूल्य हैं जिनसे दूसरों की मनः स्थिति को समझा जा सकता है–

धीरज बुद्धि तब जानिये, समुझे सबकी रीति।
उनका अवगुण आपमें, कबहुॅ न लावै मीत ।।[16]

परोपकार

मानवीय मूल्यों में परोपकार का बहुत महत्त्व है। यह एक ऐसी सात्विक सद्‌वृत्ति है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है, और उसे 'स्व' से निकालकर सामाजिक बनाती है। सात्विक प्रवृत्ति और परोपकार की भावना से युक्त मनुष्य स्वयं कितना भी कष्ट का सहन क्यों न कर ले किन्तु वह दूसरों को दुःखी नहीं देख सकता–

रामचरित मानस में जटायू सीता की रक्षा के लिये अपने प्राण त्याग देता है, तब भगवान राम उसे परमगति प्राप्त कर परमधाम जाने हेतु कहते हैं–

'परहित बस जिन्हके मनमाही। तिन्ह कहुॅ जग कछु दुर्लभ नाहीं।।
तनु तजि तात जाहुॅ मम धामा। देहु काह तुम पूरन कामा'।।[17]

वे कहते हैं परोपकार के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के समान कोई दूसरा अधर्म नहीं है–

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परा पीड़ा सम नहिं अधमाई'।।[18]

सन्त कवि भी 'स्व' को त्याग कर 'पर' की बात करते हैं। सन्तों का जीवन ही दूसरों के लिये समर्पित होता है। परोपकार तो सन्तों का सबसे बड़ा आभूषण है, कबीर कहते हैं–

'वृक्ष कबहुॅ नहिं फल भखै, नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर'।।[19]

वे कहते हैं कि मनुष्य के जीवन की सार्थकता ही परोपकार करने में है–

'देह खेह ह्वै जायगी, फिर कौन कहेगा देह।
निष्चय कर उपकार ही, जीवन का फल एह'।।[20]

सेवाभाव

सेवाभाव वह मानवीय मूल्य है जो मानव की परिभाषा को सार्थक सिद्ध करता है। सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट संरचना होने के कारण सृष्टि के संरक्षण का सबसे बड़ा दायित्व मनुष्य का ही है। केवल जीव–जन्तु ही नहीं अपितु समस्त प्रकृति की सुरक्षा करना मानव का प्रमुख कर्तव्य है। यह कर्तव्य केवल सेवाभाव एवं परोपकार द्वारा ही सम्भव है। तुलसीदास कहते हैं कि बिना सेव्य भाव के मनुष्य भवसागर पार नहीं हो सकता–

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि'।

यह सेवा चाहे ईश्वर की हो अथवा असहाय जीव–जन्तु की।

दया

दया वह मानव मूल्य है जो अपना–पराया, शत्रु–मित्र, लोभ–मोह, भाई–बन्धु आदि के मोह को त्यागकर दुःखी लोगों के परस्पर सहायतार्थ प्रेरित करता है। मनुष्य को दीन–दुःखी एवं कष्ट में पड़े हुए लोगों के प्रति दया का भाव रखकर उनकी सहायता करना चाहिए। दया करने वाला ही सन्त या सज्जन कहा जा सकता है। दयालु व्यक्ति का हृदय इतना कोमल होता है कि उससे किसी दूसरे का कष्ट नहीं देखा जाता। महात्मा तुलसीदास ने दया को सबसे बड़ा धर्म माना है–

'कोमल चित्त दीनन्ह पर दाया। मन क्रम वच भगति आमाया'।[12]

उन्होंने दया को धर्म का मूल माना है। दया के अभाव में धर्म व्यर्थ है। कितना भी बड़ा ज्ञानी पुरुष हो दया के अभाव में वह सच्चा मनुष्य बन ही नहीं सकता–

'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लगि घट में प्रान'।।

दया एक ऐसा दैवीय गुण है जो सभी धर्मों की रूप रेखा तय करती है, सन्त कबीर भी कहते है–

'दया कौन पर कीजिए, का पर निर्दय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय'।।[22]

दान

दान एक ऐसा कर्म है जिसे करने से महान पुण्य की प्राप्ति होती है। शुद्ध हृदय से किया गया दान सदैव परम सुखदायी होता है। इसे देने और लेने वाले दोनों ही अलौकिक सुख की अनुभूति करते हैं। तुलसी ने रामचरित मानस में कहा है कि राम के समान कोई दूसरा दानी नहीं है, जिन्होंने अपने सखा विभीषण को वह धन, राज्य और लंका समस्त वैभव अत्यन्त संकोच करते हुए दान कर दिया जिसे रावण ने भगवान शंकर से दस शीष की बलि देकर प्राप्त किया था।–

'जो सम्पत्ति सिव रावनहिं, दीन्हिं दिये दस माथ।
सोइ सम्पत्ति विभीषनहिं, सकुचि दीन्हिं रघुनाथ'।।[23]

क्षमा

क्षमा वह सार्वभौमिक मूल्य है जो संवेदनशील मनुष्य के हृदय में स्वतः ही संचरित होता है। सन्तों एवं सज्जनों का यह स्वाभाविक गुण होता है। यह मनुष्य की भावात्मक उच्चता का द्योतक है। क्षमा क्रोध का विनाश करने वाला सबसे बड़ा हथियार है। क्षमाशील व्यक्ति की बराबरी कोई नहीं कर सकता–

'क्षमा क्रोध का क्षय करे जौ काहू पर होय।
कहै कबीर ता दास कॅू, गंजि सकै न कोय'।।[24]

क्षमाशील प्राणी या सज्जन व्यक्ति धरती की तरह दुर्जन के

समस्त प्रहार या कठोर वाणी को सहन कर लेता है–

'खोद–खाद धरती सहै, काट–कूट वनराय।
कुटिल वचन साधू सहै, और सहा न जाय'।।[25]

जहॉ दया है वहीं धर्म है एवं लोभ ही पाप का मूल है, क्रोध काल की जड़ है, जहॉ क्षमा है वहॉ सत्य का वास है–

'जहॉ दया तहॅ धर्म है, जहॉ लोभ तहॅ पाप।
जहॉ क्रोध तहॅ काल है, जहॉ छिमा तहॅ आप'।।[26]

विनय

विनयशीलता एक सार्वभौमिक मूल्य है, जो मनुष्य को उच्च्य शिखर पर प्रतिष्ठित करती है। तुलसी के राम आदर्शवादी हैं, शील और विनय के गुणों से युक्त हैं। समर्थ होते हुए भी वे समुद्र से तीन दिन तक रास्ता के लिये अनुनय–विनय करते हैं। राजधर्म के लिए पत्नी का त्याग करते हैं और अपनी जनता के लिए वे सर्वस्व त्याकर भी शील एवं विनय से युक्त रहते हैं।

संतोष

संतोष मनुष्य को नैतिक बनाता है। इससे मनुष्य को अपार सुख का अनुभव होता है। वर्तमान महत्त्वाकांक्षी मनुष्य धन, यष एवं वैभव की आकांक्षा में अपने सहज मानवीय मूल्यों को त्यागकर अनेक प्रकार के बुरे कर्म करता है। वह लोभ, लालच और मोह के वशीभूत होकर झूठ, दम्भ, धन–सम्पदा आदि की ओर आकृष्ट होता है। सन्त कहते हैं कि समस्त प्रकार के धन–वैभव व्यर्थ हैं यदि मनुष्य के अन्दर सन्तोष रूपी मणि न हो। सन्तोष के सम्मुख संसार का समस्त धन–वैभव व्यर्थ है–

'गाधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान' ।।[27]

वे कहते हैं सन्तुष्ट व्यक्ति ही शहंषाह होता है–

'चाह गई, चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह'।।[28]

श्रम

सृष्टि एवं समाज में सन्तुलन स्थापित करने के लिए सभी व्यक्ति

को अपने–अपने हिस्से का श्रम करना अनिवार्य है। इससे मनुष्य का चित्त शुद्ध एवं स्वस्थ रहता है। जो मनुष्य श्रमशील होता है वही आत्मनिर्भर हो सकता है। आत्मनिर्भरता मनुष्य को परम सुख प्रदान करती है। कबीर गृह त्यागकर और पारिवारिक जिम्मेदारियों से भागकर संन्यास धारण करने वालों को आड़े हाथों लेते हैं। सच्चा मनुष्य अथवा सन्त वही है जो गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ साधना में तल्लीन रहता है। जो अपने पारिवारिक दायित्वों से विमुख होकर पलायन करता है वह पितृ–ऋण, मातृ–ऋण समाज के ऋण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता–

'अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै।
घर में जोग, भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै'।।[29]

उपसंहार

उक्त के आलोक में कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य में निहित मानवीय मूल्य सार्वभौमिक एवं सर्वजनीन हैं। मूल्य किसी जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, अमीर, गरीब, क्षेत्र, भाषा, से परे हैं। ये न केवल मनुष्य अपितु सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिए कल्याणकारी हैं। यदि मनुष्य इन सार्वभौमिक मुल्यों को ईमानदारी से धारित करे तो सृष्टि में सौन्दर्य की कमी नहीं रहेगी। सत्य, प्रेम, मित्रता, मधुर वचन, धैर्य, परोपकार, दया, दान, सेवाभाव, विनय, क्षमा, संतोष, श्रम आदि मानवीय मूल्यों से सृष्टि में सुख, समृद्धि, सौहार्द्र एवं प्रसन्नता की स्थापना की जा सकती है। भक्ति साहित्य में मानवीय मूल्यों के प्रति जो प्रतिबद्धता निहित है वह न केवल सराहनीय है अपितु स्तुत्य भी है। इसीलिए भक्तिकालीन साहित्य हिन्दी वाङ्मय की अनन्यतम निधि है।

सन्दर्भ–स्रोत

1 श्री युगलानन्द, सत्य कबीर की साखी, अंग–14, पृष्ठ–142, प्रकाशन–खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संवत् 2028, द्वारा सन्त कबीर और उनका दर्शन, ड़ॉ0 रामाश्रयदास ब्रह्मचारी, पृष्ठ 199।
वही, पृष्ठ–198 ।
2 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– अयोध्याकाण्ड, 94/2,3 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।
वही, 27/3।
3 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– उत्तरकाण्ड, 121/3 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

4 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– अयोध्याकाण्ड, 135/1 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

5 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– अयोध्याकाण्ड, 233/2 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

6 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– अयोध्याकाण्ड, 240/3 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

7 'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय– कबीर वचनावली, प्रेम–107, पृष्ठ–103, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

वही, प्रेम–103, पृष्ठ–103।

वही, प्रेम–120, पृष्ठ–104।

8 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– किष्कन्धाकाण्ड, 6/1,2,3 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

9 शास्त्री, गंगाधर, सम्पादक, बीजक (कबीर चौरा पाठ), साखी–103, पृष्ठ–161, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र वाराणसी।

वही, अंग–63, पृष्ठ–299।

वही, अंग–2, पृष्ठ–630।

वही, अंग–8, पृष्ठ–640।

10 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– अरण्यकाण्ड, 30/415 गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

11 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– उत्तरकाण्ड, 40/1, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

12 हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय– कबीर वचनावली, सन्त जन–331, पृष्ठ–122, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

13 दास, ड़ॉ0 श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, साखी–उपदेश कौ अंग–16, पृष्ठ–272,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

14 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– उत्तरकाण्ड, 37/21, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

15 'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय– कबीर वचनावली, दया–598, पृष्ठ–145, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

16 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस– सुन्दरकाण्ड, दोहा–49, गीता प्रेस, गोरखपुर, उ0प्र0।

17 सत्य कबीर की साखी, क्षमा कौ अंग–1, पृष्ठ–137।

18 'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय– कबीर वचनावली, क्षमा–572, पृष्ठ–142, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,।

वही, क्षमा–573, पृष्ठ–142।

19 दास, ड़ॉ0 श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, साखी–संतोष कौ अंग–58, पृष्ठ–143, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

वही, संतोष कौ अंग–61, पृष्ठ–143।

20 'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय– कबीर वचनावली, गृह वैराग्य–111, पृष्ठ–214, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

◆◆◆

पर्यावरण संरक्षण एवं मानवीय मूल्य

डॉ० बृजबाला शर्मा
प्रो. सर्वधर्म शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

पर्यावरण वह आस–पास का वातावरण है जिसमें जीवित प्राणी रहते हैं और कार्य करते हैं। एक जीव द्वारा जीवित रहने के लिए आवश्यक हर चीज पर्यावरण द्वारा प्रदान की जाती है। इसमें शरीरिक, रासायनिक और प्राकृतिक बल शामिल हैं, जो जीवित प्राणियों के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। पर्यावरण समय की शुरुआत से मानव जाति की सेवा कर रहा है, और ऐसा करना जारी रखता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से, प्रकृति मानव जाति के हाथों पीड़ित है, और इसके लिए भुगतान पहले ही शुरु हो गया है। हाल के शोधों ने यह साबित कर दिया है कि अगर इस असंतुलन के कारण सही किए गए तो प्रतिपूर्ति आ जाएगी। इस कयामत को केवल जल्द से जल्द अपने पुनरुद्धार के लिए किए गए कट्टर और प्रभावी उपायों से ही दूर किया जा सकता है।

हमारा पूरा मानव अस्तित्व प्रकृति पर ही निर्भर है। हम सबसे जटिल आदमी द्वारा किए गए निर्माण के लिए एक छोटे पिन के लिए प्रकृति पर निर्भर करते हैं। पर्यावरण हर तरह से हमारी सहायता के लिए आया है। आयुर्वेद, प्राचीन भारत से चिकित्सा की एक प्रथा जो पूरी तरह से प्राकृतिक जड़ी बूटियों पर निर्भर है, पौधों की विभिन्न प्रजातियों की कमी के कारण संकटों का सामना कर रही है। मनुष्यों द्वारा पारिस्थितिक तंत्र में अनावश्यक रुकावट के कारण विभिन्न जानवरों और पौधों की प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं या विलुप्त होने के कगार पर हैं। ओजोन परत जो हमारे वातावरण में प्रवेष करने से सूरज की पराबैंगनी किरणों को रोकती है, पर्यावरण में प्रदूषण पैदा करने वाली हानिकारक गैसों में वृद्धि के कारण नष्ट हो रही है। बढ़ती मानव आबादी की बढ़ती मांगों के कारण प्रदूषण बढ़ रहा है। पहली आग लगने के बाद से मनुष्य ने पर्यावरण को प्रदूषित करना शुरू कर दिया। तब से लेकर अब तक मनुष्य विकास के नाम पर पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। ओजोन रिक्तीकरण और ग्रीनहाउस प्रभाव के संचयी प्रभाव के कारण पृथ्वी पर तापमान लगातार बढ़ रहा है जिसके परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग हो रही है। जिसके परिणामस्वरूप ध्रुवों पर ग्लेशियर पिघल रहे हैं और समुद्र के स्तर में वृद्धि में योगदान दे रहे हैं, मनुष्यों द्वारा बसे कई प्रमुख शहरों में अगले कुछ दशकों में पानी में डूबने की भविष्यवाणी की

जाती है। इस पर्यावरणीय क्षरण के बाद के प्रभाव हमारी कल्पना से परे हैं, समय की आवश्यकता है कि हम अपने पर्यावरण को सर्वोत्तम तरीके से संरक्षित करें, न केवल इसलिए क्योंकि ऐसा करना हमारा नैतिक कर्तव्य हैं, बल्कि इसलिए कि नुकसान से बचे रहने का हमारा एकमात्र तरीका है। औद्योगिकरण के साथ–साथ जनसंख्या की घातीय वृद्धि के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। पर्यावरण के संरक्षण और संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

हमारे भारत देश में भारतीय संविधान 1950 में लागू हुआ था परंतु पूरे तरीके से पर्यावरण संरक्षण से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में भारत सरकार द्वारा ध्यान पर्यावरण संरक्षण पर गया और सरकार ने 1976 में संविधान में संषोधन कर नये अनुच्छेद जोड़े गए थे 48A तथा 51A (G), जोड़े अनुच्छेद 48 सरकार को निर्देष देता है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा करें और उनमें सुधार का काम करें और अनुच्छेद 51A (G) नागरिकों के लिए है कि वह हमारे पर्यावरण की रक्षा करें। पर्यावरण संरक्षण, अधिनियम सन् 1986 में भारत की संसद द्वारा पर्यावरण की रक्षा व संरक्षण के प्रयास में पारित एक अधिनियम है।

विश्व पर्यावरण संरक्षण अधिनियम संयुक्त राष्ट्र में पर्यावरण के लिए मनाया जाता है और यह एक उत्सव की तरह होता है। इस दिन पर्यावरण के संरक्षण के लिए जगह–जगह वृक्षारोपण किया जाता है हमारे देश में अक्सर ऐसा होता है कि कोई भी बड़ा कार्य होता है तो हम उम्मीद करते हैं कि वह सरकार करेगी जैसे पर्यावरण संरक्षण दुर्भाग्य से कुछ लोग मानते हैं कि केवल सरकार और बड़ी कंपनियों को ही पर्यावरण संरक्षण के लिए कुछ करना चाहिए परंतु ऐसा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अगर अपनी अपनी जिम्मेदारी समझे तो सभी प्रकार की कचरा, गंदगी और बढ़ती आबादी के लिए स्वंय उपाय करके पर्यावरण संरक्षण में अपनी भागीदारी दे सकता है, लेकिन प्रगति के नाम पर पर्यावरण को मानव ने ही विकृत करने का प्रयास किया है, पर्यावरण व्यापक शब्द है जिसका सामान्य अर्थ प्रकृति द्वारा प्रदान किया गया समस्त भौतिक और सामाजिक वातावरण इसके अंतर्गत जल, वायु, पेड़, पौधे, पर्वत, प्राकृतिक संपदा सभी पर्यावरण संरक्षण के उपाए में आते हैं। गो ग्रीन (Go Green) कहने के लिए नहीं बल्कि करने में ज्यादा आसान होता है, आज पर्यावरण का ध्यान रखना हर व्यक्ति का कर्तव्य और जिम्मेदारी है।

पर्यावरण संरक्षण के तीन प्रमुख उपाय हैं –

(1) पर्यावरण संरक्षण को हानि पहुंचाने वाली चीजों का कम उपयोग करना चाहिए जैसे प्लास्टिक के बैग इत्यादि।

(2) पुनरावृत्ति करना चाहिए यानी वापस इस्तेमाल करने योग्य सामान को हमें खरीदने चाहिए जिसे हम वापस उपयोग कर सकते है जैसे कांच, कागज, प्लास्टिक और धातु के समान जिसे हम दोबारा उपयोग कर सकते हैं।

(3) कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिसे दोबारा बना कर प्रयोग में ला सकते हैं जैसे शराब की बोतलें, खाली जार इत्यादि ऐसे समान जो हम हमारे घरों में उपयोग करते हैं और फेंक देते हैं लेकिन उन्हें वापस उपयोग में लाने का काम कर सकते हैं उदाहरण के तौर पर अखबार, खराब कागज, गत्ता, इत्यादि ऐसे समान होते हैं जिनको उपयोगी बनाकर वापस उपयोग में ला सकते हैं। पर्यावरण संरक्षण का उपाय किसी भी महिला के किचन से शुरु होकर हमारे पर्यावरण तक हमारे सामने आता है, इसकी ओर सरकार को विशेष तौर ध्यान देना चाहिए।

भौतिक विकास के पीछे दौड़ रही दुनिया ने आज जरा ठहरकर सांस ली तो उसे अहसास हुआ कि चमक–धमक के फेर में क्या कीमत चुकाई जा रही है। आज ऐसा कोई देश नहीं है जो पर्यावरण संकट पर मेंथन नहीं कर रहा हो। भारत भी चिंतित है। लेकिन, जहां दूसरे देश भौतिक चकाचौंध के लिए अपना सबकुछ लुटा चुके हैं, वहीं भारत के पास आज भी बहुत कुछ बाकी है। पश्चिम के देशों ने प्रकृति को हद से ज्यादा नुकसान पहुंचाया है। पेड़ काटकर जंगल में कांक्रीट खड़े करते समय उन्हें अंदाजा नहीं था कि इसके क्या गंभीर परिणाम होंगे ? प्रकृति को नुकसान पहुंचाने से रोकने के लिए पश्चिम में मजबूत परंपराएँ भी नहीं थी। प्रकृति संरक्षण का कोई संस्कार अखण्ड भारतभूमि को छोड़कर अन्यत्र देखने में नहीं आता है। जबकि सनातन परम्पाओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं। हिन्दू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। भारत में पेड़–पौधों, नदी–पर्वत, ग्रह–नक्षत्र, अग्नि–वायु सहित प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिष्ते जोड़े हैं। पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को माँ स्वरूप माना गया है। ग्रह–नक्षत्र, पहाड़ और वायु देवरूप माने गए हैं। प्राचीन समय से ही भारत के वैज्ञानिक ऋषि–मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी जानकारी थी। वे जानते थे कि मानव अपने क्षणिक लाभ के लिए कई मौकों पर गंभीर भूल कर सकता है। अपना ही भारी नुकसान कर सकता है। इसलिए उन्होंने प्रकृति

के साथ मानव के संबंध विकसित कर दिए। ताकि मनुष्य को प्रकृति को गंभीर क्षति पहुंचाने से रोका जा सके। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन करके चलने का महत्वपूर्ण संस्कार है।

यह सब होने के बाद भी भारत में भौतिक विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति पद्दलित हुई है। लेकिन, यह भी सच है कि यदि ये परंपराऐं न होती तो भारत की स्थिति भी गहरे संकट के किनारे खड़े किसी पश्चिमी देश की तरह होती। हिन्दू परंपराओं ने कहीं न कहीं प्रकृति का संरक्षण किया है। हिन्दू धर्म का प्रकृति के साथ कितना गहरा रिष्ता है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि की स्तुति में रचा गया है। हिन्दुत्व वैज्ञानिक जीवन पद्धति है। प्रत्येक परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। इन रहस्यों को प्रकट करने का कार्य होना चाहिए। हिन्दू धर्म के संबंध में एक बात दुनिया मानती है कि हिन्दू दर्शन 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत पर आधारित है। यह विशेषता किसी अन्य धर्म में नहीं है। हिन्दू धर्म का सह अस्तित्व का सिद्धांत ही हिन्दुओं को प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। वैदिक वाङ्मयों में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और सम्द्धर्धन के निर्देष मिलते हैं। हमारे ऋषि जानते थे कि पृथ्वी का आधार जल और जंगल है। इसलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्ष और जल को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है–'वृक्षाद् वर्षति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न सम्भवः' अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को हमारे ऋषि आनंददायक कहते हैं– 'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।' यही कारण है कि हिन्दू जीवन के चार महत्वपूर्ण आश्रमों में से ब्रहमचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास का सीधा संबंध वनों से ही है। हम कह सकते हैं कि इन्हीं वनों में हमारी सांस्कृतिक विरासत का सम्बर्द्धन हुआ है। हिन्दू संस्कृति वृक्ष को देवता मानकर पूजा करने का विधान है। वृक्षों की पूजा करने के विधान के कारण हिन्दू स्वभाव से वृक्षों का संरक्षण हो जाता है। सम्राट विक्रमादित्य और अषोक के शासनकाल में वन की रक्षा सर्वोपरि थी। चाणक्य ने भी आदर्श शासन व्यवस्था में अनिवार्य रूप से अरण्यपालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हमारे महर्षि यह भली प्रकार जानते थे कि पेड़ों में भी चेतना होती है। इसलिए उन्हें मनुष्य के समतुल्य माना गया है। ऋग्वेद से लेकर बृहदारण्यकोपनिषद्, पद्मपुराण और मनुस्मृति सहित अन्य वाङ्मयों में इसके संदर्भ मिलते हैं। छान्दोग्यउपनिषद् में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वृक्ष जीवात्मा से ओतप्रोत होते हैं और मनुष्यों की भाँति सुख–दुख की अनुभूति करते हैं।

हिन्दू दर्शन में एक वृक्ष की मनुष्य के दस पुत्रों से तुलना की गई है–

'दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः।
दशह्रद समःपुत्रो दशपत्र समोद्रुमः।।

घर में तुलसी का पौधा लगाने का अग्रह भी हिन्दू संस्कृति में क्यों है ? यह आज सिद्ध हो गया है। तुलसी का पौधा मनुष्य को सबसे अधिक प्राणवायु ऑकसीजन देता है। तुलसी के पौधे में अनेक औषधीय गुण भी मौजूद हैं। पीपल को देवता मानकर भी उसी पूजा नियमित इसलिए की जाती है क्योंकि वह भी अधिक मात्रा में ऑकसीजन देता है। परिवार की सामान्य गृहिणी भी अपने अबोध बच्चे को समझाती है कि रात में पेड़–पौधे को छूना नहीं चाहिए, वे सो जाते हैं, उन्हें परेशान करना ठीक बात नहीं। वह गृहिणी परम्परावश ऐसा करती है। उसे इसका वैज्ञानिक कारण नहीं मालूमें रात में पेड़ कार्बनड़ाइ ऑकसीजन छोड़ते हैं, इसलिए गांव में दिनभर पेड़ की छांव में बिता देने वाले बच्चे–युवा–बुजुर्ग रात में पेड़ों के नीचे सोते भी नहीं हैं। देवों के देव महादेव तो बिल्व–पत्र और धतूरे से ही प्रसन्न होते हैं। यदि कोई शिवभक्त है तो उसे बिल्वपत्र और धतूरे के पेड़–पौधों की रक्षा करनी ही पड़ेगी। वट पूर्णिमा और आंवला नवमी का पर्व मनाना है तो वटवृक्ष और आंवले के पेड़ धरती पर बचाने ही होंगे। सरस्वती को पीले फूल पसंद हैं। धन–सम्पदा की देव लक्ष्मी को कमल और गुलाब के फूल से प्रसन्न किया जा सकता है। गणेष दूर्वा से प्रसन्न हो जाते हैं। हिन्दू धर्म के प्रत्येक देवी–देवता भी पशु–पक्षी और पेड–पौधों से लेकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण का संदेश देते हैं। जलस्रोतों का भी हिन्दू धर्म में बहुत महत्व है। ज्यादातर गांव–नगर नदी के किनारे पर बसे हैं। ऐसे गांव जो नदी किनारे नहीं हैं, वहां ग्रामीणों ने तालाब बनाए थे। बिना नदी या ताल के गांव–नगर के अस्तित्व की कल्पना नहीं है। हिन्दुओं के चार वेदों में से एक अथर्ववेद में बताया गया है कि आवास के समीप शुद्ध जलयुक्त जलाषय होना चाहिए।

जल दीर्घायु प्रदायक, कल्याणकारक, सुखमय और प्राणरक्षक होता है। शुद्ध जल के बिना जीवन संभव नहीं है। यही कारण है कि जलस्रोतों को बचाए रखने के लिए हमारे ऋषियों ने इन्हें सम्मान दिया। पूर्वजों ने कल–कल प्रवाहमान सरिता गंगा को ही नहीं वरन सभी जीवनदायनी नदियों को माँ कहा है। हिन्दू धर्म में अनेक अवसर पर नदियों, तालाबों और सागरों की माँ के रूप में उपासना की जाती है। छान्दोग्योपनिषद् में अन्न की अपेक्षा जल को उत्कृष्ट कहा गया है। महर्षि नारद ने भी कहा है कि

पृथ्वी भी मूर्तिमान जल है। अन्तरिक्ष, पर्वत, पषु–पक्षी, देव–मनुष्य, वनस्पति सभी मूर्तिमान जल ही हैं। जल ही ब्रह्मा है। महान ज्ञानी ऋषियों ने धार्मिक परंपराओं से जोड़कर पर्वतों की भी महत्ता स्थापित की है। देश के प्रमुख पर्वत देवताओं के निवास स्थान है। अगर पर्वत देवताओं के वासस्थान नहीं होते तो कब के खनन माफिया उन्हें उखाड़ चुके होते। विन्ध्यगिरि महाशक्तियों का वासस्थल है, कैलाश महाशिव की तपोभूमि है। हिमालय को तो भारत का किरीट कहा गया है। महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भवम्' में हिमालय की महानता और देवत्व को बताते हुए कहा है– 'अस्तुस्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।' भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन की पूजा का विधान इसलिए शुरू कराया था क्योंकि गोवर्धन पर्वत पर अनेक औषधि के पेड़–पौधे थे, मथुरा के गोपालकों के गोधन के भोजन–पानी का इंतजाम उसी पर्वत पर था। मथुरा–वृन्दावन सहित पूरे देश में दीपावली के बाद गोवर्धन पूजा धूमधाम से की जाती है। इसी तरह हमारे महर्षियों ने जीव–जन्तुओं के महत्व को पहचानकर उनकी भी देवरूप में अर्चना की है। मनुष्य और पशु परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर हैं। हिन्दू धर्म में गाय, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, हाथी, शेर और यहां तक की विषधर नागराज को भी पूजनीय बताया है। प्रत्येक हिन्दू परिवार में पहली रोटी गाय के लिए और आखिरी रोटी कुत्ते के लिए निकाली जाती है। चीटियों को भी बहुत से हिन्दू आटा ड़ालते हैं। चिड़ियों और कौओं के लिए घर की मुंडेर पर दाना–पानी रखा जाता है। पितृपक्ष में तो काक को बाकायदा निमेंत्रित करके दाना–पानी खिलाया जाता है। इन सब परम्पराओं के पीछे जीव संरक्षण का संदेश है। हिन्दू गाय को माँ कहता है। उसकी अर्चना करता है। नागपंचमी के दिन नागदेव की पूजा की जाती है। नाग–विष से मनुष्य के लिए प्राणरक्षक औषधियों का निर्माण होता है। नाग पूजन के पीछे का रहस्य ही यह है। हिन्दू धर्म का वैशिष्ट्य है कि वह प्रकृति के संरक्षण की परम्परा का जन्मदाता है। हिन्दू संस्कृति में प्रत्येक जीव के कल्याण का भाव है। हिन्दू धर्म के जितने भी त्यौहार हैं, वे सब प्रकृति के अनुरूप हैं। मकर संक्रान्ति, वसंत पंचमी, महाशिवरात्रि, होली, नवरात्र, गुड़ी पड़वा, वट पूर्णिमा, ओणम्, दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, छठ पूजा, शरद पूर्णिमा, अन्नकूट, देव प्रबोधिनी, एकादशी, हरियाली तीज, गंगा दशहरा आदि सब पर्वों में प्रकृति संरक्षण का पुण्य स्मरण है।

हर साल जैसे ही पर्यावरण दिवस आता है, संसार भर में पर्यावरण सरंक्षण के लिए और भी कड़े हरित कानून और विनिमय बनाने की आवाज तेज हो जाती है। हालांकि कानून महत्वपूर्ण हैं, परन्तु वे पर्यावरण के

संरक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है। हमें पर्यावरण संरक्षण को अपनी नैतिक मूल्य पद्धति का भाग बनाने की आवश्यकता है। दुनिया भर की सभी प्राचीन संस्कृतियों ने प्रकृति–पेड़–पौधों, नदियों, पर्वतों और पर्यावरण को सदा से ही महत्व दे कर संरक्षित किया है। भारत में तो काटे जाने वाले प्रत्येक पेड़ के बदले में पांच पेड़ लगाए जाने की परंपरा हमारी संस्कृति का एक हिस्सा रही है। जल हमारे सभी महत्वपूर्ण रीति–रिवाजों एवं अनुष्ठानों का एक अभिन्न भाग है। नदियों को माता के रूप में और पृथ्वी को देवी के रूप में पूजा जाता था। प्रकृति को पवित्र एवं देवतुल्य मानने की इस परंपरा को आज के आधुनिक युग में भी जीवित रखे जाने की आवश्यकता है। लोगों को जल संरक्षण तथा प्राकृतिक व रसायनमुक्त कृषि के अभिनव तरीके सिखाए जाने चाहिए। जल निकायों के पुनरुद्धार, पौधरोपण और शून्य अपशिष्ट की ओर अभिमुख जीवन शैली के लिए समाज, विशेष रूप से युवाओं की भागदारी के लिए एक तंत्र बनाने की जरूरत है। आर्ट ऑफ लिविंग की अगुआई में 27 नदियों के पुनरुद्धार की परियोजनाऐं सामान्य नागरिकों और अन्य हितधारकों की भागीदारी द्वारा ही संभव हो पाई।

वास्तव में मानवीय लोभ एवं पर्यावरण के प्रति असंवेदनशीलता प्रदूषण के मूल कारण हैं। त्वरित और अधिक लाभ का लोभ पर्यावरण के संतुलन को गंभीर रूप से बाधित करता है, और इससे न सिर्फ भौतिक रूप से वातावरण प्रदूषित होता है, बल्कि सूक्ष्म स्तर पर यह नकारात्मक भावनाओं को भी उत्तेजित करता है। हमें मानव मानसिकता पर कार्य करने की आवश्यकता है, जो कि सभी प्रकार के प्रदूषण का मूल कारण है। पारिस्थितिक गिरावट को प्रौद्योगिकी और विकास का एक अनिवार्य उप–उत्पादन न बनाया जाए। तकनीक और विज्ञान खतरनाक नहीं है, परंतु तकनीकी और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ खतरनाक होते हैं। हमें कचरे का उपभोग करने और सौर ऊर्जा या प्राकृतिक कृषि जैसी गैर–प्रदूषक प्रक्रियाओं को विकसित करना व अपनाना चाहिए। प्रौद्योगिकी का उद्देश्य प्रकृति का उपयोग कर, मनुष्यों को जानकारी और सुविधाऐं प्रदान करना है। जब आध्यात्मिक और मानव मूल्यों को नजरअंदाज कर दिया जाता है, तो प्रौद्योगिकी सुविधा की अपेक्षा प्रदूषण और विनाश लाती है। अपने भीतर करुणा एवं रक्षा की भावना जागृत करने से पर्यावरण के प्रति गहरा संबंध एवं उसके संरक्षण की भावना पैदा होती है। यही कारण है कि मैं पर्यावरण संरक्षण से जुड़े हुए किसी भी अभियान के लिए आध्यात्मिक जागरूकता को एक अभिन्न अंग मानता हूँ। प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार पर्यावरण के साथ हमारा संबंध मानव अनुभव

का सबसे पहला स्तर है। ऐसी मान्यता है कि यदि हमारा पर्यावरण स्वच्छ और सकारात्मक है, तो इससे हमारे अस्तित्व के अन्य सभी स्तरों पर भी एक सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। ऐतिहासिक रूप से, मानव मानसिकता में पर्यावरण के साथ घनिष्ठ संबंध बनाया गया था। जब हम स्वंय से और प्रकृति से दूर होने लगते है, तब हम पर्यावरण को प्रदूशित और नष्ट करना शुरू कर देते हैं।

हमें प्रकृति से अपने सबंधों को सुदृढ़ करने वाले दृष्टिकोण और परंपरागत प्रथाओं को पुर्नजीवित करने की आवश्यकता है। लोगों को इस पृथ्वी के प्रति सम्मान भाव रखने, पेड़ और नदियों को पवित्र मान कर उनकी रक्षा करने, लोगों और प्रकृति में भगवान को देखने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। इससे संवेदनशीलता को बढ़ावा मिलेगा, और एक संवेदनशील व्यक्ति ही प्रकृति की देखभाल कर सकता है, उसे संपोशित कर सकता है। इस सब से बढ़ कर, हमें ऐसे खुले मन, जो कि तनावमुक्त हो, से अपने इस संसार का अनुभव करने में सक्षम होना होगा और फिर हमें अपनी इस सुंदर धरती को बचाने के उपाय करने होंगे। ऐसा तभी संभव है जब मानव चेतना के स्तर पर लालच और दोहन करने की भावना से ऊपर उठ जाए। आध्यात्मिकता अर्थात अपने अंतर्मन की गहराई में स्वयं की प्रकृति का अनुभव करने से स्वयं के साथ, दूसरों के साथ और अपने पर्यावरण के साथ महत्वपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए मार्ग प्रषस्त लोभ पर नजर रखती है जो व्यक्ति को पर्यावरणीय ह्रास की ओर ले जाती है। इससे संपूर्ण ग्रह के संरक्षण और उसके प्रति कटिबद्ध होने को बढ़ावा मिलता है। प्रौद्योगिकी और विज्ञान को बढ़ावा देते हुए पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाए रखना वर्तमान सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। इस संतुलन को बनाए रखने में केवल आध्यात्मिक मूल्य ही सहायक हो सकते हैं।

◆◆◆

शोध एवं मानवीय मूल्य

डॉ0 सुधांशु शेखर
शोधार्थी, शारीरिक शिक्षा विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

सारांश

शोधकर्त्ता का ढ़ंग बहुत अधिक अनुषासित होता है। किसी भी प्रत्यय की अनेक व्याख्याओं में से एक को छोड़कर अन्य सभी को उपेक्षित कर दिया जाता है। इस प्रकार शोधकर्त्ता को यह आष्वासन रहता है कि परीक्षित परिणाम या सम्बन्ध वहीं है जो वस्तुतः प्रत्यय में विद्यमान है। यदि परिस्थितियों को नियन्त्रित न किया जाय या अनेक व्याख्याओं को उपेक्षित न किया जाय तो यह सम्भव नहीं है। आत्मगत विश्वास को वस्तुगतता की कसौटी पर कसना होगा। अर्थात् उसे अपने और अन्य लोगों के परिणामों को आलोचक के रूप में देखना होगा। अनुसन्धानकर्ता के द्वारा अपनी खोज लिखते समय त्रुटि करना या अति सामान्यीकरण करना आसान है, लेकिन कन्धे के ऊपर से अन्य वैज्ञानिकों की झांकती हुई तीखी दृष्टियों से बच पाना बहुत मुष्किल है। शोध सूचनाओं को क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप में संकलित करने की क्रिया को इंगित करना है। वस्तुतः शोध एक प्रकार का मानवीय व्यवहार है, एक प्रक्रिया है जिसमें लोग व्यस्त रहते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धान का विकास धीरे–धीरे हुआ है। इसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न आयामों, प्रक्रियाओं आदि के विषय में वर्तमान ज्ञान की जाँच, नवीन ज्ञान का सृजन तथा शिक्षा के क्षेत्र में भावी योजनाओं और विकास की दिशा का निर्धारण करना होता है। तथ्यों तक पहुँचने के लिए किये गये वैज्ञानिक अनुसंधानों में अधिकांष चार चरणों का पालन किया जाता है :– (i) निरीक्षण, (ii) वर्गीकरण, (iii) सत्यापन, (iv) सामान्यीकरण।

मानवीय मूल्यों हेतु अध्ययनों की प्रकृति तथा उद्देश्यों के आधार पर अनुसन्धान को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– (i) व्यक्तिगत उद्देश्य, (ii) व्यावहारिक उद्देश्य, (iii) बौद्धिक उद्देश्य।

शीर्षक–शोध एवं मानवीय मूल्य (Resesarch and Human Value)

(1) वैज्ञानिक अनुसन्धान का विकास धीरे–धीरे हुआ है। इसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न आयामों, प्रक्रियाओं आदि के विषय में वर्तमान ज्ञान की जाँच, नवीन ज्ञान का सृजन तथा शिक्षा के क्षेत्र में भावी

योजनाओं और विकास की दिशा का निर्धारण करना होता है। तथ्यों तक पहुँचने के लिए किये गये वैज्ञानिक अनुसंधानों में अधिकांष चार चरणों का पालन किया जाता है :– (i) निरीक्षण, (ii) वर्गीकरण, (iii) सत्यापन, (iv) सामान्यीकरण।

(i) **निरीक्षण –** अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के क्षेत्र में कारकों के सम्बन्धों को ज्ञात करने के लिए सदैव अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा सचेष्ट बना रहता है। जब इस प्रकार के सम्बन्धों का आभास प्राप्त हो जाता है तो वह उनके कारणों की व्याख्या करने की प्रक्रिया में व्यस्त हो जाता है। वह किसी भी अवलोकित तथ्य को सम्पूर्ण परिस्थिति से जोड़ने की कोषिष करता है ताकि वह अर्थपूर्ण हो सके।

(ii) **वर्गीकरण –** अनुसंधानकर्ता बिना ऐसे सन्दर्भ के चयन के जिसके प्रकाश में वह अपने प्रदत्तों को देख सकें, अचानक ही अनुसन्धानकर्ता अनुसन्धान–योजना में नहीं कूद पड़ता। वह न केवल यह ज्ञात करने की चेष्टा करता है कि किसी मानव–व्यवहार का क्या कारण है वरन वह यह भी निष्चय करता है कि उसे वह किस सन्दर्भ में देखेगा। यदि शोधकर्ता एक शैक्षिकशास्त्री या मनोवैज्ञानिक है तो वह अपने प्रयोज्यों को देखेगा, प्रदत्तों का विश्लेषण करेगा, लेकिन उसका यह कार्य एक दैहिकशास्त्री, भौतिकशास्त्री या ग्रन्थिशास्त्री से भिन्न होगा। वह वर्गीकरण के स्तर पर वैज्ञानिक सम्बन्धों के कारण का अनुमान लगायेगा और उसके आधार पर उपकल्पना का निर्माण करेगा। उपकल्पना, निरीक्षणों से प्राप्त परिणामों के अनुभवों का वर्गीकृत रूप होती है।

(iii) **सत्यापन–** समस्या का अवलोकन कर लेने पर तथा उस क्षेत्र के सन्दर्भ में अर्थपूर्ण बना लेने पर; शोधकर्ता प्रयोग का अभिकल्प बनाता है, जिसके द्वारा वह अपने अनुमानित उत्तर की वैधता का परीक्षण कर सके। सत्यापन की ओर ले जाने वाले प्रयोगात्मक स्तर पर, शोधकर्ता उन परिस्थितियों को नियन्त्रित करता है जिसमें कि प्रत्यय घटित होता है। वह केवल उसी कारक या कारकों को हस्तचालित करता है जिनका प्रभाव वह देखना चाहता है। इस प्रकार वह प्रदत्तों का संकलन करता है। यह प्रत्तर आगमन की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त प्रस्ताव के लिए आधार प्रदान करते हैं।

(iv) **सामान्यीकरण –** यह निष्चय कर लेने के पष्चात् कि किसी प्रत्यय के प्रगटन के लिए अमुक कारक उत्तरदायी हैं कुछ सामान्य अनुमान, सिद्धान्त या नियमों का उल्लेख करता है। इसके द्वारा वह कुछ विशेष कथनों का वर्णन करता है जो कि प्रत्यय के प्रगटन–विशेष से सम्बन्धित होते है।

उपर्युक्त चरणों का प्रयोग विज्ञान में किया जाता है। साधारण प्राकृतिक कारकों के नियमित और वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह चार ताक्रिक चरण है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यापन तथा सबसे कठिन सामान्यीकरण है।

(2) मानवीय मूल्यों हेतु अध्ययनों की प्रकृति तथा उद्देश्यों के आधार पर अनुसन्धान को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– (i) व्यक्तिगत उद्देश्य, (ii) व्यावहारिक उद्देश्य, (iii) बौद्धिक उद्देश्य।

(i) व्यक्तिगत उद्देश्य–व्यक्तिगत उद्देश्य के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता, जो भी सूचनाएँ अनुसन्धान के आधार पर प्राप्त करना चाहता है, उन सभी तथ्यों को व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति में ही प्रयोग करता है क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता यहाँ पर अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों के कारण आता है। उदाहरण–एक छात्र यह जानने का प्रयास करता है कि वे कौन–से कारण हैं, जिनके आधार पर छात्र प्रतियोगी परीक्षा में असफल हो जाता है? (यहाँ पर यह जिज्ञासा छात्र के अपने विषय में सतक्र के कारण जन्म लेती है)।

सामान्यतः अनुसन्धान जो व्यक्तिगत उद्देश्य के लिये किये जाते हैं, उनका विवरण निम्नलिखित है :–

(a) व्यक्तिगत आवश्यकता – इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अनुसंधान के कार्य में सलंग्न होता है।

(b) स्वयं के ज्ञान का स्तर ज्ञात करना – कुछ ऐसे भी अनुसंधानकर्ता होते हैं, जो अपने ज्ञान के स्तर की जाँच करने अथवा अपनी रूचि के अनुसार अनुसंधान कार्यो की ओर अग्रसर होते हैं।

(c) अनुसंधान द्वारा आर्थिक लाभ प्राप्त करना – आर्थिक लाभ प्राप्त

करना मानवीय क्रियाओं का सर्वप्रमुख कारण है। अतः अनुसंधान में भी अनुसंधानकर्ता का आर्थिक लाभ का उद्देश्य अवश्य ही विद्यमान रहता है।

(d) प्रतिष्ठा प्राप्त करना – निश्चय ही अनुसंधान एक दीर्घ तथा जटिल प्रक्रिया है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अथवा साधारण व्यक्ति सरलता से अनुसंधान में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। अनुसंधान सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक मूलभूत गुणों के साथ–साथ अन्य साधनों की आवश्यकता होती है। अतः इस कठिन कार्य में सफल हो जाने के उपरांत व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ जाती है तथा तथ्य व्यक्ति को अनुसंधान के लिए प्रेरित करता है।

(ii) व्यावहारिक उद्देश्य– कभी–कभी ऐसा भी होतार है कि अनुसंधानकर्त्ता किसी वर्णन तथ्य की खोज नहीं करता है बल्कि पूर्व में किये गये अनुसंधान को आगे बढाता है। ऐसे विषय को जाँचने के लिये अनुसंधानकर्त्ता सांख्यिकी की विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है।

उदाहरण–यदि 'P' अनुसन्धानकर्त्ता ने किसी वस्त्र उद्योग की समस्या पर अनुसन्धान किया है तो 'Q' अनुसन्धानकर्त्ता यह जानने का प्रयास करेगा कि ऐसी समस्याओं के उत्पन्न होने के क्या कारण हो सकते हैं अथवा कौन–से ऐसे तत्व हैं, जो इन समस्याओं को प्रभावित करते हैं?

व्यावहारिक उद्देश्य का संक्षेप में वर्णन निम्नलिखित हैं–

(a) पूर्व तथ्यों की जाँच करना– इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता यह जानने का प्रयास करता है कि ऐसे कौन–से तथ्य हैं, जो कि वर्तमान समय में उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि पूर्व में थे तथा जिन पर वर्तमान में अनुसन्धान करना उचित हो सकता है।

(b) प्राप्त परिणामों को लागू करना – अनुसन्धाकर्त्ता पूर्व में किये गये तथ्यों की जाँच सांख्यिकी की प्रमुख विधियों के आधार पर करता है तथा इस प्रकार के अनुसन्धानों से प्राप्त तथ्यों को उसी क्षेत्र में प्रयोग करने का प्रयास करता है, जिससे कि अनुसन्धान के सुखद तथा लाभदायक परिणाम प्राप्त हो सकें।

(iii) **बौद्धिक उद्देश्य-** निःसन्देह अनुसन्धान का सर्वप्रमुख उद्देश्य बौद्धिक होता है। इस बौद्धिक अथवा सैद्धान्तिक उद्देश्य का सम्बन्ध मानव

की ज्ञान–प्राप्त करने की जिज्ञासा से है। अनुसन्धान ज्ञान का साधन है। इस प्रकार से अनुसन्धान का सैद्धान्तिक उद्देश्य तथ्यों, घटनाओं अथवा समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है, जिससे कि पुराने तथ्यों का प्रमाणीकरण, नये तथ्यों की खोज तथा तथ्यों का पूर्ण रूप से परीक्षण किया जा सके।

(3) अनुसन्धान की विशेषताएँ

(i) एक दृढ़ दार्शनिक आधार– शिक्षा में वैज्ञानिक प्रक्रिया के आरोपण में एक दृढ़ दार्शनिक तथा दृढ़ सामान्य ज्ञान भी सन्निहित होना चाहिए ताकि वैज्ञानिक प्रक्रिया को उसी से बचाया जा सके।

(ii) अन्तः दृष्टि और कल्पना पर आधारित–शोध पर अपने भरोसे के साथ यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि व्यावहारिक प्रयोगकर्ता और निपुण खोजकर्ताओं को सदैव कल्पनाशील अन्तःदृष्टि रखने वाले पुरूषों और महिलाओं की आवश्यकता पड़ती है, जो वर्तमान से दूर भविष्य द्रष्टा होते है। यदि यह भावी दृष्टि वर्तमान के प्रकाश में लुप्त हो जायेगी तो न केवल लोग समाप्त हो जायेंगे वरन् स्वयं शोध भी लुप्त हो जायेगा। अतः शोध की एक विशेषता उसका काल्पनाशील अन्तःदृष्टि पर निर्भर होना ही।

(iii) निगमन ताक्रिक प्रक्रिया को अपनाती है–अनुसन्धान सामान्यतः विवरण, व्याख्या जो मुख्यतः निगमनात्मक होते हैं तथा जिनसे ऐसे परिणाम प्राप्त होते हैं जिनकी व्याख्या मापन या गणितीय प्रक्रियाओं से नहीं की जा सकती, को अपनाता है।

(iv) स्थितियों को उत्तम करने की इच्छा–उत्तर शैक्षिक साधन, निर्देषात्मक उद्देश्यों के उत्तम विकास या निर्माण, छात्रों की उत्तम अभिप्रेरणा, उत्तम शिक्षण विधियाँ, उत्तम मूल्यांकन, उत्तम निरीक्षण और प्रज्ञान वे क्रियायें और कार्य हैं जिन्हें प्राप्त करना शैक्षिक अनुसन्धान का लक्ष्य है।

(v) अन्तर–संकाय उपागम–अनुसन्धान की एक विशेषता यह है कि यह विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि के तथ्यों का मानव के विकास के लिए उपयोग करता है।

(vi) शोध प्रायः आनुभविक विधियों द्वारा नहीं किया जा सकता–भौतिक विज्ञान अधिक से अधिक मात्रात्मक, होता जा रहा है जहाँ तक

उनकी इकाई और मापन का प्रश्न है, पर समाज विज्ञान प्रकारात्मक है और मात्रात्मक कथन को स्वीकार नहीं करते हैं। हम नागरीकरण, संस्कृति, आत्मसात की बात कर सकते हैं पर उन्हें मात्रात्मक रूप में माप नहीं सकते। हम अनुशासनहींनता के बारे में बात कर सकते हैं, पर जब तक हम उसका माप न कर सकें; जब तक उसकी मात्रा का आकलन न कर सके, हम उसका इलाज नहीं कर सकते।

(vii) अनुसन्धान एक मेकेनिकल प्रक्रिया नहीं है– अनुसन्धान को कभी भी एक मैकेनिकल प्रक्रिया नहीं बनाया जा सकता। अध्ययन करने योग्य कदाचित ही कोई समस्या होगी जिसमें अज्ञात तत्व सन्निहित न हों तथा जिसके लिए नवीन उपागम की आवश्यकता न हो। शिक्षा के क्षेत्र में अधिकांष शोध जो छात्रों द्वारा किये गये हैं, उनमें अपने से पहले किये गये शोधों की प्रक्रिया को ही अपनाया गया है। इनमें कहीं भी समस्या के प्रति वास्तविक अन्तर्दृष्टि नजर नहीं आती है। अधिकांश अनुसन्धान, जो छपे हैं, उन्हें वह पहचान नहीं मिल पाई जो मिलनी चाहिये, क्योंकि उनमें वह मौलिकता दृष्टिगत नहीं होती जो एक नई समस्या के हल में दृष्टिगत होनी चाहिये।

(viii) अनुसन्धान का उद्देश्य किसी समस्या के समाधान की खोज करना ही होता है।

(ix) मूलतः अनुसन्धान की प्रक्रिया से नवीन ज्ञान की प्राप्ति ही होती है।

(x) अनुसन्धान का मुख्य आधार निरीक्षणीय अनुभव अथवा वर्णन होता है।

(xi) अनुसन्धान का मुख्य अन्तर्गत प्राथमिक स्त्रोतों तथा विद्यमान प्रदत्त को नये उद्देश्य के लिये एकत्र करना होता है।

(xii) अनुसन्धान के माध्यम से किसी सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या का समाधान करने का प्रयास किया जाता है।

(xiii) अनुसन्धान निश्चय ही चिन्तन की एक व्यवस्थित तथा आधुनिक विधि है।

(xiv) अनुसन्धान के द्वारा ज्ञान के प्रकाश तथा प्रसाद के लिये सुव्यवस्थित प्रयास किये जाते है।

(xv) अनुसन्धान के अन्तर्गत जटिल घटनाक्रमों को समझने के लिये

विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर परिकल्पनाओं का निर्माण तथा परीक्षण किया जाता है।

(xvi) अनुसन्धान के द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता के धैर्य का भी परीक्षण हो जाता है।

(xvii) अनुसन्धान में कभी–कभी साहसी तथा निर्णयन की भी आवश्यकता होती है। इसके द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता की निर्णयन क्षमता का भी स्तर ज्ञात हो जाता है।

(xviii) अनुसन्धान में विश्वसनीय तथा वैध विधियों का ही प्रयोग होता है।

(xix) अनुसन्धान की प्रक्रिया पूर्णतः वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया होती है।

(xx) अनुसन्धान के अन्तर्गत व्यक्तिगत पक्षों तथा भावनाओं को महत्त्व नहीं दिया जाता है।

(xxi) अनुसन्धान कार्य के अन्तर्गत आलेख सावधानीपूर्वक तैयार किया जाता है, इसके अतिरिक्त शोध प्रबन्ध भी तैयार किया जाता है।

(xxii) जहाँ तक सम्भव हो, अनुसन्धान की प्रक्रिया में आँकड़ों के विश्लेषण में परिणात्मक विधि का ही प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि जहाँ तक सम्भव हो सके, समेंकों के विश्लेषण में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(xxiii) प्रत्येक अनुसन्धान से निष्कर्ष निकाले जाते हैं और सामान्यीकरण का प्रतिपादन किया जाता है।

(xxiv) अनुसन्धान के मुख्य पद–अनुसन्धान एक दीर्घ तथा क्रमिक प्रक्रिया है। अनुसन्धान किसी भी दिशा के रूप में हो, प्रत्येक को विशिष्ट पदों के क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है। सम्पूर्ण अनुसन्धानिक प्रक्रिया अनेक क्रियाओं का मिश्रण होता है। अनुसन्धान की सभी प्रक्रियाएँ परस्पर एक–दूसरे से जुड़ी होती हैं। अनुसन्धान प्रक्रिया के अन्तर्गत इन क्रियाओं को निम्नलिखित पदों में व्यवस्थित किया जा सकता है।

(a) समस्याओं के रूप में अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा अध्ययन में उद्देश्य का वर्णन

(b) अनुसन्धान के अध्ययन–प्रारूप का वर्णण

(c) समेंक संकलन की विधि का वर्णन

(d) अनुसन्धान के परिणाम का प्रस्तुतीकरण

(e) उचित निष्कर्ष निकालना

4. अनुसन्धान एवं मानवीय मूल्यों का क्षेत्र – अनुसन्धान का क्षेत्र इतना व्यापक है और उसके विभिन्न अंग परस्पर एक–दूसरे में इस प्रकार गुथे हुए हैं कि उन्हें अलग–अलग वर्गों में वर्गीकृत करना कठिन है। अनेक विद्वानों ने इसे वर्गीकृत करने की चेष्टा की है। पर इन विद्वानों ने जो वर्ग दिये हैं वे विभिन्न दृष्टिकोणों से हैं। अतः इसका सर्वसम्मत वर्गीकरण एक जटिल कार्य है। यदि हम वैज्ञानिक और कलात्मक पक्ष पर ध्यान दे तो शोध के क्षेत्र को निम्नांकित वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(i) शिक्षा मनोविज्ञान–इस क्षेत्र में दिये गये शोध बालक के हर व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित है। वस्तुतः इस क्षेत्र में किये जाने वाले शोधों का सम्बन्ध बालक के पूर्ण विकास यथा बौद्धिक, सामाजिक और संवेगात्मक से रहता है। इस क्षेत्र में शोधों का सम्बन्ध मुख्यतः अधिगम, अभिवृत्ति, रूचि, स्मृति, पठन–पाठन की कठिनाइयों से सम्बन्धित होता है। इसी क्षेत्र के अन्तर्गत पिछड़े और मानसिक रूप से मन्द बालकों का भी अध्ययन किया जाता है।

(ii) प्रशासन–प्रशासन से सम्बन्धित अनुसंधानों के सम्बन्ध में यह कहना अतिषयोक्ति नहीं होगी कि इस क्षेत्र में अनुसन्धान हुए ही नहीं है। शोधकर्ताओं ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। हमारे यहाँ शिक्षा का ढ़ाँच ऐसा है कि यहाँ प्रशासन बहुस्तरीय है। अतः हर स्तर पर प्रशासक की विशेषताओं, क्षमताओं और अवश्यकता सम्बन्धी अनुसन्धान की आवश्यकता है। इससे प्रशासकों के चयन और नियुक्ति में सहायता प्राप्त होगी। भौतिक सुविधाओं के नियन्त्रीकरण, प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के सम्बन्धों आदि की अनेक समस्यायें हैं जिनमें शोध की आवश्यकता है।

(iii) दर्शन–भारतीय जीवन के दर्श का प्रतिबिम्ब हमारी शिक्षा में होना चाहिये। यह दर्शन ही हमारी शिक्षा के लक्ष्य और मूल्यों को प्राप्त कराता है। वर्तमान में पाश्चात्य संस्कृति का और नागरीकरण का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। अतः परम्परागत भारतीय अध्यात्मवाद

और पाश्चात्य भौतिकवाद के मूल्यों और संस्कारों का द्वन्द्व चल रहा है। हम प्राचीन मूल्यों को विस्मृत कर रहे हैं। अतः आज ऐसे दर्शन को विकसित करने की आवश्यकता है जो परम्परागत भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य प्रगतिवाद के मध्य सामंजस्य स्थापित कर सके। ये इस क्षेत्र में शोध द्वारा ही सम्भव हो सकता है, जिसके द्वारा ऐसा दर्शन विकसित किया जा सकता है।

(iv) इतिहास–हम अपने गत अनुभवों के आधार पर ही वर्तमान में सुधार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों के अनुभव से भी हमें आज विकसित होने के अवसर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अपनी शिक्षा के इतिहास का ज्ञान तथा अन्य देशों के इतिहास का ज्ञान हम अपनी शिक्षा के विकास के लिए शोध हेतु कर सकते हैं।

(v) वित्त प्रबन्ध–इस क्षेत्र में शोध द्वारा धन के अपव्यय की रोकथाम के उपाय सुझाये जा सकते हैं। इसी प्रकार शिक्षा के लिए धन का प्रबन्ध कहाँ से और कैसे किया जाये। इसका उपयुक्त ज्ञान हमें इस क्षेत्र के शोधों से ही पता लग सकता है।

(vi) समाजशास्त्र–हमारे देश में शिक्षा का एकदम से विस्तार हुआ है। हम सर्वशिक्षा की बात करते हैं। अतः समाज के हर क्षेत्र से अब छात्र कक्षा में आते है। इसी प्रकार प्रबुद्ध और सम्पन्न परिवारों के बच्चे जब अंग्रेजी माध्यम से स्कूलों में अध्ययन करते हैं तथा आर्थिक रूप से पिछड़े लोग सरकार या परिषदीय स्कूलों में जाते हैं। इससे समाज के विभिन्न वर्गों में हीन भावना का विकास होता है और उसमें एक खाई उत्पन्न होती है। इसे दूर करने के लिए और इसका हल प्राप्त करने के लिए शोध की आवश्यकता है। शोध द्वारा विद्यालयों में तथा समाज में उचित प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध विकसित करने पर बल दिया जाना चाहिये।

(vii) विधि तन्त्र–नवीन शिक्षण विधियों का विकास तभी हो सकता है जब इस क्षेत्र में शोध किये जायें। नवीन शिक्षण विधियों का विकास, शिक्षा क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों को वर्तमान में समायोजित करने आदि के लिए आवश्यक है कि इनसे सम्बन्धी शोध कार्य किये जायें।

(viii) तुलनात्मक शिक्षा–विभिन्न देशों की शिक्षा प्रणाली और शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन कर हम अपनी शिक्षा में वांछित परिवर्धन कर

सकते हैं। इसके अतिरिक्त अपने ही देश के विभिन्न राज्यों की शिक्षा का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(ix) मापन एवं मूल्यांकन–हमारे यहाँ जो शैक्षिक परीक्षण उपलब्ध हैं उनमें बड़े सुधार की आवश्यकता है। अधिकांश परीक्षणों की वैधता और विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है। तमाम परीक्षणों में उपयुक्त मानक उपलब्ध नहीं हैं। अतः इस क्षेत्र गहन शोध की आवश्यकता है।

5. अनुसन्धान के प्रमुख क्षेत्र –

A. (i) आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के सर्वांगीण विकास की पूर्ति हेतु उपाय खोजना।

(ii) अन्तर्विषयी अनुसन्धान।

(iii) कुषाग्र लोगों की खोज और उनके विकास सम्बन्धी समस्यायें।

(iv) संवैधानिक व्यवस्था के मौलिक अधिकार में (अनुच्छेद–21A) के अन्तर्गत 14 वर्ष के बालकों की अनिवार्य एवं निःषुल्क शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन।

(v) अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन।

उपरोक्त क्षेत्र व्यापक हैं। इनमें से हर क्षेत्र की अनेक समस्यायें हैं। इन समस्याओं पर बहुत कम शोध हुए हैं अतः इन्हें शोध की प्राथमिकता सूची में शामिल किया गया है।

◆◆◆

शोध एवं मानवीय मूल्य

रोहित राठौर

छात्र– एम0 एड0, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद (उ०प्र०)

जीवन को सजाने और संवारने में अनेक तत्त्वों का योग रहता है। मूल्य उनमें से एक आवश्यक तत्त्व है जिनके बिना न सुखद एवं शांतिपूर्ण वैयक्तिक जीवन संभव है, न ही सामाजिक जीवन संभव है और न ही इनके बिना आध्यात्मिक जीवन ही संभव है। अतः मूल्यों की महत्ता का अनुमान स्वयं ही लगाया जा सकता है। वास्तव में मूल्य जीवन को बहुआयामी रूप देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महान व्यक्ति हुए हैं, वे अनेक मूल्यों से ओत–प्रोत रहे हैं। वर्तमान में भी यही बात लागू होती है। मूल्यों के अभाव में मानव दानव बन जाता है, इसके भी प्रमाण हमें मिलते हैं।

अतः जीवन के उत्थान और पतन में मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। एक सामान्य व्यक्ति भी अपने जीवन में कुछ–न–कुछ अंशों में मूल्यों का पालन अवश्य ही करता है। यह पालन चाहे स्वेच्छा से हो अथवा दण्ड के भय से। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि मूल्य हमारे जीवन के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्त्व हैं।

जैक आर. फ्रोकल के अनुसार–"मूल्य आचार–सौन्दर्य–कुशलता या महत्त्व के मापदंड हैं, जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिनके साथ वे जीते हैं, जिन्हें वे कायम रखते हैं।"

मूल्यों का महत्व व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र तीनों के लिए अधिक होता है। मूल्यों का वर्गीकरण व्यापक रूप में दो वर्गों में किया गया है– सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक मूल्य। मूल्य के तत्व भाव, क्रिया तथा ज्ञान होते हैं। यह तीनों ही तत्व जब साथ–साथ क्रियाशील होते हैं तब मूल्यों की अभिव्यक्ति की जाती है। ज्ञान के अभाव में जब क्रिया तथा भाव की अभिव्यक्ति की जाती है तब उसे मूल्य नहीं कह सकते हैं, अपितु अन्धविश्वास कहते हैं। इस प्रकार मूल्य अधिक जटिल प्रत्यय है। मूल्यों के स्पष्टीकरण के लिए शोध अध्ययन की आवश्यकता है।

मूल्यों पर शोध की आवश्यकता

मूल्यों को मन में बैठाने की प्रक्रिया अधिक जटिल है क्योंकि

इसके लिए कोई भी सुनिश्चित विधि तथा प्रविधि नहीं है। मूल्य का स्वरूप अधिक व्यापक होता है। इसमें संवेदनशीलता, आत्मसात करने की प्रक्रिया, सही मूल्यों को पहचानना, सही मूल्यों का चयन करना, मूल्यों की अनुभूति करना आदि सम्मिलित होते हैं। मूल्यों को मन में बैठाने के लिए कोई समयबद्ध कार्यक्रम नहीं होता। यह प्रक्रिया जीवन में निरन्तर चलती रहती है।

मूल्यों का मन में बैठाने के लिए महात्मा गाँधी का तीन एच0 का सूत्र (हाथ, हृदय तथा मस्तिष्क) अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। क्योंकि मूल्य के भी तीन प्रमुख तत्व होते हैं– भाव, क्रिया एवं ज्ञान। जब ये तीन एक साथ क्रियाशील होते हैं तो मूल्यों का सृजन होता है। इस प्रकार मूल्यों को मन में बैठाने के हेतु तीनों पक्षों–भावात्मक, क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक को सम्मिलित किया जाता है। मूल्यों के मन में बैठाने की प्रक्रिया पर वातावरण के कारकों का भी प्रभाव होता है। प्रमुख वातावरण घर, विद्यालय, समुदाय, समाज आदि होते हैं। घर के वातावरण के घटकों की अहम भूमिका होती है। माता–पिता के बाद शिक्षक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय के वातावरण में मूल्यों के विकास में शिक्षक का उत्तरदायित्व भी प्रमुख होता है। शिक्षक की भूमिका एक मित्र, निर्देषक तथा दार्शनिक की होती है। शिक्षक को अपने विषयों का शिक्षण करते समय यह विचार करना होता है कि इस विषय के शिक्षण से किस प्रकार के मूल्यों को विकसित किया जा सकता है। शिक्षण विषयों के अतिरिक्त विद्यालयों में अन्य कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। जिनमें सहायक क्रियायें, एन0सी0सी0, सांस्कृतिक कार्यक्रम, राष्ट्रीय पर्व, खेल–कूद, शैक्षिक पर्यटन, परामर्श निर्देष आदि प्रमुख हैं। इन कार्यक्रमों को मूल्यों के विकास के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

मूल्यों की शिक्षा प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष तथा आकस्मिक रूप में भी आयोजित की जाती है। प्रत्यक्ष मूल्यों की शिक्षा में महापुरूषों के उपदेशों, प्रवचनों का आयोजन किया जाता है। अप्रत्यक्ष के लिए शिक्षण विषयों तथा पाठ्यक्रम तथा पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का उपयोग किया जाता है। मूल्यों का विकास आकस्मिक परिस्थितियों तथा घटनाओं से भी होता है।

आज इस बात की आवश्यकता है कि मूल्यों की शिक्षा के लिए कुछ ऐसे कार्यक्रमों को विकसित किया जाए जिससे समुचित मूल्यों का विकास सम्भव हो सके। कार्यक्रम के सम्पादन के लिए समुचित विधियों तथा प्राविधियों की आवश्यकता है। इसके लिए शोध अध्ययनों की अधिक

आवश्यकता है। मूल्यों के विकास के लिए शिक्षण प्रतिमानों का भी विकास किया जा रहा है। शोध कार्यों द्वारा ही मूल्यों का स्पष्टीकरण सम्भव है। शोध अध्ययनों में प्राथमिकता मूल्यों के स्पष्टीकरण के लिए ही दी जाती है। अभी मूल्यों के क्षेत्र में व्यावहारिक अनुसंधान नहीं हुए हैं। अधिकांश शोध सैद्धान्तिक मूल्यों पर किये जाते रहे हैं जिसमें विश्लेषण विधि को प्रयुक्त किया गया है। ये विधि वस्तुनिष्ठ नहीं है। इसलिए आवश्यकता है कि व्यावहारिक मूल्यों तथा शोध कार्यों का आयोजन किया जाए जिससे विश्वसनीय निष्कर्ष ज्ञात किये जा सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाल सकतें हैं कि विद्यालय प्रणाली के नियोजन से मूल्यों को मन में बैठाया जा सके, इसके लिए सुनिश्चित मूल्यों के विशिष्ट शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों का विकास किया जाए। शिक्षा के स्तरों के लिए, भाषा–साहित्य, सामाजिक विषय, वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित मूल्यों की पहचान की जाए और इसके लिए व्यावहारिक विधियों के विकास की आवश्यकता है।

◆◆◆

शोध और साहित्यक चोरी(प्लेजरिज़्म)

डॉ० अरविन्द कुमार,
असि० प्रोफेसर, बी० एड०, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

शोध एक प्रकार की खोजीय अन्वेशण प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बहुत ही व्यवस्थित, नियन्त्रित एवं सुनियोजित होती है। मानवीय जीवन में घटित विभिन्न प्रकार की समस्याओं को दूर करने के लिए एवं उसके ज्ञान में वृद्धि करने के लिए इसी व्यवस्थित एवं सुनियोजित (वैज्ञानिक) प्रक्रिया की आवष्यकता होती है। जिसे सरल भाषा में शोध कहते हैं। शोध में एक समस्या होती है जिसको दूर करने के लिए उसका हल ढूढ़ा जाता है। वर्तमान में जो व्यवस्था संचालित है उसमें जरूर कोई न कोई कमी महसूस हो रही है इसी कमी को दूर करना ही शोध का कार्य है, लेकिन इस समस्या का हल निकल आने पर या आवष्यकता परिवर्तित होने पर उससे फिर कोई और नई समस्या उत्पन्न हो जाती है। समस्या कभी समाप्त नहीं होती, इसलिए शोध भी कभी समाप्त नहीं होती है।

There is a problem, There is a solution, again there is a problem again there is a solution.

शोध को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं–:

जैसे प्राचीन समय में संदेश (Message) भेजने का काम कबूतर करते थे इसमें समस्या यह थी कि कबूतर को कोई रास्ते में पकड़ के मार दे, या वह दूसरे के घर चिठ्ठी पहुँचा दे। इस समस्या को दूर करने के लिए संदेश भेजने के काम मानव करने लगा, इसमें भी कई समस्याएं थीं उसके पास साधन नहीं था, अतः बहुत समय लगता था, इसके बाद घोड़ा, ऊँट, खच्चर आदि की सहायता संदेश भेजने की व्यवस्था की जाती रही, बाद में ट्रंककाल, डाकघर, आदि सम्प्रेशण माध्यम आए, इनमें भी समस्याएं थी तो voice mail, chat, conferencing आदि आए अर्थात् प्रत्येक रिसर्च में समस्या होगी तभी इसमें खोज होगी और विकास की सम्भावनाएं होंगी।

जब हमारे पास कोई समस्या होती है तो उसका समाधान ढूढ़ने के लिए हम क्रिया करते हैं। यह क्रियाएं व्यवस्थित (Systomatic) एवं अव्यवस्थित (Unsystematic) दो प्रकार की होती है–

- व्यवस्थित क्रिया (SystematicActivity)–जहाँ समस्या के समाध ाान की सम्भावनाएँ (Chance) अधिकतम (Maximum) हों।

➢ अव्यवस्थित क्रिया (Unsystematic Activity) जहाँ समस्या के समाधान की सम्भावनाएँ कम से कम (Minimum) होती हैं।

व्यवस्थित काम करने के लिए सुनिष्चित (well defined) पद (steps) होंगे और यदि पद होंगे तो इसकी कोई–न–कोई प्रक्रिया होगी। यह पद क्रम (Sequence) में होना जरूरी है, तभी वह प्रक्रिया व्यवस्थित (systematic) या वैज्ञानिक (Scientific) होगी। जैसे पेस्ट करने की एक प्रक्रिया होती है, रोटी बनाने की भी प्रक्रिया एक क्रम (Sequence) में होती है। अतः हम स्पश्ट कह सकते हैं कि–

"Research refers is a process when in activity or activities is are carried out systematically to find solution of a problem." (सनसनवाल, 2002–03)

Research दो षब्दों से मिलकर बना है, Re-बार–बार, Search–खोजना अर्थात सब दिषाओं में जाना (To go arround) या खोज करना (To Explore)।इसका उद्देष्य खोज की पुनरावृत्ति या अन्वेशण (Enquiry) होता है शोधकर्ता किसी अज्ञात विशय या तथ्य को बार–बार देखकर उससे सम्बन्धित आंकड़ों (Data) को एकत्र (Collect) करता है तथा उनके आधार पर परिणाम (Result) निकालता है।

रेडमैन एवं मुरे ने भी कहा है कि 'नवीन ज्ञान की प्रगति के लिए व्यवस्थित प्रयास ही शोध है।' (Research is systematized effort to gain new knowledge) – (पी॰एन॰ राय, 2003)

पी॰वी॰ यंग के अनुसार–'षोध एक ऐसी व्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या प्राचीन तथ्यों की पुश्टि की जाती है तथा उसके उन अनुक्रमों, पारस्परिक सम्बन्धों, कारणात्मक, व्याख्याओं तथा प्राकशतिक नियमों का अध्ययन करती है जो कि प्राप्त तथ्यों को निर्धारित करते हैं।'**(एच॰के॰ कपिल, 2001)**

(Research may be defined on the systematic method of discovering new facts or verifying old facts their sequences, interrelationship, casual explanations and the natural laws which govern them.)

हिन्दी भाषा में शोध षब्द 'षुद्ध' धातु से 'अ' प्रत्यय द्वारा उत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ है– 'संस्कार या षुद्धि या शोधन प्रक्रिया।

मनुस्मृति में इस षब्द का प्रयोग स्पशट करने या संदेह को दूर करने के अर्थ में हुआ है। जिस प्रकार द्रव्यों और धातुओं के षुद्धीकरण में एक निष्चित वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जाती है उसी प्रकार तथ्यों के षुद्धीकरण में भी एक निष्चित वैज्ञानिक दृश्टिकोण काम करता है, इसके फलस्वरूप ही सत्य उद्घटित होता है। इस सत्य को बाहर लाने वाले को शोधकर्ता (Researcher) या दर्शनाचार्य कहते हैं। दर्शनाचार्य का अर्थ है– दर्शन का विषेशज्ञ। अतः हम कह सकते हैं कि शोधकर्ता वह है जो किसी भी क्षेत्र में शोध करते हुए मौलिक कार्य/चिंतन की निरुपत्ति करता है तथा जिसके जीवन दर्शन में दार्शनिकता की झलक होती है।षोधार्थी की दृश्टि तत्तवान्वेशी/अन्वेशणात्मक (Explanatory/Exploratory) दार्शनिक की तरह होनी चाहिए, उसे नई व्याख्याओं के द्वारा मौलिक आयाम स्थापित करने चाहिए (बैजनाथ सिंहल, 2008)

शोध में नए तथ्यों का उद्घाटन और तथ्यों तथा सिद्वान्तों की व्याख्या के लिए नई दृश्टि स्पशट दिखनी चाहिए। इससे शोधार्थी की समालोचनात्मक दृश्टि और मूल्यांकन की क्षमता प्रकट होती है। मौलिक शोध के द्वारा ही कल्पनाशक्ति, सृजनात्मक षक्ति, अन्तदृश्टि/अन्तः प्रज्ञा, आलोचनात्मक चिंतन, तर्कशक्ति एवं परावर्ती षक्ति (Reflective Thinking) का विकास होता है, समाज का भला होता है। भारत में गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में भी शिक्षा को गुणात्मक बनाने, मौलिक शोध करने–कराने तथा प्रचार–प्रसार हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं–(आर०ए० षर्मा, 2006) यथा–

- विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) ने स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रम में एक विषिश्ट विशय का उच्च अध्ययन एवं शोध विधियों के प्रशिक्षण की बात कही। पी–एच०डी० के छात्रों का चयन अखिल भारतीय स्तर पर हो। पी–एच०डी० उपाधि लेने के बाद शोध हेतु इच्छुक छात्रों के लिए विश्वविद्यालय कुछ शोध षर्तें बनाएं। डी०लिट० और डी० एस० सी० की उपाधियाँ उच्च कोटि के प्रकाशन एवं मौलिक कार्य पर दी जाए। षिक्षकों द्वारा अपने शोध कार्य को नए विचार एवं नई विधियाँ प्रदत्त की जाएं।

- माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) ने शिक्षा सम्बन्धी कार्य, भारतीय स्थितियों एवं विद्यार्थियों की आवष्यकतानुरूप परीक्षणों के निर्माण हेतु केन्द्रीय शोध संस्था की स्थापना का सुझाव

दिया।

- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग, 1964–66) ने अपने प्रतिवेदन का प्रारम्भ 'भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में किया जा रहा है' 'The Destiny of India is being shapped in her Classroom' से किया है। शिक्षा सत्य के मार्ग का अनुसरण तथा सद्गुणों का प्रशिक्षण कहा है इस कथन में भी गुणात्मक शिक्षा की झलक स्पश्ट प्रदर्षित हो रही है। शिक्षा को गुणात्मक बनाने के लिए गुणात्मक शोध की आवष्यकता होती है।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) में उच्च शिक्षा में मौलिकता एवं सत्य की खोज के लिए अनुसंधान व शोध कार्यों को बढ़ावा तथा अच्छे विद्वान तथा अनुभवी लेखकों को आकर्षित करके उच्च स्तर की पुस्तकों के प्रकाशन का सुझाव दिया गया है।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1979) ने विश्वविद्यालयों में मौलिक तथा उपयोगी शोध कार्यों को बढ़ावा देने का सुझाव दिया है।

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है कि गुणात्मक जनशक्ति का विकास शोध एवं विकास के माध्यम से करना है। शोध कार्यक्रमों के परिचालन तथा संचालन पर समिति ने महत्व दिया।

शोध अध्ययन–मनन एवं लेखन का कोई सामान्य क्षेत्र नहीं है। जिसमें कि चोर, उचक्के, सामान्य बुद्धि अल्प ज्ञान वाले लोग हाथ आजमाएं। जो लोग अंतदृश्टि से षून्य होकर मात्र बाह्य वैज्ञानिक तकनीक का पालन कर लेने को शोध मानते हैं, वह वास्तव में शोध के अर्थ से अनभिज्ञ ही कहे जाएंगे। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में इस सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए लिखा गया है कि–''...यदि कोई यह समझे कि वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसा नियम या नियमों का समूह है जिसका अनुसरण करते हुए एक साधारण बुद्धि मानव यथा–इच्छा प्रकृति के क्षेत्र में शोध कर सकता है तो हमें मानना होगा कि वैज्ञानिक पद्धति होती ही नहीं, क्योंकि वैज्ञानिक शोध के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात एक ऐसे सिद्धान्त की परिकल्पना है जो परीक्षा में पूर्ण उत्तर दे सके। इसे (परिकल्पना को) नियमबद्ध नहीं किया जा सकता है।'' (बैजनाथ सिंहल, 2008)

उच्च शिक्षा के मुख्यतः तीन स्तम्भ होते हैं– शिक्षण (Teaching), शोध (Research), एवं प्रसार (Extension) ।इन तीनों स्तम्भों में काफी लम्बे समय से गड़बड़ी चल रही है। शिक्षण का स्तर जैसा चल रहा है उससे तो हम सभी परिचित ही हैं। प्रसिद्ध षैक्षिक संस्थानों को छोड़ दें तो बाकी संस्थानों में तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि यहाँ पूरे वर्श सांस्कृतिक गतिविधियों, कार्यक्रमों व छात्रवृत्ति मेंला एवं सरकारी योजनाओं का ही प्रचार–प्रसार होता रहता है। शिक्षण दिवस (180 दिन) नाम मात्र के लिए निर्धारित तो किए जाते हैं परन्तु कक्षा में छात्र–छात्राएं एवं षिक्षक यदा–कदा ही प्रकट होते हैं। इस प्रकार की गतिविधियों एवं षैक्षिक उदासीनता के कारण शिक्षण–अधिगम का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। षैक्षिक गुणवत्ता पर प्रष्न चिह्न खड़ा हो गया है। आज के समय में कुछ लोग मौलिक चिंतन के स्थान पर रेडीमेड, डिब्बाबंद पी–एच॰डी॰ डिग्री, शोध पत्रों, पुस्तकों आदि के माध्यम से उस मुकाम को प्राप्त कर ले रहें जिसके वह काबिल भी नहीं हैं। युवा वर्ग नौकरी एवं षिक्षक वर्ग प्रमोषन प्राप्त करने के लिए जैसे भी अनैतिक हथकण्डे अपना सकता है अपना रहा है ऐसे कृत्यों से शोध का स्तर एवं गुणवत्ता दोनों प्रभावित हुए हैं। आज के समय में षैक्षणिक शोध सबसे फलता–फूलता व्यवसाय बन गया है। सेमीनार, कान्फ्रेंस, पत्रिकाओं द्वारा ऐसे शोध कार्यों का प्रचार–प्रसार (Extension) हो रहा है जो कि स्तरहीन है, कॉपी–पेस्ट है, चोरी की है, यदि ऐसा कहें कि 'नई बोतल में पुरानी षराब है' तो अतिष्योक्ति नहीं होगी। मीडिया के युग में ऐसे लोग भी लेखक हो गए जो एक प्रार्थना–पत्र लिखने में भी बगलें झाकते हैं। इंटरनेट के माध्यम से ई–बुक, ई–जर्नल एवं मानकीय सरकारी खुले ई–प्लेटफार्म एवं स्तरहीन साइट आदि का सर्फिंग कर विशय–वस्तु का कॉपी–पेस्ट कर, नए–नए लेखकों, शोधकर्ताओं एवं प्रकाषकों का आए दिन उदय हो रहा है। इस संदर्भ में 'अमेरिकन एजूकेषनल रिसर्च एसोसिएषन की वार्शिक सभा में प्रस्तुत हजारों आलेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'षैक्षणिक अनुसंधान एक फलता–फूलता व्यवसाय है। निष्चित रूप से इस क्षेत्र में इतना काम पहले कभी नहीं हुआ, जितना इन दिनों हो रहा है।'–(पॉल स्मेयर्स, 2006)

पहले न तो ई–जर्नल्स व ई–पुस्तकें, यूजीसी अनुमोदित जर्नल्स होते थे और न ही उनके आइएसएसएन नम्बर व आईएसबीएन नम्बर, लेकिन फिर भी शोध का स्तर काफी हद तक संतोशजनक था, पवित्र मंषा थी व सृजनात्मक चिंतन व लेखन था। आज यह सब कुछ होते हुए भी हमारी आँखे मौलिक शोध कार्य को तलाषती हैं। ऐसा नहीं है कि शोध की

गुणवत्ता मे एकाएक कमी आ गई हो। इस कमी के लिए राजनैतिक व्यवस्था सरकारी नीतियाँ एवं आदेश भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। यूजीसी ने समय–समय पर यथा–वर्श 1991 वर्श 2002 फिर पुनः सषर्त वर्श 2009 तक पंजीकृत पी–एच॰डी॰ डिग्री को नेट के समकक्ष मान्यता प्रदान की, जिससे इन वर्शों में पी–एच॰डी॰ डिग्री धारकों की बाढ़ सी आ गई। ठेके पर थीसिस लिखने की खबरें, समाचार पत्रों में प्रकाषित हुई। इस प्रकार के शोध कार्यों को रातोंरात कॉपी–पेस्ट कर विश्वविद्यालयों में जमा करा दिया गया। छठे वेतन आयोग में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में नियुक्ति एवं प्रमोषन के लिए यूजीसी ने अकादमिक उपलब्धि सूचक (API, 2010) लागू किया, इससे लोगों में शोध पत्र, पुस्तकें, सम्पादित पुस्तकें छपवाने की होड़ सी मच गई। ऐसे शोध का प्रचार–प्रसार तो हुआ, लेकिन मात्र तीन लोगों तक ही– शोधार्थी, सुपरवाइजर एवं टाईपिस्ट। सरकार के ढुलमुल रवैये एवं आंषिक दण्डात्मक व्यवस्था ने भी विश्व स्तर पर भारतीय शोध की खूब फजीहत कराई। वर्श 2002 में कुमायुँ विश्वविद्यालय नैनीताल के तत्कालीन कुलपति एवं उनके शोध छात्र ने एक जर्मन नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक रैनेटा कैलोस के शोध पत्र को चोरी कर अपने नाम से छपवा लिया। उस समय दुनिया के 10 नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिकों ने भारत के तत्कालीन राश्ट्रपति को चिट्ठी लिखी कि आखिर आपके देश में ऐसा व्यक्ति कुलपति कैसे रह सकता है, जो शोध पत्र चोरी का आरोपी हो। तब सरकार ने बाध्य होकर कुलपति से त्यागपत्र लिया।

वर्श 2018 में केंद्रीय मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री डा॰ सत्यपाल सिंह ने स्वीकारा कि साहित्यक चोरी (Plagarisn) से सम्बन्धित तीन मामले यूजीसी को मिले हैं। जिनमें पांडिचेरी विश्वविद्यालय के कुलपति, वाराणसी के महात्मा गांधी काषी विद्यापीठ के एसोसिएट प्रोफेसर एवं लखनऊ के ए॰पी॰जे॰ अब्दुल कलाम तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति के नाम षामिल हैं।

समाचार पत्रों में शोध की चोरी या चोरी की शोध जैसी विभिन्न खबरें प्रकाषित होती रहती हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति को प्लेजरिज्म के कारण स्थानीय अदालत ने गिरफ्तार करने का आदेश दिया तथा जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय के असिस्टेंट प्रोफेसर की नियुक्ति को प्लेजरिज़्म के कारण चुनौती दी गई –(मधुसंधु, 2018), लखनऊ विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर पर किसी अन्य शोध की चोरी करने का आरोप लगा – (अमर उजाला, 2019)

आई॰वी॰आर॰आई बरेली के वैज्ञानिक की शोध सामग्री चोरी की खबर समाचार पत्र में प्रकाषित हुई– (अमर उजाला, 2013)

गुरुनानक देव विश्वविद्यालय अमश्तसर की क्लर्क अविन्दर कौर की थीसिस में चोरी की सामग्री पाई जाने पर उसकी नौकरी एवं डिग्री रद्द कर दी गई–(मधु संधु, 2010)

सीडीआरआई के बाद बीबीयू में साहित्य चोरी (नवभारत टाइम्स, 2019)

साहित्यक चोरी / अपराध (Plagarism Theft/Betrayal/ Dishonesty)

प्लेजरिज्म षब्द लैटिन भाषा के षब्द–Plagiarisu or Kidnapper से बना है जिसका अर्थ है– षब्द चुराना एक व्यक्ति जिसने षब्द चुरा लिए (A person who stole the word)

'किसी दूसरी की भाषा, विचार, षैली आदि का अधिकांषतः नकल करते हुए अपनी मौलिक कृति के रूप में प्रकाषित करना प्लेजरिज़्म कहलाता है।'

'Plagarism is the wrongful appropriation and stealing & publication of another author's language, thoughts idea or expression and the representation of them as one's own original work'.- (wikipedia Plagarism)

अमेरिकन हेरिटेज डिक्षनरी में प्लेजरिज़्म को परिभाशित करते हुए कहा गया है कि– 'किसी अन्य लेखक के विचारों तथा भाषा का अनाधिकश्त उपयोग या नकल करके उसको अपनी मूल कशति के रूप में प्रस्तुत करना है।' –(मधु संधु, 2018)

Emily Listman लिखते हैं कि 'प्लेजरिज़्म किसी दूसरे के षब्दों को कॉपी करके सीधे संदर्भ (Reference) करने से लेकर या किसी दूसरे के काम विचारों या विष्लेशण को, उन्हें श्रेय (Credit) दिए बिना प्रयोग तक की रेंज में हो सकती है। अगर आप किसी के काम का संदर्भ तो देते हैं; लेकिन उन्हें श्रेय देना भूल जाते हैं तो भी आप से अनजाने में प्लेजरिज़्म हो सकती है।' (wikiHow)

आज बौद्धिक जगत में प्लेजरिज़्म की समस्या बढ़ती जा रही है किसी व्यक्ति की मौलिक रचना खोज, चिंतन एवं विचारों अर्थात बौद्धिक

सम्पदा (Intellectual Property) की चोरी गुपचुप तरीके से की जा रही है। अब तक माना जाता था कि यथा–

न चोराहार्यम् न च राजहार्यम्, न भ्रातभभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कभते वर्धत एव नित्यं, विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।।

(अर्थात जिसे न चोर चुरा सकते हैं न राजा हरण कर सकता है, न भाई बँटा सकते हैं, जो न भार स्वरूप ही है, जो नित्य खर्च करने पर भी बढ़ता है, ऐसा विद्याधन सभी धनों में प्रधान है) लेकिन इसके उल्टे अब अल्प ज्ञानी कौए हंसो की सभा में बुद्धिजीवी होने का दावा ठोक रहे हैं, हींग लग रही है न फिटकरी फिर भी रंग चोखा हो रहा है। ऐसी स्थिति में वास्तविक शोध व शोधकर्ताओं को भी लोग संदेह की दृश्टि से देखते हैं।

प्लेजरिज़्म रोकने हेतु सरकारी प्रयास एवं व्यवस्था–

भारत सरकार ने कॉपी राइट अधिकारों की रक्षा के लिए कॉपी राइट एक्ट 1957, यथा संषोधन 1983, 1984, 1992, 1994, 2010, एवं 2012 पारित किया, जिसका उद्देष्य वाणिज्यिकरण को बढ़ावा देना नहीं बल्कि लेखकों, प्रकाषकों तथा उपभोक्ताओं सभी के हितों में उचित संतुलन स्थापित करना था। कम्प्यूटर, इण्टरनेट आदि तकनीकी साधनों के इस दौर में लेखकों और प्रकाषकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए इसमें यथा समय संषोधन भी किए हैं।

यूजीसी भी कहती है कि '...कृप्लेजरिज़्म के दुश्परिणामों को स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर लेखन, शोध और अनुसंधान में ईमानदारी और जागरुकता लाई जाए। इस विशय पर सेमीनार वर्कषॉप, भाशण करवाएं जाएं। प्लेजरिज़्म का पता लगाने और रोकने के लिए षैक्षिक और अनुसंधान केन्द्रों में अलग तंत्र स्थापित करने, आधुनिक तकनीकी टूल्स के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की बात भी कही गई है।' (मधु संधु, 2018)

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने यूजीसी (उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अकादमिक और साहित्य चोरी की रोकथाम को प्रोत्साहन) विनियम–2018 को मंजूरी दी है जिसके अन्तर्गत दण्ड का भी प्रावधान है यथा–

छात्रों पर कार्यवाही

- लेवल 0 : 10फसदी तक समानता पाये जाने पर, किसी

प्रकार के दण्ड का प्रावधान नहीं है।

- लेवल 1:10 से 40 प्रतिषत प्लेजरिज़्म– इस मामले में छात्र को किसी भी प्रकार से कोई अंक या क्रेडिट प्रदान नहीं किया जाएगा। साध ही छह महीने के अंदर दोबारा साहित्यिक चोर से मुक्त शोध सामग्री जमा कराने का मौका दिया जाएगा।
- लेवल 2 : 40 से 60 प्रतिषत प्लेजरिज़्म– ऐसे मामले में संबंधित छात्र को कोई अंक या क्रेडिट प्रदान नहीं किया जाएगा। साथ ही शोध पुनः जमा करने के लिए अधिकतम 18 महीने का समय दिया जाएगा।
- लेवल 3 : 60 प्रतिषत से अधिक की प्लेजरिज़्म– ऐसे प्रकरण में संबंधित छात्र को कमेटी द्वारा कोई अंक या क्रेडिट प्रदान किया जाएगा। साथ ही मामले की गंभीरता को देखते हुए रजिस्ट्रेषन भी रद्द कर दिया जाएगा।

प्रोफेसर्स पर कार्यवाही

- लेवल 0 : 10 फीसदी तक समानता या मामूली समानता पाए जाने पर किसी भी प्रकार का दण्ड नहीं।
- लेवल 1 : 10 से 40 प्रतिषन प्लेजरिज़्म के मामले में मैनूस्क्रिप्ट (हस्तलिपि) वापस लेने को कहा जाएगा। साथ ही किसी भी प्रकार के प्रकाशन पर एक वर्श का प्रतिबंध।
- लेवल 2 : 40 से 60 प्रतिषत प्लेजरिज़्म के मामले में मैनूस्क्रिप्ट वापस लेने को कहा जाएगा। किसी भी प्रकार के प्रकाशन पर दो वर्श के प्रतिबंध के साथ ही एमफिल या पीएचडी स्कॉलर के गाइड के रूप में कार्य करने पर प्रतिबंध।
- लेवल 3 : 60 से अधिक की प्लेजरिज़्म के मामले में अगले दो साल तक वेतनमान में वश्द्धि पर रोक। प्रकाशन के लिए दी गई मैनूस्किप्ट स्वीकार नहीं की जाएगी। तीन वर्श तक प्रकाशन पर प्रतिबन्ध व एमफिल या पीएचडी स्कॉलर के गाइड के रूप में कार्य करने पर 3 वर्श का प्रतिबंध। बार–बार गलती करने पर सेवा समाप्त करने का प्रावधान।

छात्रों के निर्देश

शोध पर थीसिस डिजर्टेषन या अन्य कोई दस्तावेज जमा करने से पूर्व छात्र को इस आषय का षपथ पत्र देना होगा कि उसका शोध कार्य मौलिक है, प्लेजरिज़्म सॉफ्टवेयर से इसकी जाँच कर ली गई है। सुपरवाइजर भी खुद षपथ पत्र देगा कि शोधार्थी का शोधकार्य चोरी मुक्त है।

प्लेजरिज़्म को दूर करने के उपाय

प्लेजरिज़्म को दूर करने के लिए गोल्डन रूल का पालन किया जाए अर्थात् मूल लेखक को विशय वस्तु (Content/Text) लिखते समय श्रेय दिया जाए एवं अन्त में मानकीय संदर्भ प्रणाली का प्रयोग करते हुए उसे उचित स्थान दिया जाए।

1. उचित साइटेषन प्रणाली का प्रयोग करें (Using a Citation System)

   - एक उपयुक्त साइटेषन सिस्टम को चयन करें या पता लगाएं कि आपको किसका प्रयोग करना है।

     -MLA (Modern Language Association)-साहित्य, भाषाओं, एवं कला से जुड़े विशयों में उपयोगी।

     -APA (American Psychological Association)- सामाजिक विज्ञान, शिक्षाषास्त्र, मनोविज्ञान अर्थात सामाजिक एवं व्यवहारिक विज्ञान में उपयोगी।

     -Chicago (षिकागो)– ऐतिहासिक लेखन में उपयोगी।

     -CSE (Council of Science Editors)- विज्ञान आधारित लेखन में उपयोगी।

   - सोर्सेज को सही तरीके से स्पश्ट करने के लिए, अपनी Citation style के आधुनिक संस्करण का संदर्भ दें। इसमें पुस्तकें, पुस्तक के कुछ विषेश अध्ययन, जर्नल्स लेख, बेबसाइट, इंस्ट्रक्टर के लेक्चर्स, ई–पुस्तकें ऐतिहासिक अभिलेख, फिल्मस इत्यादि षामिल हों।

   - अपने लेख के अन्त में साइटेड कार्य की सूची दें अर्थात

संदर्भ दें।

2– सोर्स की हुई विशय वस्तु को ध्यानपूर्वक प्रकट करें (Featuring Sourced content Properly)

- एक सोर्स की पहचान करें और एक सटीक कोटेषन बनाने के लिए प्रत्येक षब्द को दोहराएं। उदाहरणतः स्मिथ (1966) ने अपनी पुस्तक 'The Environment and our youth' में कहा है कि ''The habits of young people will dictate hope our planet fares in the futures.''
- साइटेषन के बाद सीधे संदर्भ और कोटेषन का पालन करें–लेखन का नाम और इसे रिफर करने के बाद ब्रेकेट्समें कोट की हुई विशय वस्तु का पेज नम्बर, और उसके शोध कार्य की प्रकाशन तिथि लिखें।
- विवरण (Paraphrasing) देते समय वाक्य रचना, भाषा, और विशय वस्तु की लेखन शैली बदलें।
- संक्षिप्तीकरण के लिए अपनी सोर्स विशय–वस्तु (Material) की संक्षिप्त व्याख्या में प्रस्तुत करें–सोर्स विशय का संक्षिप्तीकरण करने के लिए कोटेषन मार्क्स का प्रयोग न करें।
- सोर्स के साइटेषन को बाद में षामिल/लिखने के स्थान पर शोध पत्र लिखते समय ही उसे तुरन्त साइट करें।
- किसी भी विशय–वस्तु/अवतरण को अच्छे तरह से पढ़ें ताकि आप उसको प्रयोग करने से पूर्व अच्छी तरह समझ सकें।

3– मौलिक लेख तैयार करना (Creating Original Contant)

- अपना शोध पत्र/असाइनमेंट स्वयं लिखें।
- स्वयं के द्वारा लिखी गई पुस्तक/षोध पत्र का पुनः प्रयोग करने हेतु प्रकाषक से अनुमति लें।
- नया शोध पत्र लिखने से पूर्व मूल लेखक एवं प्रकाषक की अनुमति लें।
- दूसरे की विशयवस्तु को अपनी स्वयं की विशय–वस्तु की

तरह प्रयोग न करें।

- शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए स्वयं को समय दें या शोध पत्र निर्धारित तिथि में प्रकाशन हेतु भेजने से काफी समय पहले ही शोध पत्र लेखन का कार्य प्रारम्भ दें।
- पूर्णतया प्लेजरिज़्म डिटेक्टिंग सॉफ्टवेयर पर ही निर्भर न रहें।

यूजीसी ने प्लेजरिज़्म को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की दण्डात्मक व्यवस्था के साथ तकनीकी टूल्स के प्रयोग एवं उसके उचित प्रशिक्षण की भी संस्तुति की है। परिणामस्वरूप विभिन्न विश्वविद्यालय सॉफ्टवेयर के माध्यम से विभिन्न भाषाओं में भी लिखी थीसिस को चैक करा रहे हैं और प्लेजरिज़्म की शिकायत मिलने पर Institutional/Departmental Academic Integrity Panal (DAIP/IAIP) गठित किया है। प्लेजरिज़्म को डिटेक्ट करने के लिए हम इस प्रक्रिया को अपनाते हैं–

1. Upload a Documents
2. Scan it for Plagiarism
3. Review a Report- प्लेजरिज़्म प्रतिषत का पता करना ।
4. Download PDF report OR e-mail it to numerous addressess.

प्लेजरिज़्म डिटेक्षन सॉफ्टवेयर–

- शोध षुद्धि
- टरनिटिन
- URKUND
- EDUBIRDIE
- BibMe
- Quetext
- Plag Scan
- Zotero
- VIPER
- etc.

यूजीसी ने शोध की गुणवत्ता को बनाए रखने/बढ़ाने के लिए 2 जून 2017 को एक 32,659 यूजीसी अनुमोदित शोध पत्रों की सूची प्रकाषित की, इस सूची मे बाद में और शोध पत्रों को भी जोड़ा गया। पुनः 14 जून 2019 को 'केयर रेफ्रेंस लिस्ट ऑफ क्वालिटी जर्नल' नामक एक सूची जारी की, जिसमें कि विज्ञान षाखा के 333, सामाजिक विज्ञान के 266, कला एवं मानविकी के 287, भारतीय भाषाओं के 171 एवं बहुषाखीय 35, शोध जर्नल्स सम्मिलित हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं गुणात्मक शोध हेतु यूजीसी निरन्तर प्रयासरत एवं प्रतिबद्ध है आवष्यकता है कि हम मौलिक शोध करें, चिंतन करें तथा उसका ही प्रचार–प्रसार करें ताकि समाज का भला हो सकें।

संदर्भ

सीडीआरआई के बाद बीबीयू में भी साहित्यक चोरी, शीर्षक समाचार,अमरउजाला (नगरसं) लखनऊ, 23 .09. 2019

आईवीआरआई वैज्ञानिक की शोध सामग्री चोरी, शीर्षक समाचार, अमर उजाला (नगर संज), बरेली , 25.09.2013

मधु संधु,(2018),Blog&madhu&sd19@yahoo-co-in

राय, पी०एन०(2002), अनुसंधान परिचय, आगरा ; लक्ष्मी नारायण पब्लिषर्स

संसंवाल,डी०एन०(2002–03), शिक्षा में शोध एम० एड० नोट्स; देवी अहिल्या वि० वि० इंदौर

सिंघल,बी०(2008), शोध स्वरुप एवं मानक व्यवहारिक कार्य विधि ; नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

षर्मा, आर०ए०(2009), भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास : मेरठ, लाल बुक डिपो

शोध में चोरी करने पर जा सकती है षिक्षकों की नौकरी, रद्द होगी छात्रों–छात्राओं का रजिस्ट्रेषन, द वायर,04.08.2018 ˡ

स्मेयर्स,पी०(2006), व्यर्थ शोध,निरर्थक सिद्धांत और जोखिम में शिक्षा शिक्षा विमर्ष, जुलाई–अगस्त 2008, प्रश्ठ 24–37, संदर्भ दृ भारतीय आधुनिक शिक्षा,नई दिल्ली ; एनसीआरटी, वर्श–32,अंक–1, 2011, प्रश्ठ–97

https://hi.wikipedia.org/wiki

https://hindi.webdunia.com/my-blog/saahity-kee-choree-se-sastee-lokapriyata-118080200062_1.html

https://hi.wikihow.com

https://www.rachanakar.org/2018/05/blog-post_665.html

http://thewirehindi.com/53120/ugc-brings-new-anti-plagiarism-

policy-higher-education/
https://navbharattimes.indiatimes.com/education/education-news/plagiarism-to-cost-teachers-jobs-students-registration/articleshow/65267790.cms
https://navbharattimes.indiatimes.com/metro/lucknow/other-news/plagiarism-in-bbau-after-cdri/articleshow/71248271.cms
https://www.ugc.ac.in

◆◆◆

डिजिटल शिक्षा एवं विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास

डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार[1] एवं डॉ0 शशि सिंह[2]
[1]एसोसिएट प्रोफसर, अध्यापक शिक्षा विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर
[2]एसोसिएट प्रोफसर, शिक्षा विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है शिक्षा की प्रक्रिया सम्भवतः उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मानव जीवन। शिक्षा देने और ग्रहण करने का कार्य आदि काल से ही किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। शिक्षा शास्त्री विलियम ब्वायड के शब्दों में –''ऐतिहासिक काल से बहुत पहले मानव जब धीरे–धीरे जंगली जीवन छोड़कर, सामाजिक जीवन की ओर बढ़ रहा था, सीखने का कार्य निश्चित ही अधिक अंश में अनुभव और अनुकरण पर आश्रित था। किन्तु प्रस्तर युग में किसी न किसी प्रकार की व्यवस्थित शिक्षा थी। इसका आभास उस काल से सम्बन्धित पशुओं के उन सुन्दर चित्रों से मिलता है जो सींगों पर, हाथी दाँत या गुफा की दीवारों पर खुदे हुए पाये गये हैं।'' इस प्रकार शिक्षा का इतिहास मनुष्य के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा ही मनुष्य के आचार–विचार तथा रहन–सहन में परिवर्तन और परिमार्जन सम्भव हुआ है। आदि मानव के जीवन की तुलना में आज के मानव के सभ्य और सुसंस्कृत जीवन का श्रेय शिक्षा को ही दिया जाता है। भारतीय संस्कृति ज्ञान को मनुष्य के तीसरे नेत्र के रूप में स्वीकार करती है –'ज्ञानं तृतीय मनुजस्य नेत्रं।'' शिक्षा द्वारा ही मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति तथा बुद्धि का परिमार्जन होता है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य विवेकशील प्राणी के रूप में अन्य समस्त प्राणियों से विषिष्ट और सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर सका है। शिक्षा अपने परिष्कृत एवं शुद्ध रूप में मानव को विवेकशील बनाती है। शिक्षा के माध्यम से ही संसार की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवम् आध्यात्मिक उन्नति सम्भव हुई है। शिक्षा व्यक्ति के लिए वह पौष्टिक भोजन है, जिससे उसका शारीरिक, मानसिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक विकास होता है। जॉन डी0वी0 के शब्दों में ''भोजन की जो महत्ता और उपयोगिता शरीर के लिए है। वही शिक्षा की सामाजिक जीवन के लिए है।'' मानव जीवन में शिक्षा का महत्व बतलाते हुए लॉक कहते हैं –''जिस प्रकार पौधों का विकास खेत की अच्छी जुताई से होता है, उसी प्रकार मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा होता है।'' शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन में जिन व्यक्तियों ओर प्राणियों के सम्पक्र में आता है, उनसे कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अथवा बालक के सर्वागींण विकास तथा

समाजीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्रो एवम् क्रो (1954)' शिक्षा के महत्व पर प्रकाश ड़ालते हुए कहते हैं कि ''शिक्षा व्यक्तिकरण एवं समाजीकरण की वह प्रक्रिया है, जो व्यक्ति की व्यक्तिगत उन्नति तथा समाजोपयोगिता को बढ़ावा देती है।'' शिक्षा के व्यापक अर्थों में यह समस्त संसार शिक्षा क्षेत्र है और प्रत्येक व्यक्ति, बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरूष सभी शिक्षार्थी हैं। ये सब जीवन–पर्यन्त कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं। अतः व्यक्ति का समस्त जीवन उसका शिक्षा–काल है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति जहाँ स्वयं दूसरों से कुछ सीखता है, वहाँ दूसरों को भी कुछ न कुछ शिक्षा देता है। शिक्षा के व्यापक स्वरूप के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तत्व आते हैं। आदि काल से मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण किसी न किसी रूप में प्रकृति व अपने पर्यावरण से शिक्षा प्राप्त करता आ रहा है। शिक्षा देने की प्रमुख प्रणालियों में एक औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ गुरूकुल पद्धति से माना जाता है, इसमें षिष्य गुरू के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करता था। समय के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र में मकतब, मदरसे, मठ आदि संस्थायें आयीं। प्रारम्भ में इनमें शिक्षण बाल केन्द्रित न होकर शिक्षक केन्द्रित था, अर्थात् एक ज्ञानी व्यक्ति दूसरे अज्ञानी व्यक्ति को ज्ञान प्रदान करता था। वर्तमान समय में विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रमुख औपचारिक साधन हैं। शिक्षा की बढ़ती माँग के साथ ही एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आज शिक्षा शिक्षक केन्द्रित न रहकर बाल केन्द्रित हो गई है, तथा शिक्षण में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि शिक्षार्थी क्या और कैसे पढ़ना चाहता है? बालक के सर्वागींण विकास में शिक्षक द्वारा शिक्षण के अतिरिक्त विभिन्न सहायक माध्यमों का उपयोग महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। वर्तमान परिदृष्य में सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने तथा बदली परिस्थितियों के अनुसार उन्हें शैक्षिक रूप से आत्म निर्भर बनाने की है। इस परिदृष्य तथा बदलती परिस्थितियों के अनुसार सभी को शिक्षा मात्र औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से प्रदान करना सम्भव नहीं है इसके लिए शिक्षा देने के वैकल्पिक व सहायक स्रोतों की पहचान व उनके उपयोग की सम्भावनाएं तलाशना समय की अनिवार्य आवश्यकता है। इस चुनौती का सामना करने की सम्भावनायें आधुनिक सूचना व प्रौद्योगिकी के प्रयोग एवं दूरस्थ शिक्षा में निहित हैं।

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि शिक्षा केवल विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के माध्यम से ही प्रदान की जाती है। परन्तु वास्तविकता यह

है कि विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के अतिरिक्त अनेक साधनों के माध्यम से भी शिक्षा प्रदान की जाती है। परिवार, समुदाय, धर्म, राज्य, पुस्तकालय, पुस्तक, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, आडियो कैसेट, वीडियो कैसेट, सी0डी0, टेलीकान्फ्रेसिंग एवम् इन्टरनेट आदि ऐसे साधन हैं जो शिक्षा को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। जहाँ एक ओर शिक्षार्थियों की मांगे भिन्न–भिन्न हैं तथा उनकी कुशलता व उच्च शिक्षा की आवश्यकता अलग–अलग है वहीं औपचारिक शिक्षा प्रणाली की अपनी सीमाएं भी हैं। इन्हीं सीमाओं को लचीलापन प्रदान करने के लिए डिजीटल शिक्षा प्रणाली का अविर्भाव एक पूरक के रूप में हुआ है।'' शिक्षा में नयी प्रवृत्तियों के उपयोग (खोज) की आवश्यकताओं पर बल देते हुए छाबड़ा (2005) कहते हैं ''आज समय की माँग है कि परम्परागत चलती रहने वाली शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक और विद्यार्थी की भूमिकाओं को पुनर्परिभाषित किया जाये। कक्षा में शिक्षण का दायित्व केवल शिक्षक का ही न हो, बल्कि विद्यार्थी को सीखने के दायित्व की ओर भी प्रेरित करना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा में नवाचार लाने की आवश्यकता है।'' वर्तमान शिक्षा प्रणाली में डिजीटल शिक्षा एक ऐसा ही नवाचार है। डिजीटल शिक्षा में अधिगम का स्थान, पहुँच, विषयों का चयन, अनुदेशन रचनाओं में भिन्नता, शिक्षा यन्त्रीकरण के प्रतिपादन में लचीलापन और छात्रों को अपनी क्षमता के अनुसार सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है। डिजीटल शिक्षा में बहु–माध्यमों का प्रयोग किया जाता है, जैसे मुद्रित सामग्री, श्रव्य–दृष्य कैसेट एवं सी0डी0, रेडियो, दूरदर्शन कार्यक्रम, कम्प्यूटर एवम् इन्टरनैट आदि।' डिजीटल शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले संचार माध्यमों में रेडियो, टेलीविजन एवं इन्टरनेट का महत्वपूर्ण स्थान है। विज्ञान एवम् तकनीकी की इस सदी में तकनीकी के प्रयोग के महत्व को प्रतिपादित करते हुए ब्रुक्स (1975) कहते हैं कि ''आज हम तकनीकी के प्रयोग से मुँह नहीं मोड़ सकते, वरन् इसको उचित रूप से प्रयोग करते हुए विकास करना ही हमारी नियति है।'' विज्ञान एवं तकनीकी के युग में शिक्षा में ऑडियो कार्यक्रमों के उपयोग सम्बन्धी एक शोध में सागर (2006) प्रतिपादित करते हैं कि ''ऑडियो कार्यक्रम जहाँ एक ओर (बच्चों) शिक्षार्थियों की विषय सीखने में रूचि जगाते हैं वहीं रोचक ढंग से ज्ञानवर्धन भी करते हैं। महापुरूषों की जीवनी, जीवन की घटनाओं आदि को सुनकर ज्ञान में वृद्धि के साथ नैतिक मूल्यों के विकास का अवसर भी मिलता है, अवलोकन क्षमता बढ़ती है। तथा विविध गतिविधियों द्वारा शिक्षा को बहुआयामी बनाने में मदद मिलती है।'' विज्ञान एवम् तकनीकी के समुचित प्रयोग पर आधारित डिजीटल शिक्षा शैक्षिक व सामाजिक विकास में एक महत्वपूर्ण सहयोगी है। शिक्षा में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के महत्व पर

प्रकाश ड़ालते हुए गर्ग (2005) स्वीकारते हैं ''आज सूचना एवं प्रौद्योगिकी के युग में शिक्षा को गुणवत्ता–पूर्ण, सहज एवम् सुलभ बनाने हेतु सूचना एवं प्रौद्योगिकी का बड़ी मात्रा में सफल प्रयोग हो रहा है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय तथा इसरो ने शिक्षा समर्पित उपग्रह एजुसेट चलाने के अभूतपूर्व निर्णय द्वारा शिक्षा प्रसार की व्यापक सम्भवनाएं व्यक्त कर सभी के लिए शिक्षा तथा सभी प्रकार के शिक्षण–प्रशिक्षण को साकार करने की आशा जतायी है। डिजीटल शिक्षा में संचार माध्यमों विशेष रूप से इन्टरनेट, रेड़ियों एवं टेलीविजन कार्यक्रमों के बढ़ते प्रभाव ने औपचारिक शिक्षा के विकल्प के रूप में स्थापित होने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।'' इस दिशा में एजुसेट के उपयोग की सम्भावनाओं को रेखांकित करते हुए मिश्र (2005) कहते हैं कि ''वर्तमन परिदृष्य में सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने तथा बदलती परिस्थितियों के अनुसार उन्हें शैक्षिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की है परन्तु इस चुनौती का सामना मात्र औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से करना संभव नहीं है। इसके लिए शिक्षा देने के वैकल्पिक स्रोतों की पहचान व उनके उपयोग की संभावनाएं तलाशना महत्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में एजुसैट एक अभिनव प्रयोग है।'' वस्तुतः आज इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार तथा टेलीकान्फ्रेसिंग के नवाचारी प्रयोगों से शिक्षा में परिवर्तन अनिवार्य एवम् अपेक्षित हैं। वेब– आधारित तथा इन्टरनैट–संवर्द्धित नाना प्रकार के डिजीटल शैक्षिक कार्यक्रम उपलब्ध हैं। आज आवश्यकता इस बात की है, कि विद्यार्थियों के मूल्यों के उन्नयन हेतु विभिन्न संचार माध्यमों का प्रयोग एवम् अभिमुखीकरण कैसे हो? शिक्षण एवम् अधिगम की गुणवत्ता सुधारने तथा इनके प्रति पहुँच एवं समानता बढ़ाने में संचार तथा 'टैक्नालॉजी' विशेष रूप से प्रभावी है। व्यापक अनुसंधान द्वारा अब यह भी स्थापित है कि शिक्षण में नाना प्रकार के माध्यमों तथा नाना प्रकार की शैक्षणिक सामग्रियों का आदान–प्रदान अथवा संयुक्त प्रयोग अन्योन क्रियात्मक बहुसंचार सहयोग के रूप में शिक्षण अधिगम प्रक्रम को सुदृढ़ एवम् परिपक्व बनाता है। इलेक्ट्रॉनिक संचार शिक्षण तथा प्रिंट माध्यम शिक्षण में परस्पर सहयोग बनाये रखने से शिक्षण–अधिगम की गुणवत्ता में निखार आता है और अध्ययन का प्रभाव भी स्थायी होता है। वस्तुतः डिजीटल शिक्षा ने इस तथ्य को आत्मसात् कर लिया है और इसी कारण डिजीटल शिक्षा विद्यार्थी अपने अधिगम व अनुभवों हेतु मुख्य रूप से विभिन्न संचार माध्यमों पर निर्भर रहते हैं।

किसी व्यक्ति/विद्यार्थी के चरित्र व आदर्श का परिचय देने में

मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार ''हमारे बहुवर्गीय समाज में शिक्षा को सर्वव्यापी और शाश्वत मूल्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा भारतीय जन में राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़े और संकीर्ण सम्प्रदायवाद, धार्मिक अतिवाद, हिंसा, अन्धविश्वास व भाग्यवाद को समाप्त किया जा सके। हमें ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य अकेला शून्य में निवास करने वाला प्राणी नहीं है। मूल्यपरक शिक्षा उसके विषिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ से जुड़ी होनी चाहिए और विश्व जनित व शाश्वत मूल्यों से उनका सम्बन्ध होना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समानता, पर्यावरण संरक्षण, प्रजातंत्र, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, समाजवाद व धर्म निरपेक्षता आदि मूल्यों का महत्व होना चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा ठोस गतिविधियों तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए। माध्यमिक तथा अन्य उच्च स्तरों पर विद्यार्थी स्वयं मूल्यों की ताक्रिकता को समझकर उन्हें विचार व कार्य रूप में ढाल सकेंगे।'' जीवन में मूल्य परक शिक्षा की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए शर्मा (2003) कहते हैं –''आदर्श रूप में संविधान में निर्देशित मूल्य एवं सामाजिक

उत्तरदायित्व को मूल्यपरक शिक्षा का केन्द्र होना चाहिए। साथ ही मूल्यपरक शिक्षा के कार्यक्रम की सफलता घर विद्यालय के आदर्श वातावरण तथा शिक्षक के आधार पर होनी चाहिए।'' भारत में वर्तमान मूल्य व्यवस्था के संदर्भ में विधि शास्त्री पालकीवाला कहते हैं –''चार दषकों की स्वतंत्रता के बाद जो तस्वीर आज भारत में उभर कर सामने आती है वह एक ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र की तस्वीर है। जो 'नैतिक पतन' की अवस्था में है, हम आत्मा के घोर विघटन और मूल्यों के अनियंत्रित पतन से त्रस्त हैं, यह कई प्रकार से प्रकट है। भ्रष्टाचार, हिंसा और अनुशासनहींनता, लोकतन्त्र के नाम पर भीड़तन्त्र, सम्मान की भावना तथा सार्वजनिक औचित्य का सर्वत्र अभाव है। आज हमारा सामाजिक जीवन अनसुलझे तनावों, संघर्षों एवं हिंसा से खोखला हो गया है। झूठे मूल्यों और झूठे नायकों की पूजा ने आज इतना अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है कि नई पीढ़ी के विद्यार्थी विरोधाभासों और मतिभ्रमता के ढेर में खो गये हैं। आज हम भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, गैर–जिम्मेदार व्यापारियों, बेईमान भाषणकर्ताओं, मतलबी लोगों, शराबियों और अनैतिक लोगों को पूर्णता के प्रतिरूप मानते हुए पूजे जाते हुए देखने के साक्षी हैं।'' मूल्यपरक शिक्षा के महत्व व आवश्यकता को देखते हुए भारत में आज शिक्षा मंत्रालय, एवं अनेकों सरकारी संगठनों के साथ–साथ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले एन0जी0ओ0 आदि मूल्यपरक शिक्षा विद्यार्थियों तक ले जाने का कार्य कर रहे हैं। भारत में मूल्य आधारित शिक्षा

पर विचार व्यक्त करते हुए एस0 वी0 चव्हाण समिति (1999)' कहती है ''सत्य, धर्म, शांति और अहिंसा वह मुख्य सार्वभौमिक मूल्य हैं जिनको मूल्य आधारित शिक्षा कार्यक्रम की आधारशिला के रूप में अपनाया जा सकता है। यह पांच सार्वभौमिक मूल्य मानव व्यक्तित्व के पांच पक्षों–बौद्धिक, भौतिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक को प्रतिबिम्बित करते हैं। इन मूल्यों को शिक्षा के पांच प्रमुख उद्देश्यों यथा–ज्ञान, कौषल, स्थिति, दृष्टि व बोध के साथ भी सहसम्बन्धित किया जा सकता है।'' समिति के यह विचार शिक्षा में मूल्यों की आवश्यकता व महत्व को स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं। व्यक्ति के निर्माण में मूल्य आधारित शिक्षा एवं आदर्शों का बड़ा हाथ होता है। चरित्र एवं मूल्यों की परस्पर निर्भरता पर महान शिक्षा शास्त्री क्रो एवं क्रो'' कहते हैं कि ''चरित्र नैतिक या नीति शास्त्रीय मूल्यों से निश्चित रूप में साहचर्य रखता है।'' मूल्य हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के लिए परम आवश्यक है। मूल्य विकास पर विचार करते हुए चौधरी (2003) लिखते हैं कि ''मूल्य विकास के क्रम में मानव सबसे पहले इन्द्रिय विषय बोध अर्थात् सुख (आनन्द) को मूल्यवरण का आधार बनाता है। तत्पश्चात् सुख के साथ–साथ मूल्य के वरण में सुरक्षा का भाव भी समाहित हो जाता है और अन्त में अपने सुख–सुरक्षा एवं हित के साथ–साथ समाज के हित एवं सुरक्षा का भाव उसमें पनपता है तथा इसको दृष्टिगत रखते हुए वह मूल्य का वरण करता है। मानव में समष्ठि हित का यही भाव उसमें निहित उच्चतम मूल्यों का द्योतक है। उच्चतम् मूल्यों से युक्त होने पर व्यक्ति अपने जीवन का लक्ष्य मात्र अपने सुख, समृद्धि एवम् सुरक्षा तक सीमित न रखकर, समष्टि हित एवं सुरक्षा तक विस्तृत कर देता है।'' यद्यपि ''मूल्य पद का अर्थ समाज विज्ञान एवम् दर्शन शास्त्र में किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं है।'' परन्तु मतैक्य रूप में कहा जा सकता है कि मूल्य मानव अस्तित्व में

किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो व्यवहार को नियन्त्रित एवं निर्देशित करते हैं। तथा पथ प्रदर्षक के रूप में कार्य करते हैं। मूल्य प्रकृति से स्थाई न होकर गत्यात्मक होते हैं तथा समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिदृष्य में परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाते हैं। रॉकीच (1979) व जावेलॉन (1980) के अनुसार ''मूल्य व्यक्ति की व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समझ (सोच) से सम्बन्ध रखते हैं।'' रॉकीच (1979) के अनुसार ''व्यक्तिगत स्तर पर किसी व्यक्ति द्वारा मूल्यों की समझ उसके द्वारा छोड़ी गई छाप में परिलक्षित होती है जिससे उसकी सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक स्थिति का निर्धारण होता है।'' शिक्षा में

मूल्यों के महत्व को स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) की संस्तुति कहती है ''हमें विद्यार्थियों में ऐसी आदतों का विकास करना चाहिए जिससे उनमें अच्छी नैतिक, मानसिक व शारीरिक आदतें विकसित हो सकें। विद्यार्थियों में वही सब विकसित होता है जिसे वह स्वेच्छा से सीखते हैं शेष आडम्बर मात्र है। व्यक्ति मन में मूल्यों को किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। हमारा प्रयास हो हम उसे अच्छी बातें समझायें न कि उसके ऊपर थोपें। सबसे अच्छी विधि यह है कि उसके सामने स्वयं का उदाहरण दैनिक जीवन एवं दैनिक कार्य के माध्यम से दें तथा दिन प्रतिदिन पढ़ने वाली पुस्तकों में मूल्य शिक्षा को सम्मिलित करें।'' मूल्यों के ह्रास पर चिन्ता व्यक्त करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)' कहती है ''भारत का राजनैतिक व सामाजिक जीवन लगातार उस अवस्था से गुजर रहा है। जिसमे पहले से स्थापित मूल्यों के लगातार क्षय होने का खतरा है। जिससे सम्प्रदायवाद, समाजवाद और व्यावसायिक विश्वासों पर लगातार दबाव बढ़ रहा है।'' मूल्य हमारे व्यवहार एवं क्रिया कलापों का नियन्त्रण एवं निर्देशन करते हैं। मूल्य एक प्रकार का मानक है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने के पूर्व यह निर्णय करता है कि वह उसे अपनाए या त्याग दें। जब ऐसा विचार भाव व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढंग से आता है, तो वह मूल्य कहलाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह बुद्धिजीवी है, उसमें अच्छे बुरे को समझने का विवेक है और इसी कारण वह नैतिक कहलाता है। मानव जीवन में मूल्यों के महत्व को स्वीकारते हुये मूल्य शिक्षा की संस्तुति राधाकृष्णन कमीषन (1948), मुद्रालियर कमीषन (1952), कोठारी कमीषन (1964) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं संषोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986 एवं 1992) द्वारा की गई है। मूल्य शिक्षा के संदर्भ में मुख्य प्रश्न यह है कि डिजीटिल शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के मूल्य किस प्रकार प्रभावित हो रहे हैं क्योंकि वे औपचारिक शिक्षा की जगह मुख्यतः डिजीटिल साधनों से शिक्षा ग्रहण करते हैं। भारत में युवाओं का एक बड़ा वर्ग डिजीटिल प्रणाली द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहा है। सामान्य अर्थात् औपचारिक शिक्षा विद्यार्थियों के मूल्य पारिवारिक परिवेश, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश, स्थानीय औद्योगिक परिवेश, राजनैतिक परिवेश तथा विद्यालय परिवेश से प्रभावित होते हैं। जिसमें सबसे अधिक प्रभाव विद्यालीय परिवेश का होता है वे विद्यालय/महाविद्यालय के शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अपने शिक्षकों के आचार–विचार, व्यवहार तथा आदर्शों से प्रभावित होते हैं तथा मूल्य ग्रहण करते हैं। जबकि डिजीटिल शिक्षा विद्यार्थी विद्यालीय वातावरण व शिक्षक से सीधे सम्पक्र के अभाव में मूल्यों को ग्रहण करने के लिए अन्य बहुसंचार माध्यमों, प्रिन्टमीडिया, रेडियो, टेलीविजन, आडियो वीडियो कैसेट्स

एवं सी0डी0, ग्राफिक्स एवं एनिमेषन, फिल्मस, कम्प्यूटर, ऑनलाईन अधिगम पर निर्भर होते हैं।

डिजीटल शिक्षा को अनुदेशन विधियों के परिवार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें शिक्षण व्यवहार अधिगम व्यवहारों से अलग होकर किये जाते हैं, छात्र की उपस्थिति में वह संलग्न परिस्थितियाँ भी क्रियान्वित की जाती है, जिससे यन्त्र सम्बन्धित तथा अन्य साधनों के द्वारा संचार को सुगम बनाया जा सकता है। डिजीटल शिक्षा स्वतः अध्ययन का एक क्रमिक संगठित रूप है, जिसमें छात्र परामर्ष, अधिगम सामग्री का प्रस्तुतीकरण तथा छात्रों की प्रगति का निरीक्षण, अध्यापकों के एक समूह द्वारा किया जाता हैं, जिसमें प्रत्येक उत्तरदायी होता है। विभिन्न माध्यमों के प्रयोग से इसने दूर से ही विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा को सम्भव बनाया है। डिजीटल शिक्षा शिक्षण–अधिगम की विभिन्न अवस्थाओं की व्यवस्था करती है, जिससे शिक्षक तथा विद्यार्थी एक दूसरे से अलग रहकर आवश्यक कार्यों तथा उत्तरदायित्वों को निभाते हैं व विभिन्न तरीकों से संचारित करते हैं। इसका उद्देश्य विद्यालय के छात्रों को कक्षा के अनुपयुक्त (स्थान) व प्रारूप से मुक्त करना है, तथा विद्यालय से बाहर के छात्रों को उनके अपने वातावरण में अध्ययन जारी रखने का अवसर प्रदान करना है। साथ ही सभी छात्रों में स्वतः निर्धारित अधिगम की क्षमता का विकास करना है। इस आधार पर निर्धारित औपचारिक शिक्षा की सीमा से बाहर चलने वाली संगठित शिक्षा प्रणाली को डिजीटल शिक्षा कहा जा सकता है। डिजीटल शिक्षा में तकनीकी माध्यम व सभी की शिक्षा के अतिरिक्त विशेष आधारों को महत्व दिया गया है। यह डिजीटल शिक्षा की प्रकृति को औ़द्योगिक समाज से जोड़ती है। औद्योगिक समाज की नई तथा उभरती हुई विषिष्ट आवश्यकताओं की प्रणाली के रूप में भी डिजीटल शिक्षा को समझना सम्भव है जिससे शिक्षा के साथ लगभग सभी क्रियाएं समय अनुसूची पर आधारित हैं, जो कि और कठोर कार्य तथा अधिगम की परिस्थतियों पर निर्भर हैं। डिजीटल शिक्षा एक स्वतन्त्र प्रणाली के रूप में सीखने वालों के एक निश्चित समूह को निश्चित शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता प्रदान करती है। डिजीटल शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्ययन के विभिन्न प्रकार जो अध्यापक के निरन्तर, तत्कालीन निरीक्षण में नहीं है, उन्हें योजना, निर्देशन, शिक्षण की संस्थाओं के बराबर ही लाभ प्राप्त होता है।

वर्तमान तकनीकी एवं औद्योगिकीकरण के युग में सामान्य शिक्षा की अपेक्षा डिजीटल शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इस सन्दर्भ में यह

जानना प्रासंगिक है कि डिजीटल शिक्षा विद्यार्थियों में किस प्रकार मूल्यों का विकास कर सकती डिजीटल शिक्षा के बहुत से कोर्स ज्ञान की उत्कृष्ट रूचि को प्रोत्साहित करते हैं। जनसंचार के माध्यमों जैसे चल चित्र, रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें आदि के बिना आधुनिक जीवन अधूरा ही है। समकालीन विभिन्न संचार माध्यमों में इन्टरनेट की प्रधानता बढ़ती जा रही है। लोगों में सामाजिक परिवर्तनों को तेज करने के लिए जागरूकता उत्पन्न करने और वैज्ञानिक प्रकृति की शिक्षा, सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि मूल्यों को लोगों तक पहुँचाने के लिए इन्टरनेट की अत्यन्त आवश्यकता है। आज तक के अपने एक संक्षिप्त इतिहास में इन्टरनेट ने यह दर्शाया है कि लोगों से व्यवहार तथा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के मामले में उसके प्रयासों का कोई विकल्प नहीं है। इन्टरनेट एक ही समय में अत्यधिक लोगों तक पहुँचने की शक्ति रखता है तथा देश के बालकों में वांछित मूल्यों एवं शैक्षिक जानकारी देने में विस्मयकारी भूमिका निभा सकता है। अनुदेशन प्राप्त करने के अतिरिक्त इन्टरनेट मूल्य ग्रहण करने एवं उनके विकास में भी व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है।

इस आधार पर सुस्पष्ट है कि डिजीटल शिक्षा विद्यार्थियों के मूल्यों को प्रभावित करने में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। रेडियो, टेलीविजन, आडियो–वीडियो कैसट्स एवं सी0डी0, फिल्मस्, वीडियो ग्राफिक्स, एनिमेषन, इन्टरऐक्टिव टी0वी0, कान्फ्रेंसिंग, वेब आधारित अनुदेशन, इन्टरनेट, ऑनलाईन अधिगम आदि साधन उपलब्ध हैं। परन्तु इन सभी में डिजीटल शिक्षा सर्वसुलभ एवं सबसे प्रचलित माध्यम है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में डिजीटल शिक्षा का प्रयोग विभिन्न सम्भावनायें जगाता है। हमारे देश में विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की काफी बड़ी संख्या है। फिर भी हम विभिन्न आयु वर्गों के सभी विद्यार्थियों तक शिक्षा का आलोक फैलाने में विफल रहे हैं। ऐसे में डिजीटल शिक्षा के उपयोग से औपचारिक शिक्षा से वंचित सभी युवाओं एवं प्रौढ़ों का शिक्षा का व्यापक सम्भावनाएं जगाई हैं। डिजीटल शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक शिक्षार्थियों तक शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 कहती है, 'मौजूदा हालात ने शिक्षा को एक दुराहे पर ला खड़ा किया है। अब न तो अब तक होते आये सामान्य विस्तार से, और न ही सुधार के वर्तमान तौर–तरीकों से काम चलेगा।' इस परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट है कि शिक्षा के माध्यम के रूप में तकनीकी के प्रयोग को स्वीकार करना एक अनिवार्यता है। शुक्ला (1992)

लिखते हैं –'सबके लिए शिक्षा का नारा वर्तमान माध्यमों, उपकरणों एवं विधियों से सम्भवतः कभी भी पूरा नहीं होगा। इसके नये विकल्प के रूप में दूरदर्शन है। जिसका इलैक्ट्रानिक जाल बिछा हुआ है, सम्भवतः उसकी तरफ ही शिक्षाविदों, नियोजकों और सरकार की दृष्टि है।' डिजीटल शिक्षा किस प्रकार उपयोगी है इस संदर्भ में शुक्ला (1992) पुनः कहते हैं कि ''दूरदर्शन के माध्यम से संप्रेषित अनुभव प्रत्यक्ष अनुभव के अत्यन्त निकट होते हैं तथा व्यक्ति पर पूर्ण प्रभाव छोड़ते हैं। कोई व्यक्ति या बालक दूरदर्शन से कितना प्रभावित होता है, यह दो बातों पर निर्भर करता है, प्रथम तो व्यक्ति का व्यक्तित्व या उसकी अपनी मनोवृत्ति तथा कार्यक्रम के विषयगत अनुभव को ग्रहण करने की क्षमता। बालक के व्यक्तित्व को न तो दूरदर्शन तत्काल परिवर्तित कर सकता है न ही सभी बालकों की मनोवृत्ति के अनुकूल शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा सकता है।'' किन्तु विषय वस्तु के चयन, संकलन तथा प्रसारण विधि व अवधि का उचित ध्यान रखकर कार्यक्रमों को डिजीटल शिक्षा विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कपिल, एच0के0 (1993). सांख्यिकी के मूल तत्व. आगरा ,विनोद पुस्तक मन्दिर।

गुप्ता, एस0पी0 (2005). आधुनिक मापन एवम् मूल्यांकन. इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।

पचौरी, गिरीश (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. मेरठ, लायल बुक डिपो।

लाल, आर0बी0 (2007). शिक्षा के दार्शनिक एवम् समाज शास्त्रीय सिद्धान्त. मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशनस।

चौधरी, के0के0 (2003). मूल्य–शिक्षा एवम् शिक्षक. मूल्य आधारित अध्यापक शिक्षा पर आई0ए0एस0ई0 सरदार शहर, राजस्थान द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सेमीनार (21 से 23 सितम्बर, 2003) में प्रस्तुत प्रपत्र।

शर्मा, आर0ए0 (2007). भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास. मेरठ, आर0लाल0 बुक डिपो।

◆◆◆

युवा असंतोष के कारण व निवारण

डॉ० अनीता चौहान
जे.सी.एम.एस.टी., बरेली (उ०प्र०)

वर्तमान समय में युवा असंतोष एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। समय–समय पर युवा आन्दोलन, अनुशासनहींनता आदि की घटनाएं घटती रहती हैं। युवा वर्ग जिसे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए होना है, दिन प्रतिदिन असंतोष के कारण अनुशासनहींन होता जा रहा है जो न केवल देश की उन्नति में बाधक है वरन् स्वयं युवाओं के पतन का कारण है। इनके असन्तोष का कारण विद्यालय, महाविद्यालय के साथ–साथ समाज व राष्ट्र भी है।

युवाओं को उचित वातावरण, जिसमें अध्यापक और समाज के लोग हैं, उनको उचित मार्गदर्शन देने में असमर्थ हैं। आज युवा वर्ग अपने भविष्य के प्रति आशावान नहीं है। युवाओं में जातिवाद, भाई–भतीजावाद, निरंकुशता, सिफारिश का व्यवहार मिलने पर मानसिक ग्लानि की ग्रन्थि का विकास हो जाता है। ऐसी भावना का पनपना भी असंतोष का बीजारोपण है।

युवा असंतोष के कई स्वरूप हैं–

- अनुशासनहींनता व्यक्तिगत न होकर सामूहिक प्रकट होती है।
- अनुशासनहींनता सुनियोजित रूप में सामने आती है।
- असंतोष बाह्य प्रोत्साहन पर आधारित होता है।
- असंतोष की अभिव्यक्ति, अभद्रतापूर्ण व्यवहार, हिंसा आदि के रूप में की जाती है।
- इससे व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र सभी का अहित होता है।

युवाओं में असंतोष होने के लिए अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं–

- सर्वप्रथम पारिवारिक वातावरण सुखद न होना एवं माता–पिता से अच्छे संस्कार न मिलना।
- समाज का दूषित वातावरण। समाज के प्रत्येक वर्ग में अनुशासनहींनता परिलक्षित होती है। अधिकारी कर्मचारी अपने दायित्वों के निर्वहन में उदासीन हैं। युवा असंतोष

समाज में व्याप्त असंतोष का ही प्रतिबिम्ब है।

- सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होना। सामाजिक परिवर्तन के दौर में प्राचीन मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है एवं नवीन सामाजिक मूल्यों का विकास हो रहा है।
- समाज में आर्थिक विषमता भी युवा असंतोष को जन्म देता है। गरीब युवा उच्च स्थिति वालों से प्रतिस्पृधा करता है और संघर्ष में विफल होने पर असंतोष का षिकार हो जाता है।
- दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, अयोग्य अध्यापक, अनुपयुक्त पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ शिक्षार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप उसे तैयार नहीं कर पाती हैं।
- युवा असंतोष का अन्य प्रमुख कारण दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली भी है। वर्ष में केवल एक बार ही परीक्षा होने के कारण युवाओं को अनुशासनहींनता के प्रदर्शन के लिए पर्याप्त समय मिलता है।
- युवा असंतोष को दूर करने के लिए अनेक प्रयास किये जाने आवश्यक हैं।
- शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक सुधार की आवश्यकता है। उच्च शिक्षा में केवल योग्य प्रतिभाशाली छात्र को ही प्रवेश मिलना चाहिए।
- वार्षिक परीक्षा को सत्रीय और मासिक मूल्यांकन में परिवर्तित किया जाए।
- प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद रोजगार मिलना चाहिए। बार–बार प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् भी रोजगार न मिलने से युवा असंतोष का षिकार हो जाता है।

युवा देश का भविष्य है देश की उन्नति युवाओं के कन्धों पर है। अतः युवाओं की ऊर्जा को विकास में लगाने के लिए उन्हें उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानन्द का यह कथन–'आज हमारे देश के लोगों को फौलादी मांसपेषियाँ, लौह धमनियाँ तथा दुर्जेय इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।' युवाओं को उनका संदेश है–'उठो! जगो और उस समय तक बढ़ते रहो जब तक कि परम उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाए।

◆◆◆

धर्म, दर्शन एवं मानवीय मूल्यों का शिक्षा में प्रासगिकता

दीपक कुमार शर्मा[1] एवं गिरीश कुमार वत्स

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

प्राचार्य, ए0टी0एम0एस0 कॉलिज ऑफ ऐजूकेशन, अच्छेजा, हापुड़

धर्म और शिक्षा का सम्बंध ऐतिहासिक है। विश्व इतिहास के आदिकाल से ही धर्म ने शिक्षा को प्रभावित किया है और शिक्षा ने भी धर्म को धर्म ने सिद्धान्त दिया, शिक्षा ने उसका प्रयोग किया। धर्म मूल्य का निर्धारण करता है, शिक्षा उस पर अमल करती है। धर्म–जीवन की प्रथम सीढ़ी है, तो शिक्षा–दूसरी सीढ़ी है। धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने से ही शिक्षा के रूप में परिवर्तन होता रहा है।

कुछ लोगों के अनुसार जब शिक्षा में धर्म को उचित स्थान दिया गया तब समाज में ऊँचे जीवन–मूल्यों का निर्माण किया गया जिसके फलस्वरूप सुख–शांन्ति एवं वैभव का साम्राज्य रहा। जब समाज ने शिक्षा में अधर्म को स्थान दिया तब समाज अशान्ति का शिकार रहा और रह रहा है।

आधुनिक सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिए धार्मिक शिक्षा का प्रयोग राम–बाण के रूप में किया जा सकता है, किन्तु भारत के लिए यह एक समस्या हैः क्योकि भारतीय संविधान ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। ऐसी परिस्थिति में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था भारतीय विद्यालयों में करना उचित नहीं मालूम पड़ता है, क्योकि भारतीय विद्यालयों में विभिन्न धर्मो के छात्रगण शिक्षा प्राप्त करने आते है।

ड़ॉ0 भगवान दास ने कहा है, "धर्म की पराकाष्ठा ही दर्शन हैं।" यदि दर्शन के प्रादुर्भाव का श्रेय धर्म को दिया जाय तो कथन में अति–शयोक्ति नहीं होगी। यही कारण है कि सभी धर्मो के अपने–अपने दर्शन है और जिसके कारण महान दार्शनिक भी सभी धर्मो में पैदा हुए है। अतः धर्म ने ज्ञान के विकास के क्षेत्र में विशेष सहायता प्रदान की है जिसकी जानकारी छात्रों को अवश्य दी जानी चाहिए।

भारत में धर्म प्रारम्भ से ही शिक्षा को प्रभावित करता रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य–ईश्वर–भक्ति एवं धार्मिक भावना का विकास रहा है। मध्यकाल में कुरान शरीफ के सिद्धान्तों में आस्था पैदा

करना धार्मिक भावना का विकास रहा है। अब परिस्थितियॉ बदल चुकी है। भारतीय चिन्तक भारतीय भावना से पूर्ण परिचित थे। इसीलिए उन्होने भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर धार्मिक शिक्षा के सम्बंध में निम्न प्रकार से विचारों को प्रकट किया है–

भारत में पुनर्जागरण–काल के प्रवर्तक के रूप में राजा राममोहनराय को स्मरण किया जाता है। राममोहन राय तुलनात्मक धर्म के छात्र थे। उन्होने कहा है "सभी धर्म एक ही ईश्वर में विश्वास करते हैं, केवल उनके बाहाचार में अन्तर है "उनको सभी धर्मो में आधार–भूत समानता दिखायी पड़ती है। इसी आधार पर उन्होने बह्म–समाज की स्थापना की थी जिसने 1820 से 1830 तक भारत के सभी प्रकार के विचारो को प्रभावित किया था।

ब्रह्म–समाज में हिन्दुओं, मुसलमानों एवं ईसाइयों सभी को आमेंत्रित किया गया। राजा राममोहन राय के हृदय में सभी धर्मो के अनुयायियों के लिए समान स्थान था। भारत के संविधान में राजा राममोहन राय की इस विचारधारा को पूर्ण सम्मान प्रदान किया गया है। इसीलिए राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जनक भी कहा जाता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार धर्म का अभिप्राय आत्म–ज्ञान एवं आत्म–विकास से है। सभी मनुष्यों, पशुओं, पक्षिओं, पक्षियों से प्रीति रखना ही धर्म है। उपनिषदों के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति निर्भोक होता है

धर्म व्यक्ति की भावनाओं को उदात्त बनाता है। धार्मिक व्यक्ति ईश्वर को सर्वत्र समझकर उससे प्रेम करता है। ईश्वर ही विश्व का सत्य है, वही इसका पालक है। यह विचार उसमें ईश्वर के प्रति श्रद्धा व प्रेम उत्पन्न करते हैं। इस श्रदा व प्रेम से वह आनन्दित हो उठता है। धर्म व्यक्ति के जीवन को आनन्दय बनाने का सशक्त स्त्रोत है।

कुछ व्यक्ति धर्म के सामाजिक पक्ष पर अधिक बल देते है। इनके अनुसार धर्म सामाजिक संयोग एवं सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति का माध्यम है। इस दृष्टि से समाज–सेवा एक धार्मिक कृत्य है। धर्म का सम्बंध व्यक्ति की आध्यात्मिकता से है। मनुष्य सुख की खोज में धर्म का आश्रय लेता है और आध्यात्मिकता के मार्ग का पथिक बनता है। आध्यात्मिकता मनुष्य की पूर्णता का आधार है। मानव जाति पूर्णता की आकांक्षा रखती है और इसी की और उन्मुख होकर विकास करती है। धर्म व्यक्ति के आध्यात्मिक मार्ग का प्रकाशक व पथ–प्रदर्शक है।

धर्म और नैतिकता का घनिष्ठ सम्बंध है। कहा जाता है "धर्मविहीन नैतिकता मूलविहीन वृक्षकी भॉति है और नैतिकता विहीन धर्म फलहीन वृक्ष की भॉति है।"

धर्म की शिक्षा का उत्तरदायित्व केवल एक अध्यापक पर नहीं हो सकता। आवश्कता पड़ने पर किसी एक अध्यापक को विशेष रूप से यह कार्य सौंपा अवश्य जा सकता है और यह अध्यापक धर्मों का सैद्धान्तिक विवेचन करने में सक्षम होगा। यह अध्यापक मृदु स्वभाव का होगा। उसमें सहनशीलता, धैर्य, विवेक, संयम, वस्तुनिष्ठ, दृष्टिकोण, सरलता आदि गुण होंगे। वह धर्म के प्रति श्रद्धा व आस्था रखेगा और उसका सम्पूर्ण आचरण प्रेम से ओत–प्रोत होगा। किन्तु यदि अन्य आध्यापक विपरीत गुणों से युक्त होंगे तो एक अध्यापक अकेले कुछ नहीं कर सकता। अध्यापक अपने जीवन में धार्मिक शिक्षा को नहीं उतार सकते तो वे यह कैसे आशा कर सकते हैं कि छात्र उनका अनुकरण करके सदाचारी बन सकेंगे।

विभिन्न धर्मों के बाह्माचार भिन्न हैं, प्रतीक भिन्न हैं, किन्तु उनसे भारतीय राष्ट्र की एकता को खण्डित नहीं होना चाहिए। सभी धर्मावलम्बी अपने पूजा–स्थानों को ऐसे नामों से पुकाराते हैं जिनका एक ही अर्थ है, ईश्वर के गृह (चर्च), देवालय (मन्दिर), बेत–उल्लाह (मस्जिद)। इन सभी पूजास्थलों में, स्वर्ग की ओर उठी हुई मानी जाने वाली, तथा स्वर्ग की आकांक्षा को दर्शाने वाली मीनारें, शिखर, कलश–शिखर, गोपुर, मुनारा, ता–अरूम, गुम्बद, टावर, ड़ोम, क्यूपोला (गुम्बद) आदि होते हैं।

सभी धर्मों में, संन्यासी, यती, साधु, बैरागी, उदासी, मठाधीश, महन्त, फकीर, मिस्कीन, दरवेश, औलिया, सजदा–नशीन, शेख, पीर–मुरशिद, तकियादार होते हैं। भिक्षु, स्थानक, लामा एन्कोराइट, सेनोबाइट, मॉक, नन आदि होते हैं।

सभी धर्म विभिन्न मत, पंथ, समप्रदायों, फिरकों में बंटे हुये हैं। वैदिक और क्रिश्चियन धर्म में इनकी संख्या सैकड़ों में गिनाई जा सकती हैं। यथार्थतः जितने मत, सम्प्रदाय उतने ही पंथ, ऐसा महान धार्मिक पुरूषों ने चरितार्थ भी किया है, इन सबका एक ही उदेश्य है, सर्वोच्च आत्मा, आत्मा की उच्च प्रकृति अथवा ईश्वर की अनुभूति–साक्षात्कार। किसी एक महान गुरू ने जिस भॉति उसका साक्षात्कार किया वह उसी का प्रचार कर गया और सहस्त्रों मनुष्य उसी ज्योति से मार्ग देखकर आगे बढ़ें।

व्यावहारिक मूल्य में धर्म, अर्थ, काम का महत्व है। धर्म पुरूषार्थ है,

अर्थ, साधन है, काम अनर्थ अथवा भोगवादी दृष्टि से पुरूषार्थ है। उपयोगिता के आधार पर मूल्यों में तारतम्य बना रहता है। मूल्य योग भी है और आदर्श भी। नैतिक समस्या एक संघर्ष है जो कभी नहीं सुलझेगा। नैतिक निर्णयो में बुद्धि और भाव दोनों का समावेश होता है।

व्यावहारिक नैतिकता हितकारी होती है, सात्विक नैतिकता शिवम् की द्योतक होती है। विज्ञान के प्राकृतिक विषय में मूल्य नहीं है वरन् विज्ञान की पद्धति में है। मूल्यों में स्वायत्तता होती है।

वस्तुतः मूल्य एक व्यवस्था है। मूल्य–यथार्थ तथा आदर्श के विभेद के मध्य संयोजक की भूमिका निभाते हैं। मूल्यों का बोध विवेक–शक्ति उत्पन्न होने पर ही संभव है। भारतीय मनीषा के अनुसार, सभी मूल्यों को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष–चार कसौटियों में विभक्त किया गया है। इनमें से दृष्टिभेद से किसी एक को, दो को, तीन को अथवा चारों को जीवन का मूल्य बनाया जा सकता है, पर केवल अर्थ एवं काम को साध्य बना देने से आदर्शवादिता एवं नैतिकता से मानव वंचित हो जायगा। अतः अधिकांश विचारकों ने अर्थ, काम एवं धर्म की त्रिवेणी को ही व्यावहारिक जीवन का मूल्य माना, पर इन्हें साध्य नहीं माना। उसकी दृष्टि में मोक्ष या आत्मोपलब्दि ही परम मूल्य है, शेष की महत्ता भी मोक्ष के लिए है, स्वतन्त्र नहीं। धर्म, अर्थ एवं काम साधन हैं तथा साध्य है मोक्ष। इनका परस्पर औचित्य–अर्थ का काम के अनुसार, काम का धर्म के अनुसार तथा धर्म का मोक्ष के अनुसार होना ही है। यदि समाज की विचारधारा इन चार कसौटियों पर इसी प्रकार आधारित हो, तो हम निश्चय ही कह सकते हैं कि ऐसे समाज का नैतिक मूल्य समुत्रत है एवं सर्वथा ग्राह्य है। इसी त्रिवर्ग साधन को व्यक्ति एवं समाज की मर्यादा के अनुरूप अपनाना तथा साध्य मोक्ष की ओर अग्रसर होना ही नैतिकता है।

तात्पर्य यह है कि सत्य के प्रति निष्ठा एवं असत्य के प्रति अनाकर्षण विवेक से ही सम्भव है और तभी नैतिकता का आचरण भी सम्भव है।

मनुष्य में नैतिकता के विकास के लिए हमें गीता के उपदेशों की ओर जाना पड़ेगा। गीता के अनुसार–

भय का अभाव, अन्तःकरण की शुद्धि, तत्वज्ञान, के लिए दृढ़ स्थिति, सात्विक औदार्य, इन्द्रिय दमन, त्याग की भावना, स्वाध्याय, कष्ट सहन करने की क्षमता, अन्तःकरण की सरलता, अहिंसा का भाव, सत्य का

आदर, अक्रोध, अभिमान न करना, चित्त की स्थिरता, निन्दा न करना, दया, अलोलुपता, लज्जा, स्थिर भावना, प्रभावशीलता, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, शत्रुता की भावना का अभाव, समरसता–इन गुणों की प्राप्ति द्वारा ही मनुष्य प्रगति कर सकता है।

धर्म और नैतिकता के अभाव में शिक्षा का कोई अर्थ नहीं। शिक्षा की सार्थकता धर्म के सन्दर्भ में ही है।

संदर्भ

जीवन के लिए शिक्षा, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों हेतु पारिवारिक स्वास्थ्य एवं जीवन–कलाओं की शिक्षा का गाइड, उ0प्र0 शासन

राज्य माध्यमिक शिक्षकों की कार्य–पुस्तिका : विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम, यूनिसेफ, यूनिसेफ भवन 73, लोधी एस्टेट, नई दिल्ली

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

Research in Education, Best J.W., New Delhi

S.V.C. Arya : The Fourth Indian Year Book of Education, New Delhi, Jan. 1972.

Encyclopedia X. Xarris, Chistrew : Encyclopedia of Educational Research, New York, The Macmillan Company, Third Edition, 1960.

Educational Ideas and Institutions in Ancient India : Janki Prakashan, Patna, 1979.

◆◆◆

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता एवं मानवीय मूल्यों की दृष्टि से उपाय

सैय्यद अब्दुल वाहिद शाह[1] एवं सुशील सहगल[2]
[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, [2]छात्र (द्वितीय वर्ष), शिक्षक शिक्षा विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ0प्र0)

प्रस्तावना

आज दुनिया के अधिकांश लोग भौतिक और विलासितापूर्ण जीवन जीना चाहते हैं हर तरफ सुविधाजनक जीवन जीना की होड़ लगी है दो पल ठहरकर जब हमने विचार किया तब मालूम हुआ कि इस भौतिक जीवन को जीने के लिये क्या कीमत चुकाई जा रही है।

आज ऐसा कोई देश नहीं है जो पर्यावरण समस्या का सामना न कर रहा हो। भौतिक सुख–सुविधा को पाने के लिये कंक्रीट का जाल बिछाते समय हमने सोचा न था कि इसका परिणाम हमारे जीवन के लिये ही संकट बन जायेगा।

पर्यावरण प्रदूषण क्या है?

राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद (1976) के अनुसार

"मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोजन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकाकर परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।"

पर्यावरण प्रदूषण नगरीकरण औद्योगिक क्रांति प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों, न सड़ने वाली उपभोक्ता सामगियों के उत्पादन में निरंतर वषद्धि का ही परिणाम है।

प्रदूषण के स्त्रोत

1. प्राकृतिक स्त्रोत :– इसमें ज्वालामुखी की राख, धूल भूकम्पीय घटनाओं के कारण उत्पन्न दरारों द्वारा घरातलीय सतह पर लाये गये तत्वों, बाढ़ के जल भूमि अपरदन द्वारा उत्पन्न अवसाद्, जंगल की आग द्वारा विनाश आदि प्रदूषकों को लिया जा सकता है।

2. मानव स्त्रोत :– मानव जनित प्रदूषण के स्त्रोतों में औद्योगिक स्त्रोत, कृषि स्त्रोत तथा जनसंख्या स्त्रोत मुख्य है।

पर्यावरण प्रदूषण के मानव जनित मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :–

1. नगर की औद्योगिक इकाइयों से सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) कार्बनडाईऑक्साईड (CO_2) कार्बन मोनो ऑक्साइड (CO) हाइड्रोकार्बन, विषैली गैसे, ठोस प्रदूषक, कई प्रकार के कई प्रकार की हानिकारक रसायन निकलते है।

2. नगरों से निकलने वाला सीवेज जल, ठोस अपशिष्ट पदार्थ, कुडा–कचरा वाहनों की विषाक्त गैसे, धूल कण, ध्रुम प्रमुख प्रदूषक है।

3. रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, शाकनाशी विविध प्रकार के रसायन आदि पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण हैं।

4. मानव की अधिक जनसंख्या भी पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है।

पर्यावरण प्रदूषण संबंधित तथ्य

आईये अब हम संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) द्वारा 13 मार्च 2019 को ग्लोबल एनवायरनमेंट आउटलुक रिपोर्ट पर एक नजर डालते हैं।

इस रिपोर्ट में भरत के संदर्भ में विभिन्न आंकड़े पेश किये गये हैं।

1. वर्ष 2018 में, वायु प्रदूषण से भारत में 1.24 मिलियन लोगो की मृत्यु हुई जो कि सभी मौतो का लगभग 12.5 प्रतिशत है।

2. वर्ष 2017 में, मानसून के दौरान आने वाली बाढ़ से बिहार में 855000 लोग विस्थापित हुए।

3. वर्ष 1980 के बाद से जलवायु संबंधी घटनाओं में वैश्विक अर्थ व्यवस्था की लागत 1.2 ट्रिलियन, डालर है जो कि वैश्विक जीडीपी का लगभग 1.6 प्रतिशत है।

पर्यावरण संरक्षण है क्या?

पर्यावरण शब्द – परि + आवरण के संयोग से बना है परि का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का आशय परिवेश है पर्यावरण में वायु,

जल, भूमि पेड़–पौधे जीव–जन्तु मानव और उसकी विविध गतिविधियों के परिणाम आदि सभी का सामावेश होता है।,

सरल शब्दो में पर्यावरण संरक्षण का अर्थ है प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखना।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता क्यों है?

1. विलुप्त होती प्रजातियाँ

चील, गिद्ध एवं कौवों को प्रकृतित के सफाईकर्मी के रूप में जाना जाता है और ये आजकल कही दिखायी ही नहीं देते जिससे सड़ी गली लाशो का निस्तारण नहीं हो पा रहा है।

2. परागण में समस्या

फूलों फल आदि का रस चूसने वाले कीट पतंगों की संख्या में पर्यावरण असन्तुलन के कारण लगातार कमी हो रही है जिससे परागण तथा जंगलो की समस्या उत्पन्न हो रही है।

3. वायु प्रदूषण में वृद्धि

वनो के कटाव से वायु प्रदूषण की समस्या लगातार बढ़ रही है जो सम्पूर्ण मानव जाति के लिये खतरे की घण्टी है।

4. भारी भूस्खलन एवं बाढ़ की समस्या

अंधाधुंन नगरीगण वनो का कटाव, बढ़ती जनसंख्या ने पर्यावरण असन्तुलन को बढ़ाकर भारी भूस्खलन एवं बाढ़ की समस्या उत्पन्न कर दी है।

पर्यावरण संरक्षण के उपाय

1. बच्चों के जन्मदिन या किसी भी यादगार क्षण पर पेड़ लगाकर उन पलो को यादगार बनायें।

2. समारोह आदि में अतिथि स्वागत हार पहनाने के स्थान पर पौध ाा देकर करना चाहिए।

3. सड़के या घर बनाते समय यथासम्भव वक्षों को बचाएं। यदि अपिहार्यय स्थिति में उन्हें काटना पड़ता है तो उनके स्थान पर नये वक्ष

लगाने चाहिये।

4. अपने घर आंगन में थोड़ी सी जगह पेड़ पौधों के लिए रखे।

5. पानी का संरक्षण करें, हर बूंद को बचाएं।

6. ब्रश करते समय नल खुला न छोड़ें।

7. शॉवर की जगह बाल्टी में पानी लेकर नहाऐं।

8. प्रतिदिन फर्श साफ करने के बाद पौछे का पानी गमलों व पौधों में डालें।

9. मेहमानों को पानी छोटे गिलास में दे व फिर भी पानी बचे तो गमलों में डालें।

10. ऑफिस हो या घर बिजली का किफायती उपयोग करें।

11. संभव हो तो पब्लिक ट्रांसपोर्ट का उपयोग करें।

12. पॉलीथीन का उपयोग न करें।

सन्दर्भ

- ग्लोबल एनवायरनमेंट आउट लुक रिपोर्ट –GEO) 6वां संस्करण।
- राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद रिपोर्ट (1976)
- डॉ0 आर0 ए0 चौरसिया (India Water Portal)

समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रससे मानवता का अंत : एक नजर

लेफ्टि० (डॉ०) प्रवेश कुमार

[1]असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ0प्र0)

प्रस्तावना

भारतीय समाज की विरासत की पहचान भारतीय संस्कृति से की गई है, क्योंकि भारत एक न केवल एक कृषि प्रधान देश है, बल्कि यह एक सोने की चिड़िया के नाम से भी जाना जाता है। सोनाएक धातु है परंतु सोना शैक्षिक दृष्टिकोण से उपनिषद, पुराण,वेद,रामचरितमानस, ऋषि–मुनियों, देवी–देवताओं आदिकी जननी–जन्म भूमि है यहां वेदों की गाथा है जहां पर ऋषि–मुनियों ने वेदों की शिक्षा ग्रहण करायी, चाहे वे समाज का कोई भी वर्ग इस शिक्षा को लेने में सफल रहा हो, गुरु और शिष्य में, बालक और माता–पिता के मध्य में, समान और बालक के मध्य अर्थात अनेकों संबंधों के मध्य मानवीय मूल्यों की एक पहचान थी दर्शन में तत्व मीमांसा, ज्ञान–मीमांसा और मूल्य मीमांसाक्रमशःइसमें तत्व–मीमांसा अर्थात तत्व, सत्ता, यथार्थ आदि विषय में अध्ययन चाहे वे प्रकृति–दर्शन हो, या आत्म दर्शन या फिर ईश्वर–दर्शन, तीनों दर्शन तभी संभव है जबव्यक्ति ने आदर्शों की शिक्षा ग्रहण की हो अपने अंदर नैतिक मूल्यों का विकास किया हो। उसी प्रकार ज्ञान–मीमांसा में ज्ञान की सीमाओं का अध्ययन है, हमारे ज्ञान काइंद्रियगम्यजगत से क्या संबंध है और ज्ञान का उद्गम एवं इसकी प्राप्ति की विधि क्या है? अर्थात यहां भी ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब व्यक्ति की इंद्रियां जगत के अनुकूल हो, मन शांत हो, मन में किसी के प्रति बुरी भावनाएं नहो, अपने कर्तव्यों का पालन करता हो आधी बातें इस बात की सूचक है कि ज्ञान का सागर मस्तिष्क में लाना मानवीय मूल्यों की पहचान है।। शिक्षा के दर्शन में तीसरी बात सीधे मूल्यों से ही की गई है अर्थात मूल्य–मीमांसा में कहा गया है कि जीवन के बौद्धिक नैतिक,सौंदर्यपरक एवं धार्मिक मूल्यों का विवेचन मूल्य मीमांसा में है, समाज में व्याप्त कुरीतियों के चलते वर्तमान में मानव बौद्धिक स्तर, नैतिक स्तर,सौंदर्यपरक एवं धार्मिकता की पीछे छोड़ चला है मेरा यह मानना है कि नैतिकता या मानवीय मूल्य में जरूरी नहीं है कि वे शिक्षा ग्रहण करने के बाद ही उनको प्राप्त करें, शिक्षा की भूमिका मानव में मानवीय मूल्यों की वृद्धि करना हो सकता है। लेकिन

अशिक्षित मानव भी एक अच्छे नैतिक मूल्य वाला हो सकता है।क्योंकि जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का समय पर पालन करता है। समाज में अच्छा व्यवहार रखता है, सकारात्मक चिंतन करता है, उसमें छल कपट नहीं है तब उसमें नैतिक मूल्यों का वास है, आज समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ हैजिससे मानवता का अंत होता चला जा रहा है।

कई महापुरुष जैसे सुकरात, ईसा मसीह एवं गांधीजी के नाम इसी संदर्भ में लिए जाते हैं क्योंकि येमूल्य के लिए ही जिस और मूल्य के लिए ही मृत्युवरणकिया। वस्तुतः मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज का अस्तित्व है।क्योंकि उपयोगिता या कल्याणकारिता की भावना ही समाज को स्थिर रखती है। "मूल्य ऐसी आचरण संहिता का सद्गुण है जिससे मानव अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है इसमें मनुष्य की धाराएं, विचार, विश्वास,मनोवृति आस्था आदि समाहित है यह मानव मूल्य एक और व्यक्ति के अंतरण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी और उसकी संस्कृति का परंपरा द्वारा निवृत्त परिभाषित होते हैं और यह भी कहा जाता है कि मूल्य मनुष्य के अंतर तम में जलती हुई वह शक्ति है जो उसे एक विशिष्ट प्रकार से कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को शासित करती हैवैसे जीवन मूल्यों को स्कूल रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है परिवर्तनशील मूल्य तथा शाश्वत मूल्य समानता देखे तो मूल्य कई प्रकार के होते हैं जैसे जैविक मूल्य सामाजिक मूल्य तथा आध्यात्मिक मूल्य आज मूल्यों में समय के साथ अंतर आता जा रहा है कलयुग के जीवन मूल्यों से हम प्राचीन मूल्यों सतयुग त्रेता द्वापर आदि की तुलना करें तो काफी अंतर प्रतीत होगा प्राचीन समय से देखें तो जो जीवन मूल्य सतयुग में थे मित्रता में नहीं थे जो त्रेता में थे वह द्वापर में नहीं थे तथा जो द्वापर में थे वह कलयुग में पूर्णतया समाप्त हो चुके हैं कलयुग में हमारे व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन में तनाव के कारण दिन प्रतिदिन घुटन बढ़ती जा रही है परिवार में छोटे बड़ों का आदर नहीं करते हैं पति पत्नी के संबंध तनावपूर्ण हैं भाई भाई से प्रेम करता सामाजिक जीवन में सहयोग समाप्त होता जा रहा है सामाजिक नियम एवं व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हुए हम संकोच नहीं करते हैं प्रदर्शन घेराव तोड़फोड़ हिंसात्मक विद्रोह मनमुटाव वाली क्लॉथ गुस्सा तथा आतंक हमारे जीवन में हर समय तनाव या मम पैदा करते रहते हैं भ्रष्टाचार कालाबाजारी रिश्वतखोरी तस्करी मिलावट काला धन आदि से संबंधित गतिविधियां में दिन–प्रतिदिन व्याकुल करती रहती है

समाज में नैतिकता के इराक से मानव जाति का स्वर्णिम युग समाप्त होता जा रहा है हम निरंतर विनाश की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं सामाजिक जीवन अस्त–व्यस्त हो रहा है पारिवारिक जीवन में खटास उत्पन्न होने से दुखद होता जा रहा है गरीबों आशाओं का शोषण बढ़ रहा है व्यक्ति स्वार्थी अवसरवादी भोगी चाटुकार एवं कर्तव्य विमुख हो रहा है जीवन की शांति ना जाने कहां गुम होती चली जा रही है यह सभी बातें मूल्यों के विराज को स्पष्ट करती है वर्तमान समय में मूल्य इतने गिर गए हैं कि जीने का अर्थ ही बदल गया है प्रत्येक कार्य में स्वार्थ भरा पड़ा है

वर्तमान में मूल्यों का ह्रास

वर्तमान समय में मानव के मन में स्वार्थी मन की बीमारी बढ़ती जा रही है इस कारण मूल्यों का विकास हो रहा है मूल्यों के ह्रास के लिए काफी हद तक हमारा समाज दोषी है तथा शिक्षा भी इसके लिए जिम्मेदार है आज बालू को घरेलू संस्कार उचित रूप में नहीं मिल पा रहे हैं समाज परिवार न्यूक्लियरफैमिली की तरह रह रहे हैं उनके संस्कारी लोग बाल को आशना रहने के कारण दादा दादी को भी बालक आंटी और अंकल बुलाते हैं क्योंकि कोई भी मनुष्य जन्मजात खराब नहीं होता उसे वातावरण खराब करता है जब बालक पैदा होता है तो वह सबसे प्रेम करता है क्योंकि उसका उस समय पवित्र होता है उसमें जाती पाती का भेदभाव नहीं होता उस में मानवीय मूल्य होते हैं धीरे–धीरे जब यह बड़ा होता जाता है तो झूठ स्वार्थ लोग हिंसा घृणा उसमें अपने लगते हैं वह इनके वशीभूत हो जाता है

कल तक हम जिन मूल्यों को गिरा हुआ समझते थे आज उन्ही के पीछे भाग रहे हैं शिक्षाविद अधिकारी राजनैतिक नेता रेस आदि मूल्यों में गिरावट की बात करते हैं जिसके कारण आज राष्ट्रीय सामाजिक राजनैतिक पारिवारिक तथा व्यक्ति जीवन में अनेक कठिनाइयां आती है मूल्यों की समस्या सार्वजनिक समस्या बन गई है इसी प्रकार कई असामाजिक तत्व है जो हमारी राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुंचाते हैं इसे नष्ट करते हैं उपर्युक्त सभी मूल्य ऐसे हैं जो आधुनिक समाज में गिरते जा रहे हैं सतयुग से कलयुग की ओर बढ़ते बढ़ते हम देख रहे हैं कि प्राचीन मूल्यों में धीरे–धीरे कमी आ रही है परिणाम ता मूल्यों का ह्रास हो रहा है मूल्यों को कायम रखने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा नीति में सुधार की आवश्यकता है पहले बालकों को गलती करने पर पुरस्कार स्वरूप सजा मिलती थी बालक को मिला दुआ दंड में भी बोलते रहते थे और बालक उसे आदर्श स्वरूप

ग्रहण करते हुए अपने कार्यों में लगन से कर्तव्य परायण स्वरूप कार्य करते थे परंतु आज तक के खिलाफ ट.पि.त. मारपीट निष्कासन निलंबन तथा दबाव आदि क्रियाएं होती है आज 80 परसेंट बालक व्यवहार को नहीं अपनाते बालक उद्दंडता करते जाते हैं शिक्षक उनको कुछ नहीं कह पाता परिणाम यह होता है कि बालक ना तो सुखों का सम्मान करता और ना ही माता–पिता परिवार तथा समाज में बड़ों का आदर करता।

नैतिक मूल्यों में गिरावट के कारण

समाज में नैतिक मूल्यों में गिरावट आज एक बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है समाज में जिन मूल्यों का ह्रास हुआ है उनमें से न केवल मानव के अभिव्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है बल्कि देश को भी जानमाल का नुकसान उठाना पड़ता है जैसे समाज में असंतोष अलगाव उपद्रव आंदोलन असमानता असमंजस अराजकता आदर्श वीरता अन्याय अत्याचार अपमान असफलता अवसाद स्थिरता अनियमितता संघर्ष तथा हिंसा आदि समाज और मानव जीवन को ठहरे हुए हैं व्यक्तित्व में एवं समाज में संप्रदायिकताजातीयताभाषावाद क्षेत्रीय तावाद हिंसा की संकीर्ण कुत्सित भावनाओं व समस्याओं के मूल में उत्तरदाई कारण है मनुष्य नैतिक और चारित्रिक पतन अर्थात नैतिक मूल्यों का छह एवं अवमूल्यन है नैतिकता का संबंध मानवी अभिवृत्ति से है इसलिए शिक्षा से इसका महत्व पूर्ण अभिनव अटूट संबंध है देश की सबसे बड़ी शैक्षिक संस्था राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के द्वारा उन मूल्यों की सूची तैयार की गई है जो व्यक्ति में नैतिक मूल्यों के परिचायक हो सकतेहैं।

एक ही समाज में विभिन्न कालों में नैतिक संहिता भी बदल जाती है नैतिकता नैतिक मूल्य वास्तव में ऐसी सामाजिक अवधारणा है जिसका मूल्यांकन किया जा सकता है यह कर्तव्य की आंतरिक भावना है और उन आचरण के प्रतिमानो कासमन्वित रूप है जिसके आधार पर सत्य सत्य अच्छा बुरा उचित अनुचित का निर्णय किया जा सकता है और यह विवेक केबल से संचालित होती है आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता महत्व अनिवार्यता व अपरिहार्य ता को इस बात से सरलता व संक्षिप्त आ मैं समझा जा सकता है कि संसार के दार्शनिकों मनोवैज्ञानिकों शिक्षा शास्त्रियों नीतिशास्त्र ईओ ने नैतिकता को मानव के लिए एक आवश्यक गुण माना है खेद का विषय है कि हमारी शिक्षा केवल बौद्धिक विकास पर ध्यान देती है हमारी शिक्षा शिक्षार्थी में बौद्ध जागृत नहीं करती वह जिज्ञासा नहीं जगाती जो स्वयं सत्य को सीखने के लिए प्रेरित करें और आत्मज्ञान

की ओर ले जाए सही शिक्षा व हो सकती है जो शिक्षार्थी में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित कर सकें इसलिए नैतिक मूल्यों में गिरावट होती जा रही है

मूल्यों के ह्रास से मानवता का अंत

हमारा दुर्भाग्य यह है कि हमने वर्ष स्वतंत्रता के गुजारे लेकिन शिक्षा प्रणाली ने इस महत्वपूर्ण पक्ष की और अपेक्षा की है नैतिक आत्मिक एवं भावात्मक शक्तियों को द्रोही मानकर शिक्षा में उनकी क्रियान्वित को सब बताया गया समाज में बालकों को अत्यधिक गुस्सा आना परिवार से अलग रहना आए दिन डिप्रेशन में होकर मानव बालक सुसाइड कर रहे हैं चाहे वह तरीका फांसी लगा ले लेने का हो जहर खाने का हो नदियों पोलो आदि से कूदकर जान देने का हो ऐसी वारदात अक्सर समाचार पत्रों में देखने को मिलती है यह सब मूल्यों की कमी तथा परिवार द्वारा दिए गए संस्कारों में कहीं ना कहीं इस बात को स्पष्ट करता है कि लालन–पालन में अवश्य ही कोई कमी रह गई है इसलिए मानवता का अंत होता चला जा रहा है

संदर्भ ग्रंथ

पाठक पीढ़ी भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं विनोद पुस्तक मंदिर आगरा टू

माथुर एसएस शिक्षा मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंदिर आगरा टू

पांडेआर एस शिक्षक की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रपृष्ठभूमि विनोद पुस्तक मंदिर आगरा टू

प्यूबीजी स्कूल एंड सोसाइटी आलोक प्रकाशन लखनऊ

गुप्ता एवं टंडन यू उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक आलोक प्रकाश लखनऊ

छब्म्त्ज दबि वित`बीववस मकनबंजपवद 2005

Verma we studies in the philosophy film of education

Chandra bakshi schooling value education Chandra perspective

◆◆◆

शिक्षक की कृत्य–संलग्नता एवं मानवीय मूल्य

डॉ० ओमकार चौरसिया[1] एवं आरती साहू[2]

[1]विभागाध्यक्ष, पं० जवाहर लाल नेहरू पी० जी० कालेज ,बाँदा

[2]शोधार्थिनी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

शिक्षा का मानव मूल्य से क्या संबंध है? मूल्य शिक्षा क्यों आवश्यक है? वास्तव में मानव मूल्य हैं क्या? पुरूस्कार, दण्ड, प्रशंसा, निंदा, लोभ–लालच आदि जैसे मनोवैज्ञानिक कारक मानव मूल्यों या संतुलित आचरण को कैसे सम्पादित करते हैं? शिक्षक की कृत्य–संलग्नता उसके मानवीय मूल्यों से किस प्रभावित होती है? शिक्षक मानवीय मूल्यों के विस्तारण में किस प्रकार सहायक हो सकता है? इन सभी प्रश्नों के उत्तर शिक्षक की कार्य–शैली एवं जीवन जीने के तरीकों में निहित है।

विद्यालय विद्यार्थियों के विवेक विकास हेतु एक स्थान है जहाँ उन्हें एक ऐसा वातावरण दिया जाता है जिसमें वह स्वयं का विकास विवेकपूर्ण तरीके से कर सकें। विवेक ही वह आधारभूमि है जहाँ मानव मूल्य शनैः शनैः अंकुरित होते है और धीरे–धीरे ये हमारे व्यवहार, हमारे व्यक्तित्व में समाहित हो जाते हैं। ये मानव मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को एक नई दिशा प्रदान करते हैं।

व्यक्तित्व के इस विकास क्रम से दो तरह के मानव मूल्य जुड़े होते हैं। पहला, बाह्य मानव मूल्य जो समाज, संस्कृति, धर्म और राज्य जैसे स्त्रोतों से आते हैं। दूसरा, आन्तरिक मानव मूल्य जो व्यक्ति में अनुभव, अंर्तदृष्टि,विवेक और आध्यात्मिक स्वानुभवों के स्त्रोतों से स्फुरित होते है। इन्हीं दो ध्रुवों के बीच हमारा आचरण मानवीय मूल्यों के आधार पर उचित या अनुचित होने का मनोवैज्ञानिक उपक्रम करता है।

मनव मूल्यों के स्वरूपों की पहचान असान नहीं है क्योंकि यह एक सतत परिवर्तनशील सत्ता जैसी है। मानवीय मूल्यों की कसौटी न तो कोरा तर्क हो सकता है न मा़त्र भावुकता। स्थितियों, परिस्थितियों और संतुलित मनःस्थितियों में यह मानवीयता के विस्तार की दृष्टि है। यह दृष्टि ही समाज में मानवता के विकास और विस्तार के नये क्षितिज को खोलती है। किसी समाज अथवा राष्ट्र के लक्ष्य–निर्धारण का आधार बनती है। बुद्धि, विवेक, संवेदनशीलता और अंतश्चेतना का अंर्तगुफन नैतिकता का अभीष्ट है। व्यक्ति और समाज के व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने हेतु

मानव मूल्य गरिमा और मर्यादा के मानकों का मेंचन करते हैं। यह सामूहिक समायोजन मानव मूल्यों एवं नैतिकता की वास्तविक सत्ता की स्थापना करता है। इसी से उसका जन्म, अभीष्ट निर्धारण और महत्ता प्रकट होती है। समस्त कलाएं और ज्ञान धाराएं नैतिकता एवं मानव मूल्यों की नाव हैं। व्यक्ति उस नाविक की तरह है जो इसे जीवन भर खींचता है; जो समाज, धर्म, नीति, राजनीति सब व्यवस्थाओं का खेवनहार है। ये सब नैतिकता के सहारे ही खड़े हैं। तमाम व्यवस्थाओं की नींव मानव मूल्यों से निर्मित है। इसलिए मानव मूल्यों के विसरण का दायित्व संस्कृति, शिक्षालयों एवं शिक्षक के सिर रहा है ताकि यह तरल स्वरूप व्यवस्था के तमाम अंगों–उपांगों को सराबोर रखे। संचालन सरल बना रहे। तर्कों और भावों–सबसे समान रूप से निपट सकें।

मनुष्य में सामाजिकता का निरूपण एक अभियान है क्योंकि यह राष्ट्र की जरूरत है। राष्ट्र–निर्माण के लिए समाजोपयोगी व्यवहार, मानवीय आचरण, नैतिकता का अनुसरण, मानवीय मूल्यों –मान्यताओं और मर्यादाओं का पालन करते हुए लोक–कल्याण की कामना वाला जीवन–व्यवहार आवश्यक है। राष्ट्र का निर्माण विद्यालयों में शिक्षक द्वारा किया जाता है। अतः शिक्षक के स्वयं के मानवीय मूल्य उच्च श्रेणी के होने चाहिए क्योंकी इन्हीं मानव मूल्यों का अनुसरण_छात्र करतें हैं। इसके लिए शिक्षक की उसके कार्य के प्रति कृत्य–संलग्नता अधिक होना आवश्यक है। शिक्षक की कृत्य–संलग्नता को मानवीय मूल्यों के कुछ कारक मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं–

रचनात्मकता, ज्ञान, सत्यता, ईमानदारी, संतुष्टि, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन

शिक्षक की कृत्य–संलग्नता को प्रभावित करने वाले मानवीय मूल्य

प्रेम और सहानुभूति, धैर्यशीलता, नियमबद्धता, आशावादी दृष्टिकोण, निर्णय क्षमता, उदारता, निष्पक्षता, बुद्धिमत्ता

राष्ट्र में आदर्श स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु शिक्षा एक उत्तम साधन के रूप में कार्य करती है। शिक्षा को समाज में विस्तारित करने वाले शिक्षक की कृत्य–संलग्नता को उपरोक्त मानवीय मूल्य प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अतः शिक्षक की कृत्य–संलग्नता एवं उसके मानवीय मूल्य एक–दूसरे के पूरक हैं क्योंकी शिक्षक के मानवीय मूल्य जितने अधिक दृढ़ होंगे उसकी कृत्य–संलग्नता उतनी ही अधिक होगी और

वह अपने कार्यों का निष्पादन उतनी ही अधिक बुद्धिमत्ता, धैर्यशीलता, निष्पक्षता, ईमानदारीपूर्ण, कर्तव्यनिष्ठ तरीके से कर सकेगा। अतः स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु शिक्षक मानवीय मूल्य उच्च होना आवश्यक है।

कहने की जरूरत नहीं कि मानसिक रूप से समाज को स्वस्थ बनाए रखने में नैतिकता एवं मानव मूल्य किस तरह आधार स्तंभ का कार्य करते हैं और इनका आभाव राष्ट्र के सामाजिक स्वास्थ्य के लिए किस प्रकार चुनौती बन सकता है।

◆◆◆

डॉ० पी० के० वार्ष्णेय (बी.कॉम., बीएड., एम.कॉम, पी–एच.डी.) 25.11.1991 को लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश से चयनित होकर राजकीय स्नातक एवं परास्नातक महाविद्यालयों में प्रवक्ता, रीडर, एसोसिएट प्रोफेसर एवं 11.04.2016 को उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रोन्नत होकर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदायूँ एवं 16.08.2017 को राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर के प्राचार्य रहे हैं। यहाँ से प्रोन्नत होकर आप 01.06.2018 से 09.06.2019 तक संयुक्त निदेशक उच्च शिक्षा उ०प्र० के पद पर कार्यरत रहे। आप 9.06.2019 से 28.06.2019 तक प्राचार्य राज. महाविद्यालय खलीलाबाद तथा दिनांक 29.06.2019 से अद्यतन उ०प्र० के प्रतिष्ठित एवं सर्वप्राचीन महाविद्यालयों में एक राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर में प्राचार्य के पद पर कार्यरत हैं। आपके निर्देशन में 14 पी–एच.डी. अवार्ड हो चुकी हैं तथा आप 23 लघु शोध प्रबन्ध, 74 राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में सहभागिता एवं शोधपत्र प्रस्तुत कर चुके हैं। आपने UGC द्वारा संचालित स्कॉलरशिप योजना RGNF-MANF के अन्तर्गत 3 शोधार्थियों का शोध कार्य पूर्ण कराया है। आपकी वाणिज्य विषय पर तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा आपने एक पुस्तक का सम्पादन भी किया है।

दीपक कुमार शर्मा, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, उत्तर प्रदेश में शिक्षक शिक्षा विभाग(बी०एड०) में सहायक आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। आप शिक्षाशास्त्र, गणित व अंग्रेजी में परास्नातक होने के साथ ही शिक्षाशास्त्र में राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं, जिसमें आप वर्ष 2012 व 2013 में राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक अंक प्राप्त कर चुके हैं। आपको अध्यापक–शिक्षा के क्षेत्र में 11 वर्ष से अधिक का शैक्षणिक अनुभव है। आप भारतीय शिक्षण मंडल के सक्रिय सदस्य हैं। आप 30 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठीयों में शोध–पत्र प्रस्तुत कर चुके हैं। आप एक शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारक हैं जो विभिन्न माध्यमों से महत्वपूर्ण शैक्षिक एवं सामाजिक मुद्दों पर अपने विचार प्रस्तुत करते रहते हैं।

सैयद अब्दुल वाहिद शाह,राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, उत्तर प्रदेश में शिक्षक शिक्षा विभाग (बी०एड०) में सहायक आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। आप शिक्षाशास्त्र, हिन्दी व इतिहास में परास्नातक होने के साथ ही शिक्षाशास्त्र में UP-SLET परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं। आपकी एक पुस्तक ''शिक्षा में संपूर्ण वस्तुनिष्ठ परीक्षण'' साहित्य प्रकाशन, आगरा से प्रकाशित हो चुकी है।

आपको महाविद्यालय के प्रथम न्यूज़ बुलेटिन के प्रधान संपादक होने का भी श्रेय प्राप्त है। आप 14 राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठिओ में शोध पत्र प्रस्तुत कर चुके हैं। आप सितंबर 2018 में महाविद्यालय के द्वितीय पुरातन छात्र सम्मेलन के आयोजन सचिव रहे हैं। आपकी 12 वार्ताएं एवं परिचर्चाएं आकाशवाणी रामपुर से प्रसारित हो चुकी हैं। आपको वर्ष 2018 में महाविद्यालय द्वारा ''शिक्षक प्रोत्साहन सम्मान'' से भी सम्मानित किया जा चुका है। आप सत्र 2018– 19 में महाविद्यालय के समारोहक भी रहे हैं।

ISBN : 978-81-943559-9-1
9788194355991